पर्यूषण पर्व प्रवचन

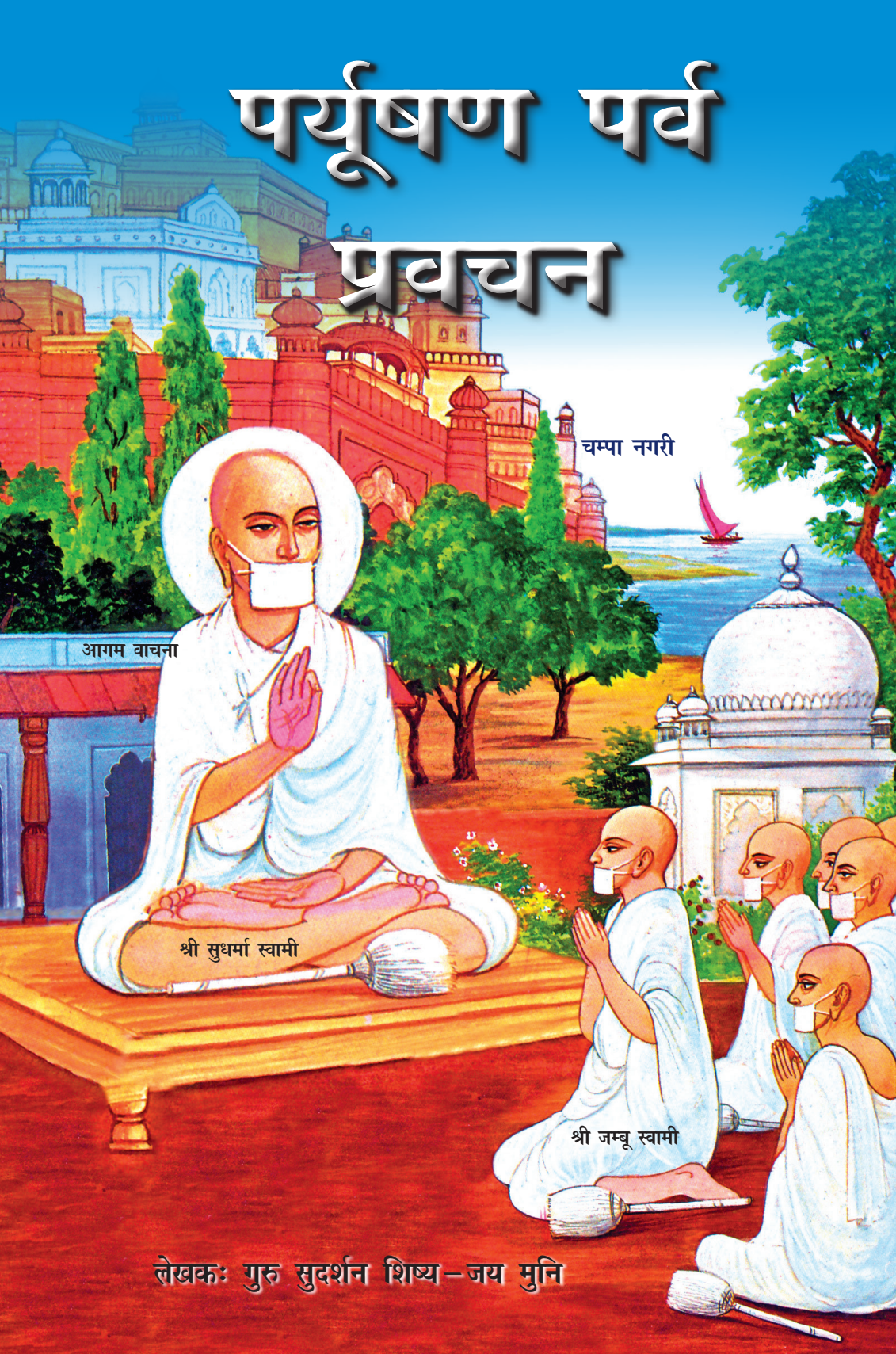

लेखकः गुरु सुदर्शन शिष्य–जय मुनि

पर्यूषण पर्व

प्रवचन

लेखकः गुरु सुदर्शन शिष्य – जय मुनि

प्रथम संस्करण : जुलाई 2010
द्वितीय संशोधित संस्करण : अगस्त 2017
सर्वाधिकार © प्रकाशक

प्रकाशक / प्राप्ति स्थान :
रविंदर जैन
जय जिनशासन प्रकाशन
212, वीर अपार्टमैन्टस्, सैक्टर 13,
रोहिणी, दिल्ली-110 085
Mob: +91-98102 87446
Email : jaijinshaasanprakaashan@gmail.com

अर्थ सहायता :
गुप्त दान

मुद्रक :
सिस्टम्स् विज़न, नई दिल्ली
Mob: +91-98102 12565
Email: systemsvision96@gmail.com

PARYUSHAN PARVA PRAVACHAN

Author: गुरु सुदर्शन शिष्य–जय मुनि

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की, फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

विषयक्रम

आशीर्वचन v

दो शब्द vii

प्रस्तावना xi

प्रथम पर्यूषण दिवस का प्रवचन 1

द्वितीय पर्यूषण दिवस का प्रवचन 25

तृतीय पर्यूषण दिवस का प्रवचन 48

चतुर्थ पर्यूषण दिवस का प्रवचन 74

पंचम पर्यूषण दिवस का प्रवचन 98

छठे पर्यूषण दिवस का प्रवचन 122

सातवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन 147

आठवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन 171

नौवें पारणे के दिवस का प्रवचन 198

पर्यूषणों के लिए उपयोगी कुछ भजन 202

आशीर्वचन

(पूज्य गणाधीश श्री प्रकाश चन्द्र जी महाराज की ओर से)

पूज्य गुरुदेव जी म. की चरण शरण तो मिली ही, उनकी जीवन दृष्टि भी मिली। इन्होंने संयम-तप और ज्ञान-ध्यान की वृद्धि को देख सदैव अनुमोदना की। यही सोच मेरी रही। जब कभी संघ में संयम-तप के प्रति रुचि बढ़ती देखी, ज्ञान ध्यान की वृत्ति पनपती देखी, मुझे विशेष हर्ष हुआ। पूज्य गुरुदेव जी म. भी मुझे इस बात के लिए शाबाशी देते थे, कहते थे– 'प्रकाश, तेरी सोच संयम परक है।' घोर तपस्वी श्री बदरी प्रसाद जी म. की महती कृपा का पात्र बनने का सौभाग्य भी मुझे इसीलिए मिला। क्योंकि उन्होंने मुझमें इस विषय में कुछ जागरुकता देखी। उन दोनों महापुरुषों के बाद हमारे संघनायक जी म. ने भी संघ में ऐसी भावना भरी। उन्होंने मुझसे परामर्श करके स्वाध्यायी व्यवस्था को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए राजर्षि श्री राजेन्द्र मुनि जी म. को ड्यूटी दी। और उन्होंने बखूबी निभाई। अब भी निभा रहे हैं।

हमारे नूतन संघ संचालक श्री नरेश मुनि जी म. भी उन्हीं आदर्शों को आगे रखकर चल रहे हैं। उनके निर्देशानुसार पर्यूषण पर्व प्रवचनों का संशोधित संस्करण आपकी सेवा में आ रहा है। सुविज्ञ श्रावक श्राविकाएं लाभ उठाएं, ऐसी आशा है।

श्री जय मुनि जी म. के ज्ञान और पुरुषार्थ को साधुवाद देता हूँ तथा भविष्य में भी ये समाज को अपनी ज्ञान संपत्ति देते रहें। ये शुभ आशीर्वाद है।

– प्रकाश मुनि

दो शब्द

(संघ संचालक, मनोहर व्याख्यानी श्री नरेश मुनि जी म. की ओर से)

अंतकृत् दशांग सूत्र ग्यारह अंगों में 8वां स्थान रखता है। पर्यूषणों के दिनों में इसकी वाचना होती है। इनमें कर्मों का संपूर्ण अन्त कर मोक्ष में जाने वाले साधकों का वर्णन है। उपासक दशांग सूत्र में उत्कृष्ट श्रावक-चर्या का वर्णन दश श्रावकों के माध्यम से दिया गया है इसी तरह उत्कृष्ट मुनि-चर्या का वर्णन प्रस्तुत आगम में है। 8 दिन पर्यूषणों के आराधना के दिन होते हैं। अतः आराधना के लिए महापुरुषों के स्मरण का आलंबन लेने के लिए इस सूत्र की वाचना होती है। विशेष दिनों में विशेष वाचना भावपूर्ण दृश्य तो उपस्थित करती ही है एक लयबद्धता भी हो जाती है। श्वेताम्बर परंपरा में कल्प सूत्र का वाचन भी होता है, मूर्तिपूजक संप्रदाय में कल्पसूत्र की वाचना को लेकर जब बोलियां व आडंबर नृत्य नाटक आदि बढ़े तो स्थानकवासी परंपरा ने अंतगड़ (अन्तकृत दशांग) को ही प्रमुखता दी एवं इसी के माध्यम से त्याग तपस्या की प्रेरणा दी। ये सही है कि आज भी स्थानकवासी परंपरा में कल्पसूत्र की वाचना होती है। तीर्थंकरों का जीवन व समाचारी का वाचन होता है पर अंतकृतदशांग ही आवश्यक है।

मैं स्वयं भी अति बचपन से अनके प्रमुख मुनिराजों से वाचना सुनता रहा हूँ पर जब गुरुदेव संघ शास्ता श्री सुदर्शन लाल जी म. का सन् 1971 में चातुर्मास बड़ौत में हुआ तो मन वैराग्य में हिलौरे लेने लगा। उनकी भावपूर्ण शैली मुर्दो में जान डाल देती थी, कायर में वीरता पैदा हो जाती थी। अतः पर्यूषणों में ही मैंने घर छोड़ कर गुरु चरणों में रहने का संकल्प लिया। मूल पाठ तथा अर्थ पाठ तो सर्वत्र एक जैसा ही है पर भावार्थ जो गुरुदेव फरमाते थे उसका कोई मुकाबला नहीं। उनके सुशिष्यों ने वही

भाव शब्द एकत्रित किए और सुनाने प्रारंभ किए। पूज्य गुरुदेव ने एक काम और किया कि इतनी मंगलकारी उत्तम वाचना जहां चातुर्मास नहीं होते वहां भी होनी चाहिए। और इस हेतु कई श्रावकों को तैयार किया जिसमें गोहाना के ला. भानीराम जी एवं जगदीश जी और सोनीपत में K.C. Jain आदि तैयार हुए पर वे स्थानीय स्तर पर लघु रूप में ही थे। तपस्वी श्री वकील मुनि जी म. ने बड़ौत में शिविर आदि के माध्यम से कई श्रावक तैयार किए पर वो भी छोटा ही दायरा रहा।

सन् 1990 में श्रद्धेय बहुश्रुत श्री जय मुनि जी म. जींद में वाचना को लिपि बद्ध किया– हाथ से लिखी डायरियों की संख्या बढ़ती गई एवं स्वाध्यायी श्रावक तैयार किए गए, मांग बढ़ती रही चातुर्मास से वंचित क्षेत्रों से पर्यूषण आराधना हेतु स्वाध्यायियों की मांग आने लगी। राजर्षि श्री राजेन्द्र जी म. ने भी इस व्यवस्था को और व्यापक रूप देने का प्रयास किया। पूज्य संघनायक श्री शास्त्री जी म. ने आशीर्वाद प्रदान किया तो लगभग 70 क्षेत्रों की आपूर्ति होने लगी। सैकड़ों स्वाध्यायी अवैतनिक तैयार हुए। हस्तलिखित डायरियों से काम चलना मुश्किल हो गया। अतः हस्तलिखित को प्रिंट कराया गया और अब उस 1990 में लिखी भावार्थ वाचना का और व्यवस्थित संवर्धित रूप स्वाध्यायियों के हाथों में है। जिसकी सर्वत्र मांग बढ़ती जा रही है। इसकी बढ़ती हुई मांग को देखकर गणाधीश श्रद्धेय श्री प्रकाश चन्द्र जी म. ने आशीर्वाद प्रदान किया। चूंकि इस पुस्तक के माध्यम से नया व्यक्ति भी सहज रूप से अंतगड़ सूत्र को समझ सकता है। इसमें बहुश्रुत श्री जय मुनि जी म. की धारा-प्रवाह लेखनी का करिश्मा तो है ही, उनका भावपूर्ण चिंतन तथा नूतनता-प्राचीनता को मिलाकर स्वादिष्ट मिश्रण तैयार करता है एवं बातों को तर्क-संगत तरीके से पेश करने का नया तरीका भी है। आज हम इनका (श्री जय मुनि जी म.) उत्तर भारत के जैन विद्वान

मुनियों में महत्त्वपूर्ण स्थान कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं है। कई पाठकों को उनका एकदम नया चिंतन चौंका तो सकता है कि ये क्या कल्पना है? पर आधुनिक धरातल पर नए विद्वानों को सोचने के लिए बाध्य भी करता है। अंतगढ़ सूत्र के ये पावन प्रवचन गुरु सुदर्शन के भावों का सारांश हैं। अतः सुज्ञ पाठक एवं श्रोता इससे पूरा-पूरा लाभ उठाएंगे ऐसी आशा है।

गुरु सुदर्शन शिष्य– नरेश मुनि

प्रस्तावना

परम पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. के समय तन मन में जो उल्लास था उस उल्लास में कुछ न कुछ रचनात्मक कार्य हो जाता था। सन् 1990 में जीन्द में चातुर्मास चल रहा था, वहां के युवकों में बुजुर्गों से भी ज्यादा स्वाध्याय रुचि थी। तब विचार आया कि इन युवकों की प्रतिभा, श्रद्धा, अध्ययनशीलता का समाज को लाभ दिलाया जाए। ताकि चातुर्मासों से वंचित क्षेत्रों में ये युवक जाकर पर्यूषणों की आराधना करवा सकें। सबने अन्तकृत्दशांग सूत्र की मूल वाचना की। एक-एक शब्द का शुद्ध उच्चारण सीखा फिर समग्र पाठ का अर्थ समझा तथा भावार्थ भी ग्रहण किया।

आगम की शैली वर्तमान युग की बौद्धिक आवश्यकताओं को कम पूरा करती है, इसलिए आगम की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए प्रवचन लिखने लिखाने का भाव बना। 10-12 युवकों ने कई-कई घंटे लगाकर ये कार्य संपन्न किया। उन्हें प्रवचन Dictate किया जाता और वे अपनी-अपनी डायरी में लिखते जाते। उनमें से श्री जयचन्द जी के सुपुत्र श्री दिनेश जैन ने आठों प्रवचनों को व्यवस्थित रूप दिया। स्वाध्यायी बनाकर क्षेत्रान्तरों में भेजने की योजना तो चालू नहीं हो सकी पर श्री दिनेश जी की डायरी का उपयोग बहुत हुआ। जिस किसी के हाथ में डायरी लगी उसे बेहद पसन्द आई। व्यक्तिगत स्तर पर कई बन्धुओं ने उपयोग में ली। जब 2008 में स्वाध्यायी बन्धुओं को विधिवत् क्षेत्रों में प्रेषित किया जाने लगा, तब उस डायरी की अधिक आवश्यकता पड़ी। उस मांग की पूर्ति के लिए सन् 2010 में वो पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई।

पूज्यपाद श्री संघनायक जी म. के निर्देशानुसार राजर्षि श्री राजेन्द्र मुनि जी म. ने स्वाध्यायी परम्परा को विस्तार दिया। 70-80 क्षेत्रों को पर्यूषणों की आराधना का प्रति वर्ष लाभ मिलने लगा। उच्च कोटि के

स्वाध्यायी बन्धु उभर कर आए। प्रति वर्ष एक ही विषय सुनाते-सुनाते स्वाध्यायी बन्धुओं के मन में भाव आया कि आधुनिक संदर्भ में कुछ और स्पष्टता व विशेषता तो होनी चाहिए। तो सोचा गया कि कुछ संशोधन व परिवर्धन कर दिया जाए। मूल विषय तो बदला ही नहीं जा सकता पर मूल के इर्द गिर्द मैटीरियल में विशेषता दी जा सकती है। सो इस संस्करण में इतनी सी नवीनता मिलेगी। जिन्होंने पहला संस्करण देखा है, उन्हें ये अन्तर ज्ञात होगा। नयों के लिए ये ही पुराना—ये ही नया है।

इधर संघ की व्यवस्था में भी परिवर्तन हुआ। पूज्यपाद श्री संघनायक जी म. 29 अप्रैल 2016 को अचानक दिवंगत हो गए तथा 29 जनवरी 2017 को मनोहर व्याख्यानी श्री नरेश मुनि जी म. को संघ का नेतृत्त्व सौंपा गया तथा 'संघ संचालक' शब्द से संबोधित हुए। संघ के वरिष्ठ महामुनि, ज्येष्ठ श्रेष्ठ श्री महास्थविर जी म. गणाधीश कहलाए।

नूतन नेतृत्त्व के समय ये भी निर्णीत हुआ कि कुछ उपयोगी साहित्य जनता की सेवा में प्रस्तुत किया जाए। अतः इन दोनों महापुरुषों के निर्देशानुसार पर्यूषण पर्व प्रवचनों का Revised Edition पेश हो रहा है। इसके संबंध में एक दो बातें निवेदित हैं कि स्वाध्यायी भाई श्री अरविन्द जी के काव्यबद्ध अनेक पद्य इसमें गुम्फित किए गए है। पहले अधिकांश भजन महान् काव्यकार पूज्यपाद गुरुदेव भगवन् श्री राम प्रसाद जी म. द्वारा रचित थे। अब कविरत्न श्री सुनील मुनि जी म. की कृतियां भी समाविष्ट हुई हैं। इस संस्करण में प्रकाशक ने कुछ चित्र भी जोड़े हैं जो उन्होंने वाणी भूषण, प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. की पुस्तक के आधार पर स्वल्प परिवर्तन के साथ तैयार किए हैं।

प्रवचनों में कहीं-कहीं पारस्परिक श्रुतियों के अलावा भी कुछ सुनने को मिल सकता है। उसका उद्देश्य भी यही है कि श्रोताओं को विषय तर्क संगत लगे। हमारे पूर्वज भी अपने शास्त्रीय प्रवचनों को रोचक

बनाने के लिए नई-नई उद्भावनाएं प्रकट करते रहे हैं। मूल आगम में न होते हुए भी देवकी देवी का ये वाक्य 'बेटा! ऐसी करनी करना ताकि दूसरी माँ न रोवे।' प्रवचन का इतना अभिन्न अंग बन चुका है कि यदि इसे न सुनाया जाए तो अधूरापन लगता है। गजसुकमाल मुनि का ये सोचना कि मेरे ससुर जी मेरे सिर पर सेहरा (पाग) बांध रहे हैं। आयम्बिल तप द्वारा द्वारिका-दहन का स्थगित होना आदि पूर्व पुरुषों द्वारा प्रस्तुत की गई बातें आगम में वर्णित न होते हुए भी आगम विरुद्ध नहीं हैं। ऐसे ही कुछ छिटपुट चिंतन-स्फुलिंग इस पुस्तक में मिलें तो उसी संदर्भ को स्मृतिगत कर लें।

जैनों के पवित्रतम पर्व पर्यूषणों पर प्रयुक्त होने वाले प्रवचन सामान्य दिनों में भी प्रेरक बनें, ये कामना है।

पूज्य गुरुदेव जी म. की कृपा सदा अनुभूत हो रही और आनन्द आ रहा है।

गुरु सुदर्शन शिष्य – जय मुनि

हृदयस्थाय श्री गुरु भगवते नमः

प्रथम पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– उठ जाग मुसाफिर भोर भई

टेकः– सांसो की बंसरी बोल रही पर्यूषण आए पर्यूषण।
कानों में अमृत घोल रही पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

1. है कौन द्रव्य का दीवाना, और कौन धर्म का परवाना,
ये तकड़ी सबको तोल रही, पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

2. है कौन जिस्म का अनुरागी, है कौन तपस्वी और त्यागी,
हमें पूछ ये धरती गोल रही, पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

3. है कौन सिर्फ बातें घड़ते, और कौन जंग में आ डटते,
शुभ घड़ी हमें है टटोल रही, पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

4. है कौन समय पर खेल रहा, और कौन यहाँ पर फेल रहा,
किसकी काया है अडोल रही, पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

5. क्या करना है संवत्सरी पर, सुन लो अपने अन्तर के स्वर,
क्या बढ़ा ये है मेलजोल रही, पर्यूषण आए पर्यूषण ॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के प्रथम वर्ग के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को, संघ शास्ता गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी महाराज को तथा सभी पूज्य गुरुदेवों को श्रद्धापूर्वक वंदन तथा उपस्थित भाई बहनों को जय जिनेन्द्र।

पर्यूषण पर्व के पावन आगमन पर आप सबको हार्दिक बधाई है। आपके क्षेत्र में धर्मध्यान एवं शुभ भावनाओं का मंगलमय संचार हो, इस लक्ष्य से हम आपके यहाँ आए हैं। आपके सहयोग से ही कुछ कर पाएंगे। आप अपने आत्मीय प्रेम से, अपनी धार्मिक श्रद्धा से इस पुनीत कार्य को आगे बढाएंगे, ऐसी हमें आशा है।

हर धर्म का अपना इतिहास होता है, अपनी संस्कृति होती है, अपनी परम्पराएं होती हैं तथा अपने पर्व होते हैं। भारतीय पर्वों में दीपावली, दशहरा, होली, राखी आदि को महत्त्व दिया जाता है, इस्लाम में ईद को उल्लास से मनाया जाता है, ईसाई लोग क्रिसमस को मनाते हैं तो जैन लोग पर्यूषण पर्वों की तन्मयता से आराधना करते हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनों वर्ग पर्यूषण पर्व मनाते हैं; फर्क केवल आदि और अन्त का है। श्वेताम्बरों के पर्यूषण भादवा सुदी पंचमी को पूर्ण होते हैं तथा दिगम्बरों के पर्यूषण भादवा सुदी पंचमी को शुरु होते हैं। दूसरा अंतर ये है कि हमारे पर्यूषण आठ दिन चलते हैं, उनके 10 दिन। आठ की संख्या का भारतीय तथा जैन, दोनों परम्पराओं में महत्त्व रहा है। 8, 108, 1008, 1 लाख आठ। इस तरह आठ हर छोटी बड़ी संख्या के साथ जोड़ना ज़रूरी माना गया है। इस संख्या को पवित्र मानने का रिवाज भी रहा है। किसी भी शुभ कार्य के प्रारंभ में आठ मंगल लिखना पुराने समय में ज़रूरी माना जाता था। अरिहंतों के आठ प्रातिहार्य, सिद्ध भगवन्तों के आठ गुण, आचार्यों की आठ संपदा, उपाध्यायों के 8 ज्ञानाचार तथा साधुओं की आठ प्रवचन माता– ये जैन धर्म में मान्य हैं तो पतंजलि ने अष्टांग योग का प्रतिपादन करके तथा महात्मा बुद्ध ने धर्म के आठ चरण बताकर 'आठ' की संख्या पर अपनी मोहर लगा दी। आठ के ठाठ निराले हैं। जैन आगमों में वर्णन है कि देवता तीर्थंकरों के कल्याणक आठ दिन तक मनाते हैं, जिसे

अष्टाह्निका महोत्सव नाम दिया गया है। हमारे ये पर्यूषण महोत्सव भी आठ दिन के ही हैं, फर्क इतना ही है कि इन आठ दिनों में हमें अधिक से अधिक आत्म-केन्द्रित रहना होता है जबकि शेष सभी त्यौहारों पर हम शरीर-केन्द्रित रहते हैं। वैसे तो शरीर-केन्द्रित चेतना का एकदम आत्म-केन्द्रित होना काफी कठिन है पर ऐसे अवसरों के आने पर यह कार्य कुछ आसान हो जाता है। स्थानकवासी परम्परा में पर्यूषणों की आराधना पूर्ण त्याग, तप, स्वाध्याय और ध्यान के द्वारा की जाती है। जहां साधु-साध्वी जी महाराज विराजमान होते हैं, वहां धर्माराधना की संभावना अधिक रहती है। जहां साधु-साध्वियों के चातुर्मास नहीं हैं, वहां के भाई-बहन भी इन पर्वों को मनाने के लिए उत्सुक रहते हैं। आपके क्षेत्रवासियों की इस उत्सुकता की पूर्ति के लिए हमारा आगमन हुआ है। हमारे आने से यदि आपकी धर्मभावना पुष्ट हुई तो हम अपने प्रयास को सार्थक समझेंगे।

पर्यूषणों के दौरान अन्तकृद् दशांग सूत्र की वाचना की जाती है। स्थानकवासी परम्परा में मान्य किए गए 32 आगमों में केवल अन्तकृद्दशांग सूत्र ही ऐसा आगम है जिसे आठ दिनों में पूरा करने का आदेश है।

"अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा, अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति"

अर्थात् अन्तकृद्दशांग के आठ वर्ग आठ दिन में पढ़ाए जाते हैं।

जैन आगमों को उनके विषय वर्णन की शैली के आधार पर चार भागों में बांटा गया है— 1. चरणानुयोग 2. द्रव्यानुयोग 3. गणितानुयोग 4. धर्मकथानुयोग। चारित्र के विधि-निषेधों का वर्णन चरणानुयोग में मिलता है; दशवैकालिक, आचारांग आदि चरणानुयोग के अंतर्गत हैं। जीव-अजीव आदि तत्त्वों की मीमांसा द्रव्यानुयोग में है; प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम आदि आगम द्रव्यानुयोग में समाविष्ट होते हैं। भौगोलिक दूरियां, तत्त्वों की भिन्न-2 संख्याओं का वर्णन गणितानुयोग में मिलता है; चंद्र प्रज्ञप्ति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि आगम गणितानुयोग

के अंश हैं। कथानकों एवं चारित्राख्यानों का प्रतिपादन कथानुयोग में उपलब्ध होता है। ज्ञाताधर्मकथांग, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग आदि सूत्र कथानुयोग में अन्तर्गर्भित हैं। कथानुयोग सरल, सरस पद्धति से जीवन सिद्धांतों को अन्तर्मानस तक पहुंचा देता है। इसलिए संत महात्माओं ने इस पद्धति को सदा से ही स्वीकारा है। पर्यूषण के इन आठ दिनों में हम कथानकों के जरिए ही बहुत कुछ सीखेंगे। यद्यपि इस आगम के 8 वर्गों में 90 महापुरुषों की जीवनी वर्णित है, पर मुख्य रूप से हम 8-10 महापुरुषों के बारे में ही चर्चा करेंगे और सुनेंगे। बाकी महापुरुषों के तो नामों से ही हमें संतुष्ट रहना है।

हमारे सभी आगमों की भाषा अर्धमागधी-प्राकृत है, जिसको आपने मूलरूप से प्रारंभ में सुना है। अब उसके अर्थ-परमार्थ में प्रवेश करना है। कवि श्री अरविंद जी ने पूरे आगम के भिन्न-2 प्रसंगों को सरल और सरस भाषा में काव्यबद्ध किया है, जिन्हें आप आठों दिन सुनेंगे और आनंद लेंगे। उसकी प्रारंभिक पंक्तियां याद कर लें:—

अन्तगडदशांग जी आगम का, करते हैं भाव सहित वर्णन।
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥

भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् उनके संघ के प्रथम पट्टधर आचार्य श्री सुधर्मा जी चंपा नगरी में पधारे। उस समय राजा श्रेणिक के पुत्र कोणिक की राजधानी चंपा थी। वहां श्री सुधर्मा स्वामी के शिष्य श्री जंबू स्वामी ने अपने गुरुदेव से विनति की कि आपने मुझे उपासक-दशांग की वाचना देकर महती कृपा की है, अब अन्तकृद्दशांग की वाचना देकर मुझे कृतार्थ करें।

श्री जंबू स्वामी जी की भावना को पूर्ण करते हुए श्री सुधर्मा स्वामी जी ने फरमाया— 'जंबू जी, अन्तकृद्दशांग के आठ वर्ग हैं तथा पहले वर्ग के दस अध्ययन हैं जिनमें दस महान् आत्माओं का जीवन-चरित वर्णित है, उन महापुरुषों के नाम इस प्रकार हैं:— गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कंपिल, अक्षोभ, प्रसेनजित एवं विष्णु।

ये दस हमारे धर्मनायक हैं, History-maker Heroes हैं। इन्होंने अपने कषायों का अंत किया था तथा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुखों का अंत किया था। ऐसी मोक्षगामी आत्माओं को 'अन्तकृत्' कहा जाता है। उन्हीं को आधार बनाकर इस आगम का नाम भी 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' है। ये भी एक मान्यता है कि जीवन के अंतिम समय में जो केवलज्ञान पाकर तुरंत ही मोक्ष में चले जाते हैं; वे 'अन्तकृत्' होते हैं। इस आगम में अरिष्टनेमि तथा महावीर स्वामी— दो ही तीर्थंकरों के शासन में मुक्त होने वाली विशिष्ट 90 भव्य-आत्माओं का उल्लेख है। भगवान् अरिष्टनेमि के संघ के कुल 51 चरित्रों में 41 पुरुष हैं तथा 10 नारियाँ। भगवान् महावीर के 39 संघीय-वृत्तांतों में 16 पुरुष हैं और 23 नारियाँ। ऐसी 90 आत्माओं में से दस आत्माओं का जीवन चरित्र पहले वर्ग में वर्णित है। श्रमण भगवान् महावीर स्वयं चौबीसवें तीर्थंकर हैं। वे अपने से पूर्वतरवर्ती 22वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के युग का चित्रण करते हुए फरमाया करते कि उस युग में विश्व-विख्यात नगरी द्वारवती थी। इस नगरी को बाद में 'द्वारिका' के रूप में पुकारा गया। बारह योजन लंबी, नौ योजन चौड़ी द्वारिका का निर्माण श्री कृष्ण वासुदेव ने कुबेर के बौद्धिक सहयोग से किया था। द्वारिका के गली-कूचों में स्वर्गीय छटा उतरी हुई थी। द्वारिका का परिवेश भी सुंदरता से भरपूर था। उत्तर-पूर्व दिशा में रैवतक पर्वत पर नन्दन-वन उद्यान था जिसमें आम की हजारों किस्में होने से उसे 'सहस्राम्र-वन' भी कहा जाता था। राज्य की समूची व्यवस्था श्री कृष्ण जी के हाथ में थी।

हे जम्बू इक नगरी सुन्दर, शुभ नाम द्वारिका होता था,
सुख शांति थी खुशहाली थी, आनंद से जन-2 सोता था।
नौ योजन चौड़ी थी वह, और लंबी बारह योजन थी,
कुबेर के कौशल से निर्मित, स्वर्गों जैसी मन भावन थी।
वासुदेव श्री कृष्ण राज्य का, करते श्रम से संचालन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

श्री कृष्ण जी के परिवार में समुद्र विजय से लेकर वसुदेव तक दस सगे भाइयों का सम्माननीय स्थान था। बलदेव (बलराम), प्रद्युम्न, साम्ब, महासेन आदि अलग-2 पदों के धारक और दायित्वों का वहन करने वाले थे। उग्रसेन आदि 16 हजार राजा थे अर्थात् उन्हें राज्य का कुछ-2 दायित्व मिला हुआ था। आधे भरत क्षेत्र की राजधानी द्वारिका नगरी थी और श्री कृष्ण जी सुदंर ढंग से वहां से अपना राज्य संचालन करते थे।

श्री कृष्ण जी की ज़िंदगी बड़े उतार चढ़ावों से गुजरी थी। उनके माता-पिता को आततायी कंस ने जेल के सींकचों में बंद कर दिया था। भादों बदी अष्टमी की अर्धरात्रि को जब देवकी ने कृष्ण को जन्म दिया तब वसुदेव को अपने नवजात शिशु की सुरक्षा को लेकर बहुत ज्यादा चिंता थी। यदि सूर्योदय तक उसे बाहर नहीं निकाला गया तो पापी कंस सुबह होते ही बच्चे को अपने कब्जे में ले लेगा और इसका वध कर देगा। बालक को एक टोकरी में लिटाकर, सबकी नज़रों से बचाकर वसुदेव जेल से बाहर निकला और उफनती यमुना को पार कर गोकुल में अपने प्रिय मित्र नंद के घर पहुंच गया। नंद की पत्नी यशोदा ने नन्हें बालक को अपनी गोद में लिया और वसुदेव को सदा के लिए निश्चिन्त कर दिया। वक्त पर काम आना ही दोस्ती की असली पहचान है। A friend in need is a friend indeed.

'धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत्काल परखिए चारी'

गोकुल में रहते हुए ही वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी का लाडला बेटा बलराम (बलदेव) भी श्री कृष्ण से आ मिला। फिर इस जोड़ी ने गोकुल में खुशियों के जो फूल खिलाए, उससे धरती धन्य हो गई, हवाएं चहक उठी। यौवन अवस्था में आते-2 दोनों भाई कंस की आंखों में खटकने लगे और अंततः दोनों भाइयों ने निर्णय किया कि कंस के वंश का विनाश करना ही पड़ेगा। इस दुष्ट के कारनामों से धरती थर्रा

गई है, मानवता दुबकी पड़ी है, इसके अत्याचारों का खात्मा करने पर ही संसार चैन की सांस ले सकेगा।

न उबले जो सितम सहकर, नहीं वह खून पानी है,
न जिसमें जोश हो, किस काम की ऐसी जवानी है।
जिया करते हज़ारों लोग जगत् में जन्म जो लेते,
वतन के काम जो आए वही बस ज़िन्दगानी है ॥
नज़र डाले बुरी तुम पर, उसे जड़ से कुचल डालो,
करे जो प्यार उसके हित ज़हर तक भी निगल डालो।
चमन के मालियो सौगंध है तुमको शहीदों की,
न चुप बैठो, खिज़ाओं को बहारों में बदल डालो ॥

राष्ट्र के शोषित वर्ग के उद्धार का जज़्बा दिल में ले दोनो भाइयों ने कंस के खिलाफ बगावत का झंडा थामा और उसका और उसकी राक्षसी वृत्तियों का सर्वनाश करके ही दम लिया। कंस वध के बाद वे अपने ताया-पिता आदि के पास शौर्यपुर में आकर रहने लगे। कंस का ससुर जरासंध अपने दामाद की हत्या का बदला लेने के लिए शौर्यपुर पर हमला करने की योजना बना रहा था, तभी समुद्र विजय के नेतृत्व में श्री कृष्ण जी एवं बलराम जी ने पश्चिमी समुद्र के तट की ओर दलबल सहित प्रस्थान कर दिया। जरासंध का पुत्र अपने पिता से कहने लगा– "पिता जी, अपने राज्य की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले सभी यादवों और उनके नेताओं को मैं परास्त करके आपके सामने हाजिर करूंगा। पृथ्वी, आकाश, जल, पाताल, अग्नि में कहीं भी मिलें, मैं उन्हें पकड़ कर ही दम लूंगा।" जैसे ही कालकुमार विशाल सेना के साथ विंध्याचल पर्वत के निकट पहुँचा, वहां उसे जलती हुई चिता दिखाई दी, साथ ही एक रोती हुई स्त्री वहां बैठी मिली। उस स्त्री ने कहा– 'कालकुमार! तुम्हारे डर के कारण सभी यादव चिता में घुस गए हैं, शायद वे सारे मरे नहीं होंगे।' कालकुमार जवानी के जोश में भूल गया कि यह सब माया है। उसने अपनी प्रतिज्ञानुसार जलती चिता में प्रवेश

कर दिया और भस्म हो गया। उसकी मृत्यु के बाद वह देवकृत माया भी गुम हो गई। उधर समुद्रविजय आदि दश दशार्ह तथा श्री कृष्ण जी आगे बढे। सौराष्ट्र में रैवतक पर्वत के निकट पड़ाव डाला। उसी रात सत्यभामा ने जुड़वा पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम भानु और भामर रखे गए। श्री कृष्ण जी ने लवण समुद्र के अधिष्ठाता सुस्थित देव की आराधना के लिए तेला किया। उसने प्रकट हो कर पूछा— आपकी क्या सेवा करूँ? श्री कृष्ण जी ने कहा— 'मुझे 56 करोड़ यादवों के लिए नगर बसाना है, आप मुझे स्थान बताएं।' उसने समुद्रतट पर नगर बसाने की आज्ञा प्रदान की। वह देवता वासुदेव के प्रतीक चिह्न देकर विदा हो गया। तदनन्तर इन्द्र के आदेशानुसार कुबेर ने बारह योजन लंबी, 9 योजन चौड़ी द्वारिका नगरी का निर्माण किया, जिसे कृष्ण जी ने अपनी राजधानी बनाया तथा उसमें अमन चैन से रहने लगे। अब तक तो परिवार और प्रशासन की बागडोर समुद्र विजय के हाथों में थी लेकिन कृष्ण एवं बलराम पर उनका विश्वास जमता जा रहा था। उनके विचारों को कार्य रूप देने से जनता में सुख समृद्धि की वृद्धि हुई। द्वारिका में यादवों की सुखद स्थिति और उपस्थिति की खबरें जरासंध के कानों में पहुंची तो उसकी वैर भावना पुनः जागृत हो गई।

अपने सैन्य बल और साथी शिशुपाल को लेकर यदुंवश का खात्मा करने के लिए वह द्वारिका के निकट आया। दोनों ओर घमासान मचा और श्री कृष्ण जी ने शिशुपाल तथा जरासंध का वध कर दिया। इस पराक्रम के बलबूते पर श्री कृष्ण जी भरत क्षेत्र के दक्षिण भाग वाले तीन खण्डों के स्वामी बन गए। उनके राज्यारूढ़ होते ही देश में तरक्की के नए आयाम खुले।

इसी बीच 22वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि ने पशु-पक्षियों की रक्षा के निमित्त अपने विवाह की रस्म छोड़ी और दीक्षा लेकर केवलज्ञान पाया। चार तीर्थ की स्थापना कर शुद्धाहार-शाकाहार का बिगुल बजाया। इस युग का आध्यात्मिक संचालन भगवान् अरिष्टनेमि के हाथों में था तथा लौकिक संचालन श्री कृष्ण जी के

हाथों में था। श्री कृष्ण जी का सारा खानदान अंधकवृष्णि खानदान था। उन्होंने अपने परिवार के अनेक वरिष्ठ व्यक्तियों को राज्य प्रशासन में भिन्न-2 अधिकार दे रखे थे। वे सभी व्यक्ति खानदान की दृष्टि से तो अंधकवृष्णि कहलाते थे तथा राज्याधिकारी होने से राजा कहलाते थे। ऐसे ही किसी एक अंधकवृष्णि राजा का वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में हुआ है। उनकी पत्नी धारिणी थी, जो सद्गुणों को धारण करने वाली थी। प्राचीन युग में नारियों के यथार्थ नामों का उल्लेख बहुत कम होता था। अधिकांश का 'धारिणी' कह कर परिचय कराया जाता था। यहाँ तो नर और नारी दोनों के वास्तविक नाम लुप्त हैं, पुरुष है अंधकवृष्णि तथा महिला है धारिणी। एक बार धारिणी को सपने में सिंह का दर्शन हुआ। उसे सिंह-दर्शन से हर्ष-पूर्ण रोमांच हुआ। उसके पतिदेव ने बताया कि शीघ्र भविष्य में तुम्हारी कुक्षि से किसी महान् संतान का जन्म होगा। वस्तुतः हुआ भी वैसा ही। सवा नौ माह के बाद धारिणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। माता-पिता ने उसका नाम 'गौतम' रखा।

'गौतम' शब्द भारतीय वाङ्मय का बड़ा विशिष्ट शब्द रहा है। जैन, बौद्ध और वैदिक— तीनों धर्म-परम्पराओं में इस शब्द का, नाम का बोलबाला है। भगवान् महावीर स्वामी के पहले तीनों गणधर श्री इन्द्रभूति जी, अग्निभूति जी एवं वायुभूति जी का गोत्र गौतम था। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध का मूल नाम सिद्धार्थ गौतम था। न्यायदर्शन, जो वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करता है, के प्रणेता भी महर्षि गौतम थे।

गौतम शब्द का व्याकरण सम्मत अर्थ है— सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी। यदि 'गौ' शब्द को हम 'गाय' से जोड़े तो 'गाय' सरल पशु है। अतः गौतम का अर्थ हुआ सरलतम।

इस तरह माता-पिता के लाडले उस 'गौतम' ने बचपन की दहलीज को पार कर ज्ञान के विस्तृत मैदान में कदम रखे और वे धीरे-2 बहत्तर कलाओं में तथा अनेक विद्याओं में पारंगत हो गए। यौवन में प्रवेश किया तो माता-पिता ने अपना कर्त्तव्य निभाते हुए उसका आठ राज-

कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करवा दिया। प्रत्येक पुत्रवधू के लिए अलग-2 प्रासाद (महल) बनवाकर उन्हें सौंप दिया। सबको करोड़ों के हिसाब से विपुल धन-संपत्ति भी बख्श दी ताकि जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति में कोई बाधा न हो। गौतम कुमार का भौतिक जीवन बड़ी सहजता से व्यतीत हो रहा था। पांचों इंद्रियों के काम और भोग उन्हें मुहैय्या थे। सुख का सागर लहरा रहा था। आओ फिर काव्य की भाषा में चलें:—

उस भव्य द्वारिका नगरी में, अंधकवृष्णि थे भूप महान्,
महारानी धारिणी देवी थी, गौतम कुमार उनकी संतान,
हर कला में वो निष्णात हुआ, फिर पाणि ग्रहण हुआ उसका,
यौवन की मस्त बहारों में नहीं पत्र या पुष्प झड़ा उसका,
इक दिन नगरी के भाग्य जगे, जब नेम प्रभु के पड़े चरण,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥

यहाँ तक आगमकार मानव जीवन की बाहरी ज़रूरतों का चित्रण करते रहे हैं। अब उन्हें आध्यात्मिक उत्थान का सौंदर्य दिखाना है।

घनघोर भौतिकता के बाद दिव्य अध्यात्म का चित्रण अधिक रोचक होता है। यदि आपको कहीं White Paint करना हो तो उसकी Back-ground Black रखने की कोशिश करते हो क्योंकि Black-back ground पर white रंग ज्यादा shining देगा। ऐसे ही अधिक भौतिकता के बाद ही विशुद्ध आध्यात्मिकता की चमक उभरती है। ये केवल संयोग ही नहीं है कि जैन धर्म के सभी तीर्थंकर राजा या राजाओं की संतान थे। श्री शांतिनाथ जी, श्री कुंथुनाथ जी तथा श्री अरनाथ जी चक्रवर्ती सम्राट थे। शेष तीर्थंकर भी राज्य वैभव के असीम सुखों के उपभोक्ता थे। इस आगम में वर्णित 90 महापुरुषों में कुछ एक को छोड़ दें तो बाकी सभी समृद्धि के शिखरों को पार करके मुक्ति के राज्य में प्रविष्ट हुए है। जैन धर्म में अमीरी और गरीबी को यों तो मुक्ति का सीधा कारण नहीं माना। गरीब से गरीब आदमी भी धर्म साधना, त्याग

तपस्या का पथ अपना सकता है तथा अमीर भी उस राह का राहगीर बन सकता है। मगर जैनों के प्राचीन चरित्रों को पढो तो झलकता है कि ज्यादातर cases में वैराग्य का जन्म वैभव की पृष्ठ-भूमि में हुआ है। एक अति समृद्ध आदमी को धन की निरर्थकता का बोध संभवतः शीघ्र हो सकता है क्योंकि वह धन के अर्जन, संरक्षण, निवेशन आदि हर पहलू से गुजर चुका है। **"अर्थानामर्जने दुःखं, अर्जितानां च रक्षणे, आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं कष्टसंश्रयम्"** अर्थ संपन्न व्यक्ति जब कहता है कि धन का कमाना दुःखमय है, कमाए हुए की रक्षा दुःखभरी है, आय भी दुःख है, व्यय भी दुःख है, इसलिए दुःखरूप धन को धिक्कार है, तो उस धनी का अनुभव बोल रहा होता है, जबकि कोई दरिद्र बोलता है तो उसकी अप्राप्ति की कसक बोल रही होती है।

ईसा मसीह का एक वाक्य है— A camel can pass through the hole of needle but a rich man cannot enter into the kingdom of heaven. अर्थात् एक ऊंट सूई के छेद में से भले निकल जाए पर अमीर आदमी स्वर्ग के साम्राज्य में प्रविष्ट नहीं हो सकते। Therefore, Be poor, only poor can enter into the kingdom of heaven. इसलिए तुम सब निर्धन बन जाओ क्योंकि निर्धन ही स्वर्ग में जा सकते हैं। ईसा मसीह के इस वाक्य की व्याख्या यदि 'अपरिग्रही भावना' तक ले जाएं तो सत्य हो सकती है अन्यथा एकांत चिंतन करेंगे तो यह दृष्टि सत्य से दूर-दूरतर है।

"जो चिंतन इस जन्म को उजाड़कर
अगला जन्म आबाद करना चाहता है।
और इस जन्म को कैद में डालकर
अगला जन्म आजाद करना चाहता है
वह सही चिंतन नहीं भोली जनता
को बहकावे का तरीका है
वह इस जीवन को बर्बाद करता ही है
अगला भी बर्बाद करना चाहता है ॥"

अंतकृद्दशांग सूत्र के प्रथम नायक श्री गौतम जी का सांसारिक जीवन पूरी तरह आबाद था। शरीर का सौख्य उपलब्ध था, इंद्रिय-तृप्ति के साधन मौजूद थे, मन को बहलाने वाली ललनाएं थी। एक तरह से ज़िंदगी का Half Part पूरी तरह fulfillment के चरम पर था। परंतु उसे ज़िंदगी के second half का अभी अहसास नहीं हुआ था। कोई अन्तःसलिला सरस्वती अवश्य उसे उस उपेक्षित भाग की ओर पुकार लेती थी, जिसकी ध्वनियों को वह कभी सुन लेता, तो कभी उपेक्षित भी कर देता। परंतु एक दिन उसके सामने सत्य-सूर्य ने स्वयं दर्शन दे दिए। 22वें तीर्थंकर अरिहंत अरिष्टनेमि प्रभु द्वारिका के बाहर सहस्राम्र-वन में पधारे। उनके पधारने मात्र से नगरी का सुप्त मानस जागृत हो गया। उनके दर्शन करने तथा प्रवचन सुनने के लिए बच्चा-2 मचल उठा। न केवल मानव सृष्टि के लिए ये क्षण आनंदकारी थे, देव सृष्टि में भी हलचल मच गई। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवताओं के जत्थे प्रभु के समवसरण में उतर आए। क्या देव, क्या मानव, हर आगंतुक प्रभु की मनोरम छवि को निहार रहा है और गुनगुना रहा है।

भगवन् श्री जी के शब्दों में:—

तर्जः— छू लेने दो नाजुक होठों को

भावों की मृदु झंकारों से ये अन्तर्वीणा झंकृत है।
श्री नेमीश्वर के चरणों में श्रद्धा से मस्तक अवनत है ॥
यादव कुल की उज्ज्वल ज्योति, सकल विश्व के तम को खोती,
जिनके आलोकों से आलोकित होने को मन उद्यत है ॥
छल-2 करते सुख सागर को, वैभव के विस्तृत आकर[1] को,
कर पार दिखाया हम सबको मुक्ति का पथ अविरत है ॥
राजीमती सी कोमल नारी, ने तजकर कोमलता सारी,
जिनके पथ पर चल नारी जाति का गौरव रखा उन्नत है ॥

---

1 भण्डार

श्री कृष्ण जी के लिए भगवान् अरिष्टनेमि का आना विशेष प्रेरणादायी होता था। वे उनके पास आने का कोई मौका चूकते नहीं थे। भले ही उनकी मानसिक स्थिति और प्रशासनिक परिस्थिति ऐसी थी कि वे कोई नियम प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं कर सकते थे। घर, परिवार, शासन के अधिकारों को संपूर्णतः छोड़ कर दीक्षा लेना तो सर्वथा अशक्य था ही, श्रावक जीवन के व्रत लेना भी उनके लिए असंभव था। पर प्रभु के दर्शनों और प्रवचनों से उन्हें अपूर्व शांति मिलती थी, श्रद्धा बलवती होती थी तथा अनेक समस्याओं का निराकरण भी होता था। श्री कृष्ण जी दर्शनों, प्रवचनों के लिए जाते तो परिवार, कुटुम्ब एवं नगरी के और लोग भी उत्साहित होकर जाते थे। गौतम कुमार को जब ज्ञात हुआ कि भगवान् अरिष्टनेमि पधारे हुए हैं तो वह भी तीव्र भावना से भरपूर होकर भगवान् के समवसरण में पहुंचा। भगवान् की दिव्य, भव्य आकृति को देखा तो ठगा-सा रहा गया, आंखों में भगवान् की छवि समा गई।

तुझे देखा है अब किसी को देखने को जी नहीं चाहता,
की हैं बन्द आँखें तेरी सूरत देखने वाले ॥

आ. मानतुंग ने भी यही भाव प्रकट किए हैंः—

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जल-निधेरशितुं क इच्छेत् ॥

"आपके दर्शन किए तो और सब कुछ व्यर्थ है,
क्षीर सागर पाएं तो क्षाराब्धि[1] से क्या अर्थ है?"

गौतम कुमार ने भगवान् की मंगलमयी कल्याणी वाणी सुनी तो उसका रोम-2 पुलकित हो उठा। उसके अन्तर्मानस में युगों-2 से जमे

1 खारा सागर

हुए संशय एकदम विलीन होने लगे। उसे आज ये प्रकट हो गया कि तेरे अन्दर कितना गहरा दुःख दर्द समाया हुआ था जो केवल बाहरी अनुकूलताओं के आवरणों के कारण बाहर नहीं आ रहा था। छोटी-2 सुविधाओं को मैंने सुख का नाम दे दिया था, पर वास्तव में तो मैं दुःख, दर्द और पीड़ाओं के नीर से भरा एक बादल था।

"गम मेरे दिल पर किसी तलवार सा गिरता रहा,
और पत्ते की तरह दिल बीच से चिरता रहा।
मेरे अन्दर इक नदी थी जो बहुत खामोश थी,
मैं उसी में नाव सा बहता रहा तिरता रहा।
मैं कोई आकाश का आकार था अपने लिए,
और बादल की तरह मुझमें कोई घिरता रहा ॥"

भगवान् अरिष्टनेमि का ज्ञान प्रवाह बहता जा रहा था। गौतम कुमार कुछ अपने लिए समाधान ढूंढ रहा था। उसे पहली बार अपने खालीपन-खोखलेपन का अहसास हुआ। इस खालीपन को भरने का ठौर ठिकाना क्या है? क्या घर में रहकर यह कार्य संपन्न हो सकता है? नहीं! इस घर में तो मैं बचपन से आज तक रहता ही आया हूँ। यदि यहाँ यह रिक्तता भर सकती तो अब तक भर चुकी होती। क्या समाज में जाकर यह खोखलापन भरा जा सकेगा? नहीं, ये समाज तो स्वयं ही खोखली है, इसके पास धोखा है, छल है, औपचारिकता है, बनावटीपन है। ये समाज ज़िंदगी के नासूरों का समाधान करने वाली जमात है या मरहम लगाने वाली, पता नहीं। तो क्या समग्र संसार के दरिया में कूदने से समस्या समाहित नहीं हो सकती? उत्तर है— नहीं। मेरी आत्मा ने संसार का प्रत्येक पदार्थ अनन्तानन्त बार भोग लिया। शब्द, रूप, गंध रस, स्पर्श रूप काम भोगों की हर पर्याय का मैं स्वाद ले चुका, पर आज तक तृप्त नहीं हो पाया। कौन सा ऐसा स्थान है इस चौदह राजू लोक में, जिस पर मैंने अपना जीवन नहीं गुजारा। स्वर्ग, नरक, द्वीप, समुद्र,

पर्वत, तलहटी, घाटी और वादी, हर ठिकाने पर सिर पटक कर देख लिया, मगर मेरी सुख की अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पाई। उल्टा दुःख की मात्रा में पल-2 ईज़ाफ़ा होता गया। संसार के अधिकांश लोग जानबूझकर दुखों में उलझ रहे हैं।

एक गांव में बाढ़ आ गई। पीड़ितों को बचाने के लिए सेना का हैलीकॉप्टर आ गया। उस हैलीकॉप्टर ने कई चक्कर लगाकर पानी में डूबे हुए आदमियों को निकाल दिया। कई बार निकालने के बावजूद सेना का काम अधूरा ही रहा। एक बड़े अफसर ने गांव के सरपंच से पूछा- ये क्या माजरा है? सरकारी रिकॉर्ड कह रहे हैं कि इस गांव की जनसंख्या 600 है और हम तेरह सौ लोगों को निकाल चुके, ये क्या गड़बड़ है?

सरपंच ने कहा– देखो साहब, गांव में तो 600 की बजाय 500 आदमी ही रहते हैं। इस गड़बड़ी का कारण ये है कि गांव वालों ने हैलीकॉप्टर पहली बार देखा है। जब आप इन लोगों को पानी से निकाल कर बाहर किनारे पर ले आते हो तो ये हैलीकॉप्टर की सवारी का मजा लेने के लिए दोबारा तिबारा पानी में कूद जाते हैं।

यही तो समस्या है संसार की, उन्हें निकालने वाला मिल भी जाए, पर ये तो फिर संसार में कूद जाएंगे।

"मुझे रोकेगा तू ऐ नाखुदा क्या गर्क होने से,
कि जिनको डूबना हो डूब जाते हैं सफीनों[1] में"

संसार का स्वरूप खोलते हुए कुछ भजन की पंक्तियां गुनगुना ले। ये गुनगुनाहट केवल गौतम कुमार की ही नहीं, हमारी भी बननी चाहिए।

तर्जः– आ लौट के आ जा मेरे मीत तुझे मेरे गीत बुलाते हैं

ये नश्वर है संसार, तुझे हर बार बताया है।
तू करता नहीं क्यों विचार, तुझे हर बार बताया है ॥

1 तटों पर

लक्ष्मी की काहे ढेरी लगाए, आए न ये काम पैसा,
मुड़कर न आए, बहता ही जाए, दरिया तूफ़ानी है ऐसा,
तू जाएगा हाथ पसार, तुझे हर बार... ॥

सपने की माया, में क्यों लुभाया, किस काम आया है सपना,
होगा पराया, सुख का ये साया जिसको बनाया है अपना,
मत कर इसका एतबार, तुझे हर बार... ॥

गफलत में सोया, जीवन है खोया, ढोया महाभार दुख का
पल-2 है रोया, मन को न धोया, बोया नहीं बीज सुख का,
क्यों बैठा है हिम्मत हार, तुझे हर बार... ॥

आ जा शरण में, जिनवर चरण में, तारण तरण बस यही हैं
जीवन मरण में, प्रत्येक क्षण में, दुनिया चली जा रही है,
तू ले सच्चा आधार, तुझे हर बार... ॥

अथवा अन्य भजनः—

*तर्जः— **बाबुल की दुआएं लेती जा...***

संसार वृक्ष है वो जिसकी, छाया भी अक्सर जलती है।
इक पत्ता भी जब हिलता है, मानों असिधारा चलती है ॥

फूला है कभी बहारों में, पतझड़ में झड़ा अचानक है,
ऊपर से जगमग-2 है, अंदर से बड़ा भयानक है,
सुख दिखलाकर दुःख देता है, ये बात बड़ी ही खलती है ॥

जो फूल हैं खिलते कभी यहाँ, ये फूल नहीं हैं शोले हैं,
ममता से जब भी छुआ है, हाथों में पड़े फफोले हैं,
सुंदरता इतनी क्रूर यहाँ, विष कन्या बनकर छलती है ॥

है मोह जटिल और कुटिल मूल, और राग-द्वेष हैं स्कन्ध युगल,[1]
शाखाएं विविध कषायें है, विषयेच्छा की कलियां कोमल,
रस इसका है वासना सुरा, मन के प्याले में ढलती है ॥

1 वृक्ष के दो तने

भोगों के फल आपात मधुर,[1] परिणाम परंतु विषोपम है,
मत खाओ दूर से टल जाओ, भगवान् की आज्ञा उत्तम है,
मृत्यु पर मृत्यु मिलती है, जब खाने की होती गलती है ॥

इस वृक्ष को जिसने जान लिया, वैराग्य शस्त्र से काट दिया,
हर एक विषमता को उसने, है ज्ञान ध्यान से पाट दिया,
जब मन की दिशा बदलती है, जीवन की दशा बदलती है ॥

भगवान् की वाणी और गौतम कुमार की अनुभूति की wave length एक हो चली, तो उसने ये संकल्प ले लिया कि शेष जीवन संसार को अर्पित न करके भगवान् को अर्पित करुंगा। अपना संकल्प स्पष्ट करते हुए उसने प्रभु से कहा– 'प्रभो, मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आपके चरणों में प्रव्रज्या-दीक्षा अंगीकार करुंगा।' भगवान् ने कहा– **'अहासुहं देवाणुप्पिया'** जो तुम्हारी आत्मा को अनुकूल प्रतीत हो, तदनुसार कर लो। गौतम कुमार वापस अपने महलों में आया। माता-पिता के समक्ष अपना इरादा जाहिर किया कि मैं घर परिवार का त्याग कर मुनि जीवन अपनाना चाहता हूँ। माता-पिता को उसके इस परिवर्तन को समझना मुश्किल हो गया क्योंकि आज से पहले इसने ऐसी चर्चा कभी की ही नहीं थी। अचानक बम विस्फोट की भांति उसके निर्णय ने सबको स्तब्ध कर दिया। काफी देर तक दोनों ओर से तर्क-वितर्क होते रहे, दलील पर दलील दी जाती रही। एक तरफ संसार का आकर्षण था, दूसरी ओर अध्यात्म का बुलावा। आखिरकार भोग पर योग की, संसार पर संन्यास की, परिवार पर प्रव्रज्या की जीत हुई। माता-पिता सहमत हुए, आठों पत्नियां सहमत हुई। सबने मिलकर अपने सलौने सपूत को प्रभु चरणों में अर्पित कर दिया। चलो फिर इस कविता को गुनगुना लें:–

समोसरण में प्रभुवर ने अमृत सम फरमाया उपदेश,
गौतम को सुन वैराग्य हुआ, छूट गया सब राग और द्वेष,

---

1 प्रारंभ में मीठा

संसार ये झूठी माया है, ये तथ्य समझ में आया है,
आज्ञा लेकर घर छोड़ा है, दीक्षा का पथ अपनाया है,
गौतम से गौतम मुनि बने, करता जन-2 उनको वंदन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

दीक्षा लेने के बाद गौतम मुनि अंधकवृष्णि या धारिणी के पुत्र न रहे, अब वे भगवान् अरिष्टनेमि के लाडले धर्म-पुत्र या शिष्य बन गए थे। उन्होंने अपने पिता से मिलने वाली विरासत को बिसरा दिया और भगवान् की विरासत– अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, अनुत्तर संयम तथा अनुत्तर तप– को पा लिया। उस महाव्रती अणगार की पहचान वस्त्राभूषणों, महल अटारियों से न होकर ईर्यासमिति, भाषासमिति से होने लगी थी। मन, वचन, काया की गुप्तियों में उन्होंने अपना अमूल्य चारित्र भंडार सुरक्षित रख लिया। ब्रह्मचर्य गुप्तियों का कठोरता और अप्रमत्तता से निर्वाह किया।

उन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि से तो ज्ञान की विपुल संपत्ति अर्जित की ही, संघ के स्थविर मुनियों से भी विशेष ज्ञान-ध्यान सीखा। सामायिक चारित्र की, द्रव्य से ही नहीं, भाव से भी आराधना की अर्थात् अपने मन की हर विषमता का परिमार्जन कर उन्होंने समताभाव का अभ्यास किया। गौतम मुनि ने देव और गुरु की भक्ति में डूबकर स्तुतियाँ की और वदंनाएं की। अपने व्रतों का निरतिचार पालन करने में दत्तचित्त रहे। यदि छद्मस्थतावश कोई त्रुटि हो गई तो तत्काल प्रतिक्रमण करके व्रतों की शुद्धि बहाल कर ली। लंबे-2 समय तक कार्योत्सर्ग में खड़े होकर शरीर और आत्मा की भिन्नता का अहसास किया और उस अहसास का आनंद लिया। तन और मन में जिस किसी द्रव्य, क्षेत्र या काल से दोष की संभावना प्रतीत हुई, उसी द्रव्य-क्षेत्र-काल का प्रत्याख्यान कर दिया। सामायिक आदि छः आवश्यकों की सम्यक् आराधना के लिये उन्होंने आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सूत्र-अर्थ-तदुभय रूप आगम के पारगामी गौतम मुनि ने अपने

रत्नत्रय की शुद्धि और दृढ़ता के लिए दीर्घ और लघु, सब तरह की तपस्याएं भी की।

उनकी विहारचर्या भगवान् अरिष्टनेमि जी के साथ-2 चलती रही। प्रभु यदि द्वारिका में रहे तो वे वहां रहे। प्रभु ने वहां से प्रस्थान कर दिया तो उन्होंने भी प्रस्थान कर दिया। सारा जनपद उस महामुनि की चरण-रज से धन्य हुआ। गौतम मुनि की दीक्षा पर्याय बढ़ती जा रही थी। साथ ही साथ आनंद, सुख और समाधि की गहनता भी बढ़ती जा रही थी। उनके आध्यात्मिक आनंद के सामने इंद्रियों का सुख क्या मायने रखता है। भले ही लोग सोचते होंगे कि देवलोक के देवता सुखी होंगे, परंतु नहीं, आत्म रमण करने वाले गौतम मुनि के आनंद के आगे देवताओं का सुख नीरस और फीका था। दशवैकालिक सूत्र में लिखा है। किः—

"देवलोग समाणो य परियाओ महेसीणं,
रयाणं अरयाणं य महानरय-सारिसो"

महर्षि, महात्मा, साधु पुरुषों को यदि संयम में रस आ जाए तो उनके लिए संयम देवलोक के तुल्य आनंदप्रद है। इसके विपरीत, यदि रस न आए तो यही संयम नरक के समान दुःखप्रद भी है। संयम में मन लगेगा तो संयम सफल होगा। दुनिया में मन लगा रहा तो संयम विफल हो जाएगा। सुना होगा आपने— एक लड़का दसवीं क्लास में बार-2 फेल हो रहा था। उसके माता-पिता बहुत परेशान थे। एक दिन गांव के बाहर बैठा-2 वह बालक हंस रहा था। उसका दोस्त उधर से गुजरा। उसने पूछ लिया कि तू बिना बात क्यों हंस रहा है? वह लड़का बोला— मेरे माता-पिता की बातें याद करके हंस रहा हूँ। वे कहते हैं— बेटा, बोर्ड की परीक्षा है, दिल लगाकर पढ़ाई करना। मैं सोच रहा हूँ— दिल लगा-लगा कर मैं चार बार फेल हो चुका हूँ, अब पांचवी बार फिर दिल लगा लिया तो पास कैसे हो सकता हूँ? अब समझाओ उसे कि दिल कहाँ लगाना है— काम में या आशिकी में?

श्री गौतम मुनि का कण-2 संयम में रमा हुआ था। उन्हें हर पल दिव्य, स्वर्गीय सुख का अनुभव हो रहा था। धन्यता के उन पलों में उन्हें अपना अतीत और भविष्य विलीन प्रतीत होता था। जिस अतीत को छोड़ चुके थे, उसे पूर्णतः भुला दिया था। जो वक्त आने वाला था, उसकी अपेक्षा नहीं रखी। वर्तमान काल के जीवित क्षण को वो enjoy कर रहे थे। Past time dead हो चुका था, Future unborn था, only present time ही Live था। उस Living Moment पर उन्होंने अपनी चेतना टिका दी थी।

"गई वस्तु सोचे नहीं, आगम वांछा नाय,
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांय ॥"

एक क्षण उन्हें लगा कि मुझे भिक्षु प्रतिमाओं की पालना करनी चाहिए। वे गए प्रभु के चरणों में, प्रभु ने तुरंत अनुमति दे दी। एक प्रतिमा में आनंद आया तो दूसरी की ओर कदम बढ़े। यों करते-2 बारह भिक्षु प्रतिमाएं उन्होंने पूरी कर ली। कितना मनोबल था, कितनी देह अनासक्ति थी। भिक्षु प्रतिमाओं के पालन के बाद उन्होंने भगवान् की अनुमति (अनुज्ञा) लेकर गुण-रत्न संवत्सर नामक एक विशेष किस्म की तपस्या भी की, जो कि 16 महीने में पूरी की जाती है। इस तपस्या की व्यवस्था इस प्रकार होती है कि पहले महीने में एक व्रत के बाद पारणा किया जाता है अर्थात् महीने में 15 दिन तपस्या, 15 दिन पारणा। दूसरे महीने बेले-2 के बाद पारणा किया जाता है अर्थात् 20 दिन तप, 10 दिन पारणा। तीसरे महीने तेले-2 के बाद पारणा अर्थात् 24 दिन तप, 8 दिन पारणा। यों हर महीने तपस्या अधिक-2 होती जाती है। और सोलहवें महीने में 16-16 दिन की तपस्याएं करके दो दिन का आहार। 32 दिन का तप और दो दिन पारणा। इस तरह की संयम-मूलक तपस्याओं के बाद उनका शारीरिक सामर्थ्य बहुत कम रह गया। फिर भी अपने मनोबल को उन्होंने गिरने नहीं दिया अपितु सोचने लगे कि अपने बचे-खुचे शरीर बल को भी संथारे में लगा दूं।

धारिणी रानी का स्वप्न दर्शन
गौतम कुमार का जन्म उत्सव
बाल क्रीड़ा
शस्त्र शिक्षा
पाणिग्रहण

रात्रि ध्यान
निर्वाण
सूर्य आतापना
शत्रुंजय आरोहण

उन्होंने प्रभु अरिष्टनेमि के चरणों में अपनी भावना प्रकट की और आज्ञा लेकर कुछ विशिष्ट शक्ति-संपन्न स्थविर मुनियों की निगरानी में शत्रुंजय पर्वत पर चले गए। वहां उन्होंने संथारे का प्रत्याख्यान कर लिया। संथारा एक महीने के करीब चला, उसी अवस्था में उन्हें केवल ज्ञान भी प्राप्त हो गया तथा शरीर यात्रा पूरी होते ही वह आत्मा मोक्ष में जा पहुंची। सिद्ध, बुद्ध, परिमुक्त हुई और सर्व दुःखों का अंत करने के कारण 'अंतकृत्' कहलाई।

बारह वर्ष तक गौतम ने, तप व संयम में रमण किया,
बारह भिक्षु प्रतिमा पाली, संलेखनपूर्वक मरण किया।
सिद्ध बुद्ध और मुक्त बने, शत्रुंजय पर्वत पर जाकर,
नौ भाई समुद्र से विष्णु तक, गए मोक्ष मार्ग ये अपनाकर।
गुरुओं की कृपा से पूर्ण हुए ये दश अध्ययन परम पावन,
जिनवाणी के सुनने से ही भव-भव के कट जाते बंधन ॥

श्री गौतम कुमार मुनि को माध्यम बनाकर हमें भी अपना लक्ष्य चुनना है तथा घाती-अघाती कर्मों का घात करके सिद्ध गति को पाना है। पर्यूषण पर्वों की आराधना का यही ध्येय है कि हमारे जीवन में जो भी दोष-दुर्गुण जड़ जमाए बैठे हैं, उनका खात्मा कर हम भी सिद्धि को प्राप्त करें। चलो, भजन की चंद पंक्तियां गुनगुनाएं, सारा दिन दोहराते चले जाएं।

तर्जः– सौ बार जन्म लेंगे

(टेक) **गौतम की तरह हम भी, अपना कल्याण करें।**
विषयों की आग बुझा, हासिल निर्वाण करें ॥

1. **माँ बाप ने रोका था, पत्नी ने रोका था,**
अबंर ने बुलाया तो, अवनी ने रोका था,
दीक्षा के पंख लगा, हम ऊंची उड़ान भरें ॥

2. परिवार विशाल मिला, वैभव भी अपार मिला,
विद्या व कला कौशल, सत्ता अधिकार मिला,
निःसार इन्हें समझा, अपनी पहचान करें ॥

3. श्री नेमिनाथ भगवन्, थे तीर्थ तरण तारण,
उनके शुभ चरणों में, किया संयम व्रत धारण,
हम भी पद चिह्नों को, देखें प्रस्थान करें ॥

4. श्रुत ध्यान तपस्या से, संयम सोपान चढे,
अंतिम वेला आई, संथारे में उमड़े,
कैवल्य लिया तत्क्षण, सब भव अवसान करें ॥

5. इस अंतगड आगम में वर्णित हैं जो आत्माएं,
उनका सद्वृत्त सुने, क्या-2 हुई घटनाएं,
आए पर्यूषण हैं, सादर सम्मान करें ॥

जिस प्रकार गौतम अणगार ने मुक्ति को प्राप्त किया, उसी प्रकार शेष नौ महापुरुषों ने भी संयम तप के बल पर मुक्ति को पाया था। उन नौ के पिता अंधकवृष्णि वंश के थे और अंधकवृष्णि ही कहलाते थे। उनकी माताओं के नाम गुण-धारण के कारण धारिणी रूप में लिखे हैं।

आप सब भाई बहनों ने आगम वाणी सुनी तथा हमारा उत्साह बढाया इसके लिए हम आभारी हैं। ये आगम वाचना की शृंखला निरंतर आठ दिन तक सुनने का संकल्प लें तथा तरह-2 के नियम पच्चक्खाणों से इन दिनों की पावनता को बढाएं और अपने कर्मों की निर्जरा करें।

जय जिनेन्द्र!

द्वितीय पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– के हम तुम चोरी से...

हैं पर्यूषण आए, भव्य जन हर्षाए।
अवसर नहीं चूकना, सभी कर लें आराधना ॥ टेक ॥

1. पर्व अनेकों आते, खाने पीने के रोज़ हैं,
मात्र मनोरंजन फिर, पापों का बढ़ता बोझ है,
हल्का कर, बोझ ले, पर्व ये, देता है सूचना ॥

2. शास्त्र श्रवण करने की, अंदर से जागृत हो रूचि,
द्रव्य शुचि से बढ़कर, होती भावों की है शुचि,
श्रुत दर्पण, देख लें, ध्यान से, निज को संवारना ॥

3. आर्य सुधर्मा जम्बू, जी को आगम सिखला रहे,
उसी ज्ञान की झांकी, हम भी तुमको दिखला रहे,
अदंर की, आंख तुम, खोल लो, चाहो जो देखना ॥

4. सूत्र अंतगड़ जिसमें, महापुरुषों का जीवन चरित,
करी साधना उत्कट, सुनकर जन-मन होता चकित,
उन जैसे, बन सके, कठिन है, कुछ तो लें प्रेरणा ॥

5. श्री नेमि प्रभु के चरणों, में गौतम जी दीक्षित हुए,
सत्रह भ्राताओं ने, भी थे जीवन अर्पित किए,
था कैवल्य, पा लिया, छोड कर, संसार वासना ॥

अथवा दूसरा भजनः–

तर्जः– बच्चे मन के सच्चे...

आओ सज्जनो आओ, पर्यूषण पर्व मनाएं,
आज दूसरा दिन आया है इसको सफल बनाएं ॥ टेक ॥

1. अरिहंतो से दूरी है, ये अपनी मजबूरी है,
गुरुओं का सान्निध्य मिला, समझो अपना पुण्य खिला,
इनसे दूर न रहना है, धर्म भाव में बहना है,
नाव मिली तो क्यों डूबे हम भवसागर तर जाएं ॥

2. करनी हमें तपस्या है, होती दूर समस्या है,
देहभाव को छोड़ सकें, वृत्ति अंदर मोड़ सकें,
जीवन ये अद्वितीय बने, ऐसा कोई कार्य करें,
नर तन पाया है इसको भोगों में नहीं लुटाएं ॥

3. छः लालों को जन्म दिया, नहीं किसी से लाड़ किया,
मुनि बनकर जब आते हैं, माँ से लड्डू पाते हैं,
हुई देवकी विस्मित है, मेरी ही ये संतति है,
सुनकर हर्षित और दुःखित होती है प्रभु फरमाएं ॥

4. श्री कृष्ण आज्ञाकारी, वासुदेव हैं उपकारी,
माता की चिंता जानी, दूर करूं मन में ठानी,
तप से देव बुलाया है, माँ का मन हर्षाया है,
हम भी अपने पूज्य जनों की चिंता दूर भगाएं ॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के द्वितीय वर्ग के साथ तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन में देवकी द्वारा गर्भ धारण करने तक के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

श्रमण भगवान् महावीर को तथा पूज्य गुरुदेवों को वंदना करते हुए सभी भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र।

आज हम और आप फिर मिले हैं। भगवान् महावीर के हम शिष्य हैं, आपस में हम सब गुरु भाई हैं, साधर्मिक हैं। हमारा और आपका स्नेह भाव बहुत गहरा और सच्चा है। अपने इसी धार्मिक नाते के आधार पर आपने हमें बुलाया और हम आपके यहाँ आए हैं। इसी आने और बुलाने का परिणाम है कि हम आगमों की अमूल्य धरोहर से वाकिफ हो रहे हैं। जैसा कि आपको याद होगा, कल हमने अन्तकृद्दशांग सूत्र का पहला वर्ग पढ़ा, आज दूसरा वर्ग तथा तीसरे वर्ग का आधा भाग भी पढ़ा है। दूसरा वर्ग अत्यंत संक्षिप्त है तथा इसमें अधिक विषय-वस्तु भी नहीं है। तीसरा वर्ग काफी बड़ा है, उसे केवल एक दिन में पूरा कर पाना कठिन है। इसलिए सुविधा और रोचकता की दृष्टि से ये व्यवस्था बनाई गई है।

अंतगडदशांग जी आगम का, करते हैं भाव सहित वर्णन।
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

दूसरे वर्ग के आठ चरित-नायकों के नाम बताते हुए लिखा है– अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवंत, अचल, धरण, पूरण और अभिचन्द्र। इन आठ मुक्तिगामी महान् पुरुषों की राजधानी द्वारिका थी। पिता अंधकवृष्णि तथा धारिणी माँ के ये लाल थे। इन्होंने गौतम कुमार की तरह श्री अरिष्टनेमि भगवान् के चरणों में संयम स्वीकार किया। 16 साल तक साधना पूरी की और अंत में मोक्ष गए। इस वर्ग के आठों महापुरुषों को तथा पहले वर्ग के दस महापुरुषों को सगे भाई के तौर पर पेश करने की परम्परा रही है। बड़ी साधु वदंना के रचयिता आ. श्री जयमल जी म. ने लिखा हैः–

गौतमादिक कुंवर सगा अठारे भ्रात,
सब अंधकविष्णु सुत धारिणी ज्यारी मात ॥

यदि जरा सा भी गौर करेंगे तो स्पष्ट हो जाएगा कि ये अठारह सगे भाई नहीं थे अपितु अंधकवृष्णि खानदान के अलग-2 घरों के, अलग-2 माता-पिताओं के बच्चे थे। पहले वर्ग तथा दूसरे वर्ग में चार नाम हू-ब-हू एक हैं। अक्षोभ, सागर, समुद्र और अचल। कोई भी माता-पिता अपनी दो संतानों का एक नाम नहीं रखते। फिर अधंकवृष्णि अपने चार-2 बच्चों का वही नाम क्यों रखते? वास्तव में तो पिछले दस भी सगे भाई नहीं रहे होंगे और ये आठ भी सगे भाई नहीं रहे होंगे क्योंकि अंधकवृष्णि तथा धारिणी एक व्यक्ति का नाम न होकर सैंकड़ों नर और नारियों का Common संबोधन था। फिर भी यदि दस को सगा मानना है तो मान लें और इन आठ को भी सगा भाई माना जा सकता है पर 18 को सगा भाई नहीं माना जाना चाहिए। ऐसा विचार, विश्लेषण से समझ में आता है। शेष केवल-ज्ञानियों का विषय है।

आओ, अब तीसरे वर्ग की ओर प्रस्थान करें।

इसके तेरह अध्ययन हैं। नाम है— 1. अनीकसेन 2. अनन्तसेन 3. अजितसेन 4. अनिहत रिपु 5. देवसेन 6. शत्रुसेन 7. सारण 8. गज-सुकुमाल 9. सुमुख 10. द्विमुख (दुर्मुख) 11. कूपक 12. दारुक 13. एवं अनादृष्टि।

शुरु के 6 पात्रों का परिचय दो तरह से दिया जाएगा। एक तो वह परिचय है, जो बचपन से अंतिम समय तक सारे संसार को मालूम था। वे स्वयं जिस रूप में अपनी जानकारी देते थे, परिवार तथा सरकार के खातों में दर्ज था तथा इस आगम के प्रारंभिक पृष्ठों पर अंकित है। दूसरा परिचय भगवान् अरिष्टनेमि ने दिया है, जो केवल विशिष्ट आत्माओं को ज्ञात हुआ है। उस परिचय को समाज की मान्यता नहीं मिली। उस परिचय का वर्णन आठवें अध्ययन में मिलता है। आज दोनों ही

परिचयों से रु-ब-रू होना है। पहला परिचय बिल्कुल simple है, केवल Bio-data है, दूसरा परिचय रोचक, रोमांचक एवं Mysterious है।

वैभव से भरपूर भद्दिलपुर नगर में जितशत्रु के शासन में नाग गाथापति (अथवा गृहपति) की धर्म-पत्नी सुलसा के छः पुत्र थे। सभी पुत्रों का पालन पांच धाय-माताओं के माध्यम से हुआ। धनाढ्य परिवारों में धाय-माताओं का होना एक शान भी थी, एक आवश्यकता भी और कुछ स्वाभाविकता भी। छहों पुत्रों को आठ वर्ष से ऊपर की उम्र होने पर कलाचार्य को सौंप दिया गया। बचपन गुजरते-2, यौवन आते-2 वे कलाओं में पारंगत हो गए। सांसारिक जीवन जीने की क्षमता उनके तन और मन में प्रकट हो गई। यदि उन्हें आधी रात को भी निर्जन, एकांत स्थान पर जाना पड़ जाए तो कोई खौफ़ या दहशत नहीं मानते थे। वैश्य परिवार में उत्पन्न होने के बावजूद उनमें क्षत्रियोचित साहस का संचार हो चुका था। तब माता-पिता ने युग की परम्परा तथा अपने कुल एवं वैभव की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए 32-32 कुलीन कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण करवा दिया। प्रत्येक पुत्रवधू को करोड़ों स्वर्ण मुद्राएं तथा गृहोचित साधन भी प्रदान कर दिये गए। अर्थ और काम की प्रचुरता के बीच अचानक धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों का प्रवेश तब हुआ, जब प्रभु अरिष्टनेमि का भद्दिलपुर के श्री-वन उद्यान में पदार्पण हुआ। उनके प्रवचनों को सुना, तो अर्थ और काम से मुंह मोड़ लिया। धर्म यानि महाव्रत-धर्म को स्वीकार किया और प्रभु अरिष्टनेमि के संघ में सम्मिलित हुए। चौदह पूर्वों का अध्ययन कर ज्ञान के शिखरों को चूम लिया। कुल 20 साल की दीक्षा पर्याय में वो साधना की, जिससे सारे घाती-अघाती कर्म नष्ट हो गए और अंत में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए। इन छहों मुनियों का विशेष परिचय आगे मिलेगा। अभी हम सातवें मुक्ति-गामी सारण कुमार से भी परिचित हो जाएं। ये श्री कृष्ण जी के भ्राता हैं, वसुदेव के पुत्र हैं तथा माँ इनकी धारिणी

है। इनका वैवाहिक संबंध पचास कन्याओं के साथ हुआ। वैभव से वैराग्य, भोग से योग की यात्रा करते-2 बीस साल की दीक्षा में मोक्ष में पधार गए।

अब हमें गजसुकुमाल जैसे महानायक के जीवन पर दृष्टिपात करना है। इस महानायक को आसमानों से जमीन पर उतारने के पीछे जिन-2 व्यक्तियों का योगदान रहा, जिस-2 मोड़ से घटनाक्रम गुजरा, उसका विहंगम दृश्य आगमकारों ने स्वयं प्रस्तुत किया है। इतना सुखद-विशद वर्णन अन्य किसी महापुरुष का उपलब्ध नहीं होता, जितना श्री गजसुकुमाल जी का है।

भगवान् अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे हुए थे। उनके साथ अनीकसेन आदि वो छह मुनिराज भी पधारे हुए थे, जिन्हें भद्दिलपुर के श्रेष्ठी नाग एवं सुलसा का असीम प्यार और दुलार मिला था। उनका कद, रंग-रूप, नैन-नक्श एक दूसरे से मिलता था, जिससे उनकी उम्रों का फर्क मिट कर एक सरीखी उम्र का अहसास होता था। अलसी के फूलों की छटा जैसी उनकी देह कांति थी। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था। कानों के इर्द-गिर्द ऐसा आभा वलय था, मानों फूलों के कुंडल लहरा रहे हों। आगम में उन्हें नलकूबर के तुल्य बताया है। थोड़ा इस तुलना को भी समझ लें। उस युग के सुंदरतम हुस्न के फरिश्ते थे— नल और कूबर। दमयंती एक ऐतिहासिक साध्वी सती हुई है। उसके पति थे नल तथा उसके भाई का नाम था कूबर। दोनों अपने युग के सौंदर्य प्रतिमान थे। इन छह भाइयों में भी नल कूबर जैसा सौंदर्य उतरा था लेकिन जिस दिन से उन्होंने साधु-वृत्ति धारण की थी, उसी दिन से बेले-2 की तपस्या कर रहे थे। द्वारिका में आए, तब भी उनकी तपस्या का वही क्रम चालू था। एक दिन छहों भाइयों की तपस्या का पारणा था और वे भगवान् अरिष्टनेमि की आज्ञा लेकर दो-दो की जोड़ी बनाकर तीन टोलियों में आहार के लिए चले। अब हम श्री अरविंद जी के काव्य की सहायता लेते हैं:—

छह भ्राता इक जैसी सूरत नल कूबर सरीखे प्यारे हैं,
अरिष्टनेमि प्रभुवर के संग, नगरी में आज पधारे है।
बेले-2 तप करते हैं, आजीवन वो आत्मार्थ मुनि,
दो-दो की टोली में निकले, इस बार हैं वो भिक्षार्थ मुनि।
कई घरों को फरस के पहुंचे देवकी रानी के राजभवन,
जिन वाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

जब तीनों टोलियां आहार लेने के लिए चली थी, तब व्यवस्था बना ली थी कि एक मोहल्ले की तरफ पहली टोली जाएगी, दूसरे मोहल्ले की तरफ दूसरी तथा तीसरे मोहल्ले की तरफ तीसरी। वे छहों मुनि द्वारिका के Map से अनभिज्ञ थे। उन्हें Idea नहीं था कि राजमार्ग के मध्य में स्थित देवकी के महल के पास सारे मोहल्ले खुलते हैं। इसलिए मुनियों की एक टोली उच्च, नीच, मध्यम– सब कुलों को फरसती-2 देवकी के महल में पहुंच गई। देवकी दोनों मुनियों के आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व को देख भावाभिभूत हो गई। हर्ष-तुष्टि-आनंद-प्रीति से मन का कण-2 झूम उठा, उठकर मुनियों की अगवानी की। तीन बार दाहिनी ओर से प्रदक्षिणा पूर्वक वदंना की। फिर मुनियों को रसोई तक लाई, उन्हें केसरिया लड्डू बहराए और फिर छोड़ने गई। देवकी उदार भावों वाली महिला थी। कुछ लोग स्वभाव से ही कंजूस होते हैं। न खा सकते, न खिला सकते, न किसी को खाते देख सकते।

एक बणिए को कहीं से टॉफी मिल गई। मुंह में डालकर चूस रहा था। पर टॉफी मुंह से निकलकर गिर गई। उस टॉफी को ढूंढने लगा। बड़ा बेचैन था। तभी उसका पड़ौसी आ गया। पूछने लगा– सेठ जी, क्या ढूंढ रहे हो? बणिया बोला– टॉफी गुम हो गई, उसे ढूंढ रहा हूँ। पड़ोसी बोला– क्यों दुःखी हो रहा है? और मिल जाएगी। बणिया कहने लगा कि टॉफी खोने का इतना दुःख नहीं है। दुःख इस बात का है कि किसी को वह टॉफी मिल गई तो एक बार में सारी फोड़कर खा जाएगा। मैं उस टॉफी को कई दिन चला लेता।

देवकी देवी आनंद की तरगों में झूम ही रही थी कि दो मुनियों की दूसरी टोली भी अन्य दिशा से उसके महलों में पधार गई। खुशियां दुगुनी हो गई। अपनी धन्य-भागिता को बढ़ाते हुए दोनों मुनियों की झोली में आहार बहराया, भक्तिपूर्वक विदा किया। देवकी महान् प्रसन्नता के झूले में झूल ही रही थी कि तीसरी टोली के चरण और पड़ गए। आहार देने की भावना पहले भी फली थी, पर आज तो मज़ा ही आ गया। लगा कि आसमान ने छप्पर फाड़ कर खुशियों की बरसात कर दी। दिल खोलकर उन मुनियों को आहार बहराया। मुनियों के आने तथा आहार बहराने की खुशी के बीच एक हल्की सी आशंका का निराकरण करने के लिए देवकी देवी ने मुनियों से पूछा– पूज्य मुनिराजों, द्वारिका बारह योजन लंबी तथा नौ योजन चौड़ी है। यहाँ हर तरह की मौज है, पर क्या यहाँ मुनियों को पूरी तरह आहार नहीं मिलता जो एक ही घर में बार-2 आना पड़ता है? मुनियों ने उत्तर दिया– हे देवानुप्रिये, हम भद्दिलपुर नगरी के सेठ नाग और सुलसा सेठानी के पुत्र होने से सगे छह भाई हैं। हमारी शक्ल एक सरीखी होने से आपको ये भ्रम हो गया है वर्ना आपके घर पर आने वाले संत अलग-2 हैं तथा नगरी में आहार पानी की सुलभता है। इसलिए नगरी के सौभाग्य-दुर्भाग्य की चिंता बिल्कुल मत करना। इस प्रसंग को अधिक काव्यात्मक और मन भावन बनाने के लिए कविता की दो विधाओं को आपके सामने प्रस्तुत करना है।

संयोग से बारी-2 ही, वहां तीन टोलियां आती हैं,
इक जैसी आकृति के कारण, रानी शंकित हो जाती है।
मुनियों को शायद नगरी में, आहार सुलभ नहीं आज हुआ,
बहराकर केसरिया मोदक, देवी ने पूछ वह राज लिया।
समाधान मिला सम्यक् उनसे, फिर क्षमा मांगती है फौरन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

भजनः–

तर्जः– चंदन सा बदन चंचल चित्तवन

गुरुवर आए खुशियां लाए मन वीणा कर झंकार उठी।
नगरी प्यारी किस्मत हारी दिल से है करुण पुकार उठी ॥ टेक ॥

1. इक घर में एक घड़ी में ही इक टोली आई तीन दफा,
खुशियों के साथ में गमगीनी दिल में देती तूफान मचा,
है नहीं पूछने की बातें फिर भी है कुछ दरकार उठी ॥

2. हे देवी पहली बार मुनि आए वो टोली अलहदा थी,
दो मुनि नए आए घर पर जिनकी तो नजाकत उमदा थी,
हम अलग मुनि हैं अब आए ये सत्य कथा साधार उठी ॥

3. हम छह भ्राताओं की शक्लें भ्रम पैदा कर देती अक्सर,
है सुलसा हमारी प्रिय जननी हैं नाग गृहपति पितृवर,
ले नेम प्रभु की चरण धूल किस्मत अपनी है संवार उठी ॥

4. भ्रम दूर किया और चले गए मुनिराज प्रभु के चरणों में,
इक याद अचानक उभर गई जो सुप्त थी अन्तः करणों में,
महारानी देवकी प्रभुवर का करने पावन दीदार उठी ॥

मुनियों ने बड़ी सहजता से स्थिति को स्पष्ट किया। यही खूबसूरती होती है मुनियों के व्यवहार की और भाषा की। वे किसी की जिज्ञासा को अपने लिए आरोप नहीं मानते। यदि मुनियों में गंभीरता न होती तो ये सोच लेते कि इस रानी को अहंकार है, इसका हृदय अनुदार है, ये हमारा तिरस्कार कर रही है आदि-2। परंतु उन दोनों मुनियों ने बात को गंभीरता से लिया और समाधान कर दिया। मुनियों के जाने के बाद देवकी देवी अपने अतीत में खो गई। उसे ठेठ कुंवारेपन की एक घटना याद आ गई। मैं पोलासपुर नगर में थी। तब अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने कहा था– 'हे देवकी, भविष्य में कोई नारी

तुझ जैसी माँ नहीं होगी क्योंकि तेरी गोद से 8 सुदंरतम पुत्रों का जन्म होगा। पूरे भरत क्षेत्र में तेरे पुत्रों के समान और पुत्र नहीं होंगे।' इस मुनि कथन की असत्यता से उसका मन उदास हो गया। सोचने लगी— 'इन छह मुनियों की माँ मुझसे अधिक पुण्यशालिनी है जिसने इतने सुरूप सुंदर-भव्य पुत्रों को जन्म दिया है। खैर, मैं क्यों परेशान होऊं, प्रभु अरिष्टनेमि भगवान् पधारे हुए हैं। उनसे जाकर अपनी शंका का निरावरण कर लूं।' धर्मसभा में जाने लायक रथ को तैयार करवाकर देवकी देवी भगवान् के समवसरण में पहुंची। भगवान् ने उसके कहने से पूर्व ही उसके मन की बात कह दी कि हे देवकी देवी, क्या तुम इन मुनियों की माँ तथा अपने बारे में पूछने आई हो? तो सुनो, न तो अतिमुक्त मुनि के वचन मिथ्या हैं, न तेरी अनुभूतियां ही मिथ्या हैं। दोनों ही तथ्य-सत्य के निश्चय-व्यवहार की प्रतिच्छायाएं हैं। अतिमुक्त मुनि के वचनों की सच्चाई इस प्रकार है कि सुलसा को कुंवारेपन में पता चल गया था कि मेरी संतान मरी हुई पैदा होगी। अपने भावी अभिशाप और संताप का उपचार करने के लिए उसने हरि-नैगमेषी देवता की आराधना की थी। हरि-नैगमेषी देवता पहले देवलोक के स्वामी शक्रेन्द्र की सेना के एक खंड का नायक देवता है। उसके अनेक कार्यों में गर्भकाल एवं बाल्यकाल से संबंधित देखभाल तथा परिवर्तन शामिल हैं। इस देवता के नाम का उच्चारण हरिण-गमेषी के रूप में किया जाता रहा है। इस अशुद्ध उच्चारण का परिणाम ये निकला कि कुछ व्यक्तियों ने सोच लिया कि इस देवता का चेहरा हरिण जैसा होगा। इस सोच के तहत कुछ चित्रकारों ने इस देवता का आकार बनाते हुए इसका मुंह 'हरिण (मृग)' जैसा बना दिया तथा इसके सिर पर सींग भी लगा दिए। शब्दोच्चारण की असावधानी क्या-2 गुल खिला सकती है, ये इस शब्द से ज्ञात होता है।

उस देवता ने खुश होकर सुलसा के जीवन के दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल दिया। सुलसा का और तेरा ऋतु कालचक्र, गर्भधारण, गर्भपालन तथा प्रसूति समय साथ-2 कर दिया और समाधान हो गया। उस देवता

ने न तो मरे हुए बालको को जीवित किया, न जीवित बालकों को मारा। बस उसने तो दोनों का स्थान परिवर्तन कर दिया। इस बात का ज्ञान न तुझे हुआ, न उसे। इस तरह एक के बाद एक तेरे छह पुत्र तेरे पास से सुलसा के पास पहुंच गए और सुलसा के मरे हुए छह पुत्र तेरे पास आ गए। सुलसा तो यही मानती रही कि देवता ने मेरे मरे हुए बच्चे जिंदा कर दिए और तू ये समझती रही कि मेरी कोख से मरे हुए बालक जन्मे हैं। इसका फायदा केवल सुलसा को ही नहीं, तुझे भी बहुत हुआ। यदि तेरी संतानों को कंस सताता और मारने की कोशिश करता तो तेरा दुःख अधिक बढ़ जाता। दोनों माताओं को प्रसूति के समय जो भीषण संताप की संभावना थी, वह संभावना टल गई। तुमने जो ज़िंदगी की सच्चाई देखी और अनुभव की, वह अपनी जगह वास्तविक (Realistic) है तो अतिमुक्त मुनि की वाणी एक गहन धरातल पर सही एवं सच्ची है। इसलिए अब ये निश्चय मान ले कि ये छहों मुनि तेरी कोख के जाए हैं, जिनका पालन पोषण भद्दिलपुर के नाग गृहपति और सुलसा के आंगन में हुआ अर्थात ये तेरे पुत्र हैं। देवकी देवी ने जैसे ये बोल सुने, उसकी युगों-2 की शंका बुझ गई। मातृ-वात्सल्य की गहरी प्यास जाग उठी। आत्म-तृप्ति से उसका रोयां-2 पुलकित हो उठा। हर प्रसूति के समय झेले दर्द, गम और रंज के लम्हें मधुरता में बदल गए। पहुंच गई तत्काल इन छहों मुनियों के आगे। आंखे झरने लगी, दूध बहने लगा, शरीर रोमांचित हो गया, आभूषण तंग हो गए। शरीर-प्राण-मन और हर अंग-प्रत्यंग भीगा-2 सा हो गया। एकटक उन्हें देखती रही। अपने उन लाडलों के लिए होठों से निकले शब्द संगीत बन कर फूटने लगे।

तर्जः– होली पे उड़े रे गुलाल...

मैय्या को लो पहचान, लाडले छह पुत्रो,
देवकी के तुम हो प्राण, लाडले छह पुत्रो ॥

देव ने संभाले, पता नहीं था,
सुलसा ने पाले, पता नहीं था।
जाने नेम भगवान्, लाडले....॥

करें तपस्या बेले-2,
बाईस परीषह हंसकर झेले।
जिन शासन की शान लाडले....॥

घर आए तो टोक दिया था,
तुमने सत्यालोक दिया था।
हुआ मेरा समाधान लाडले...॥

भोली माँ की भूल क्षमा हो,
ये दरिया नहीं कभी थमा हो।
माँ ये मांगे दान, लाडले...॥

तृप्ति का छोर तो नहीं मिला, पर फिर भी जाना तो था ही। भगवान् को वंदना की और रथ पर सवार हो अपने घर लौट आई। शयन कक्ष में बैठी थी कि पुरानी यादों का बवंडर दिमाग में उठ खड़ा हुआ। अपनी गोद से छिने छः लालों की तड़पन ने उसके मौजूदा सुखों को छीन लिया। उसकी आत्मा बिलख उठी उस वक्त के लिए, जब उसकी गोद में सलोने से बालक हों। उन माताओं को धन्यवाद देने लगी जो अपने कुक्षि के जाए पुत्रों को जी भर कर लाड़ लड़ाती हैं, अपने स्तनों का दूध पिलाती हैं, लोरियाँ गाती हैं और तुतली बोली से मन को बहलाती हैं।

उसे प्रतीत हुआ कि मेरी कोई तमन्ना न पहले पूरी हुई और न आगे हो सकेगी। उसके हताश मन की पीड़ा के लिए शायर के चंद शब्द हैं:—

दीवारों से बातें करना अच्छा लगता है,
हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है।

दुनिया भर की यादें हमसे मिलने आती हैं,
सांझ ढले इस सूने घर में मेला लगता है।
इस बस्ती में कौन हमारे आंसू पौंछेगा,
जिसको देखो उसका दामन भीगा लगता है।
किसको पत्थर मारुँ 'कैसर' कौन पराया है,
शीश महल में हर इक चेहरा अपना लगता है ॥

देवकी को मलाल है कि मुझे सात पुत्रों में से किसी एक का भी बचपन निहारने का सौभाग्य नहीं मिला। मेरा प्यारा कृष्ण, मेरा लख्ते ज़िगर, मेरी आंखों का तारा, ये भी तो व्यस्त रहता है। जब यहाँ होता है तो मेरे पास आता रहता है और बाहर चला जाता है तो फिर इसका कुछ पता नहीं, कब आए। मेरी आंखे पथरा जाती हैं इसकी बाट जोहते-2।

कभी-2 तो छह-छह महीने लग जाते हैं। इसकी व्यस्तताएं इतनी कि इसे फुर्सत ही कहाँ मिलती हैं? दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र के तीन खंडों की जिम्मेदारी इसके कंधों पर है। सारे यादव खानदान की समस्याएं इसे सुलझानी होती हैं। कौरव-पांडवों के बीच सुलह-सफाई और लड़ाई का सूत्रधार भी तो यही है। इस कारण कभी-2 छः महीनों तक इसका मुखड़ा देखने से वंचित रह जाती हूँ। चिंता और शोक के समुद्र में डूबती, उतरती देवकी के सामने तभी श्री कृष्ण जी चरण वंदना के लिए आ गए। माँ को पता ही नहीं चला कि तेरे सामने कृष्ण आ खड़ा हुआ है। उसने माँ को नमस्कार किया तो भी माँ ने उसकी ओर नहीं देखा। श्री कृष्ण के लिए ये बात अविश्वसनीय थी। आखिरकार उसने पूछ ही लिया– माँ आप हमेशा तो मुझे देखकर खिल जाती हो, पर आज तो आंख उठा कर भी नहीं देख रही हो, क्या कारण है? देवकी देवी ने कृष्ण को देखा और बोली-बेटा, मेरी समस्या समझ से बाहर है। मुझे सात पुत्रों की माँ बनने का सौभाग्य मिला, पर बचपन किसी एक का भी नहीं देखा। मैंने माँ बनने का क्या फायदा उठाया। सात

में से छह पुत्र तो मेरी नज़रों से दूर, मेरी कल्पना से परे भद्दिलपुर में पले, जिनको मैंने कल ही देखा है। तुझे हमने जन्मते ही गोकुल में भेज दिया। तू मेरे पास आया, तब तक तू जन-नायक बन चुका था। तेरी हर जगह ज़रूरत पड़ती है इसलिए घर पर कम, बाहर ज्यादा रहता है। छह-2 महीने तेरा मुखड़ा देखने के लिए तरस जाती हूँ। मेरी व्यथा का क्या अंदाजा लगाया जाएगा। बेटा, रहने दे, इस दर्द भरी बदली को मेरे भीतर ही भीतर बरसने दे, यों कहकर सुबक पड़ी देवकी रानी।

श्रीकृष्ण जी ने माँ की मानसिक पीड़ा को पहचाना। उस पीड़ा का समाधान तो निकालना ही था। पहले माँ के मन को तसल्ली देनी थी। तसल्ली से पहले मन बहलाना भी था ताकि माँ का ध्यान Divert हो। कई बार ध्यान Divert करना ही ज़रूरी होता है।

एक लड़के को उसके पिता ने गांव से शहर में पढ़ने भेज दिया। वहां उसकी company खराब हो गई। पढ़ाई से मन हट गया और आवारागर्दी करता। कई बार फेल हो गया। पिता ने उसे ultimatum दे दिया– यदि इस बार फेल हो गया तो तुझे पाली बनाकर पशु चराने लगा दूंगा। इस बात से डर तो गया पर मेहनत फिर भी नहीं की। फेल तो होना ही था। रिजल्ट के बाद घर आया। पिता ने पूछा– बेटा इस बार तो पास हो गया होगा? लड़का होशियार निकला। कहने लगा– हाँ, पिता जी, इस बार पास तो हो गया पर अभी दसवीं पूरी करने में एक साल और लगेगा। पिता भोला था। बोला– बेटा फिर कोई बात नहीं। हमें तो पास होने से मतलब था। साल तो चाहे तू चार और लगा लेना। यह है ध्यान Divert करने की कला। इसलिए श्री कृष्ण जी ने देखते ही देखते scene change कर दिया। अपने को साल-दो-साल का बालक बना लिया और माँ की गोद में जाकर बैठ गया। देवकी भी किसी स्वप्न लोक में खो गई। उसे लगा कि सचमुच मेरी गोद में एक दूध मुंहा बालक खेल रहा है। भाव विभोर होकर माँ उसे खिलाने लगी। अपनी बाल सुलभ शरारतों के लिए कृष्ण मशहूर

है ही। उसने गोकुल में जसोदा माँ को छकाया तो आज वही दृश्य माँ देवकी के सामने पेश करने लगा।

माँ के भोलेपन तथा श्री कृष्ण जी के बचपन का सजीव चित्रण करते हुए पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. ने सन् 1948 में एक गीत लिखा था। उसकी चंद लाइनें सुनें:—

तर्ज:— ढाल: सतशील श्री ने महिमा बढ़ाई सतशील की

ले खेल ले मैय्या, कृष्ण कन्हैया तेरी गोद में ॥ टेक ॥

1. लाड़ लड़ावे देवकी रानी, भूल गई ये नटवर,
माँ को उपजे आनंद अद्‌भुत, खुश होता है अन्तर ॥

2. देर हो गई माँ नहीं रीझी, भूल गई सब बात,
दुद्‌ध देओ ऐ माता मेरी, कृष्ण कहे तुतलात ॥

माँ उसके लिए दूध का प्याला लेकर आई। कृष्ण ने पीया तो मुंह सिकोड़ लिया। रोते-2 बोला— इसमें मीठा— इसमें मीठा तो है ही नहीं, मैं कैसे पीऊंगा? माँ ने इसमें मीठा डाल दिया और घोल दिया। कृष्ण ने एक घूंट भरी और बिफर गया- इसमें ज्यादा मीठा है, इसमें से मीठा निकाल। माँ बोली— 'इसमें से मीठा नहीं निकला जा सकता। या तो इस प्याले में थोड़ा और दूध डाल दूं या फिर दूसरा दूध ले आऊं और तुझे जितनी ज़रूरत हो उतना मीठा डाल दूं।' मगर कृष्ण तो जिद्‌द पर अड़ गया— 'नहीं, इसमें से ही मीठा निकाल।' माँ तो परेशान हो गई। कृष्ण जी की लीलाओं को कौन समझ सकता है? फिर भजन की कड़ियां पकड़ लें:—

ले खेल ले मैय्या, कृष्ण कन्हैय्या तेरी गोद में... ॥

3. मीठा डालो अधिक डला है, फेर निकालो माता,
कैसे मीठा निकले रे बेटा, नहीं समझ में आता ॥

4. रो-रोकर है कृष्ण डरावे, माँ ने समझी चाल,
तू तो मेरा कृष्ण कन्हैय्या, बन बैठा अब बाल ॥

आखिर माँ को कहना ही पड़ा- नटखट, तू अपने मूल रूप में आ जा। माँ का संकेत मिला। श्री कृष्ण जी अपने वास्तविक आकार में प्रकट हो जाते हैं। माँ को तसल्ली देते हैं कि माँ, चिंता मत कर, मैं पूरा प्रयत्न करुंगा कि मुझे छोटे भाई की प्राप्ति हो। कृष्ण पर, कृष्ण के वचनों पर माँ को भरोसा था। वह जानती थी कि मेरे लिए यह सब कुछ कर सकता है।

श्री कृष्ण ने विश्व के कष्ट मिटाए, ये उनका secondary काम था। उनका Primary काम था अपने माता-पिता की सेवा। उसे पता था कि मेरे माता-पिता ने कितने कष्ट झेले हैं। जेल की यातनाओं से गुजरकर उन्होंने अपने दिन और रात कैसे काटे हैं, ये वही जानते हैं। मुसीबत का वो वक्त तो बीत गया पर उस वक्त के दर्द अब भी इनकी सांसों में बसे हुए हैं। इसलिए श्री कृष्ण जी अपने माता-पिता को सुख-शांति-समाधि देने के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकते थे।

भले ही आज का युग इस सत्य को माने या न माने, पर प्राचीन भारत वर्ष में एक गृहस्थ के लिए माता-पिता तीर्थ से बढ़कर होते थे।

"यं कष्टं माता-पितरौ सहेते संभवे नृणाम्
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष-शतैरपि।"

अपनी संतान के विकास के लिए माता-पिता इतना कष्ट उठाते हैं कि उनका कर्जा सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं उतर सकता।

"माता-पिता का उपकार है निश्छल निरर्गल प्यार है
बनना श्रवण भी ठान लो कर्जा न उतरेगा जान लो ॥"

बड़ी विचित्र बात है कि कुछ लोग जीते जी अपने माता-पिता की परवाह नहीं करते बल्कि कुछ तो उन्हें उल्टे कष्ट देते हैं और मरने के बाद उनके ऊपर दुशाले चढ़ाते हैं, उनकी Photo पर माला अर्पण करते हैं। उनकी स्मृति में श्राद्ध करते हैं और पंडितों को जिमाते हैं।

"आन को हर आन उनकी लांघा है,
हकूक उनका हर एक मांगा है।
बना Photo जड़ाकर Frame में,
बड़ों को खूंटियों पर टांगा है ॥" (दीवारों पर)

ऐसे भी महानुभाव मिलते हैं जो अनाथाश्रमों में जाकर बूढ़े, लावारिस लोगों को खाना बांट देंगे, पर अपने घर में तड़फते माता-पिता से नहीं पूछेंगे कि आपकी क्या ज़रूरत है। ऐसे मीडिया-लोभी समाजसेवी यदि अपने घरों की हालत सुधार लें तो ज्यादा बेहतर है।

"घर में तो अंधेरा और जाके मस्जिदों में,
हमने जलाए घी के बेशक दीये तो फिर क्या?"

श्री कृष्ण जी अपने फर्ज को और कर्ज को भली भांति समझते थे। माँ की चिंता का निवारण किस तरह हो, ये चिंतन करने लगे। एक बात ध्यान में आई– किसी super-natural power का सहारा लूं तो रास्ता जल्दी मिल सकता है। इसलिए तत्काल पौषधशाला में चले गए। गर्भ के कार्यों के लिए अधिकृत हरिनैगमेषी देवता को बुलाने के लिए विशेष प्रकार का तेला कर लिया। देवता प्रकट हुआ और पूछने लगा– 'श्री कृष्ण जी, बोलो, आपकी क्या तमन्ना है।' श्री कृष्ण जी बोले– 'देवप्रवर, मैं चाहता हूँ कि मुझे छोटे भाई का वरदान मिले।' हरिनैगमेषी देव ने कहा– 'हे देवानुप्रिये, एक आत्मा देवलोक से च्यवन कर धरती पर आने वाली है। वह तुम्हारे भाई के रूप में आएगी। उसके जीवन का एक पहलू ये भी होगा कि वह बचपन बीतने पर यौवन में प्रवेश करते-2 घर-परिवार-संसार को

छोड़कर श्री अरिष्टनेमि प्रभु के चरणों में प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा ग्रहण कर लेगा।' देवता ने इस विषय को तीन बार कहा और विदा हो गया। श्रीकृष्ण जी इस आश्वासन से संतुष्ट हो गए और पौषधशाला से सीधे अपनी माँ के चरणों में पहुंचे। चरण-स्पर्श किया और कहा कि– माँ, अब आप निश्चिंत हो जाओ क्योंकि मुझे छोटे भाई की शीघ्र ही उपलब्धि होगी। आपको उसका बचपन देखने का, उसे खिलाने का, बहलाने का मौका मिलेगा। आप अपने सभी अरमान पूरे कर सकोगी। माँ ने कृष्ण की बलैया ली और उसे विदा किया। कुछ समय बाद देवकी देवी ने सोते हुए अपने सपने में सिंह को देखा। एकदम जाग उठी। उसे अहसास हो गया कि मेरी कुक्षि में किसी दिव्य आत्मा का अवतरण हुआ है। पूरी रात देवकी देवी देव-गुरु-धर्म की स्तुतियां गुनगुनाती रही। एक लंबे अंतराल के बाद उसे प्रकृति ने माँ बनने का सौभाग्य प्रदान किया था। उसकी कल्पनाओं को पंख लग गए थे। नए-2 भाव उसके अन्तर्मन में उमड़-घुमड़ कर आते और उसके अंग-2 में खुशियों की बरसात होने लगती।

बड़े विवेक और यतना के साथ वह गर्भस्थ शिशु का पालन कर रही थी। अपने भोजन, रहन-सहन, सोच और विचार को संतुलित, संयमित और नियंत्रित करके वह आगे बढ़ रही थी। एक भावी माँ को अपनी कोख में पलने वाले शिशु के लिए न केवल अपना रक्त-माँस आदि ही देना पड़ता है, उसे अपनी हर इच्छा का भी बलिदान करना पड़ता है। देवकी तो अपने पुत्र का मुंह देखने के लिए सर्वस्व त्याग करने को तैयार थी।

आपके सामने आज की वाचना का सारांश पूर्ण हो रहा है। अब एक दो Points की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। पहला बिंदु है कि देवकी देवी ने तीसरी टोली के मुनियों से पूछा कि आप तीसरी बार क्यों पधारे, क्या द्वारिका में दान-विधि का प्रसार खत्म हो गया है? उस श्राविका को अपने घर पर मुनियों के आने की तो बेहद खुशी थी। इसी खुशी के कारण तीनों बार आहार बहराया। परंतु अपनी नगरी की

भगवान् अरिष्टनेमि देवकी की छः मुनियों के हम-शक्ल होने की शंका का समाधान करते हुए

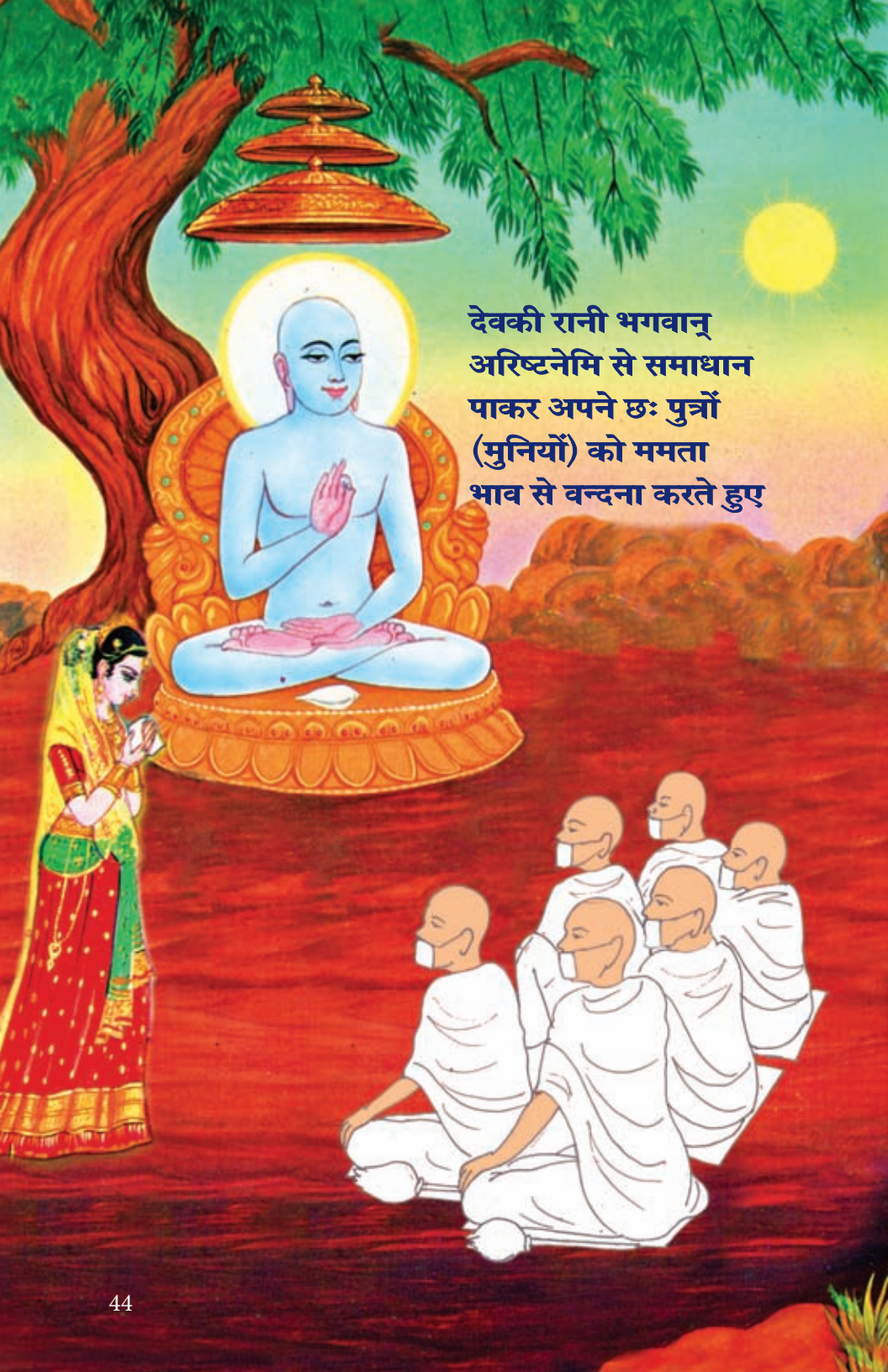

देवकी रानी भगवान्
अरिष्टनेमि से समाधान
पाकर अपने छः पुत्रों
(मुनियों) को ममता
भाव से वन्दना करते हुए

चिंता हुई कि इतनी समृद्धि के बाद भी लोग दान-धर्म से विमुख हो रहे हैं। जिस घर और नगर में दान भावना बनी रहती है, श्रमण-ब्राह्मणों को उपयोगी सामग्री बहराई जाती है, वहां का पुण्य तो बढ़ता ही है, उनकी निर्जरा भी पर्याप्त मात्रा में होती है। इसलिए किसी संत महात्मा का गृहस्थ के घर दिन में दो तीन बार जाना निषिद्ध नहीं है। हाँ, 5-10 मिनट के अंतराल में ही दो-तीन बार जाना अव्यावहारिक हो सकता है, पूरे दिन में नहीं।

दूसरा बिंदु है– हमारे पर्यूषणों की आराधना। इन दिनों समाज के सभी घरों का Participation होना चाहिए। सभी घरों के सभी सदस्यों का। बुज़ुर्गवार आएं, उनका बहुत-2 शुक्रिया है। परंतु हमें समाज के युवकों को भी यहाँ लाना है। उन्हें इस पर्व का महत्त्व पता होना चाहिए। बालक-बालिकाओं को भी अवश्य लाएं। ठीक हैं, उनके schools हैं, Tuitions हैं, कार्टून तथा कई और काम है, परंतु स्थानक इन सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। वे प्रवचन में न आ सकें, कोई बात नहीं, पर वे प्रातः प्रार्थना में आ सकते हैं। दोपहर को आकर माला कर सकते हैं। रात्रि प्रतिक्रमण में, धर्मचर्चा में शामिल हो सकते हैं। उन्हें लाना अपने भविष्य को सुरक्षित बनाना है। आज प्रत्येक माता-पिता को अपने बच्चों के भविष्य की चिंता रहती है, क्योंकि बच्चों के साथ ही माता-पिता का भविष्य जुड़ा हुआ है। यदि आप अपना तथा अपने बच्चों का भविष्य सुखी, शांतिमय और समृद्ध बनाना चाहते हो तो इन्हें धर्म संस्कारों से जोड़ो। धर्म संस्कारों से जोड़ने के लिए उन्हें धर्म स्थानकों से जोड़ो। किसी कारण धर्म गुरुओं से जुड़ाव नहीं भी बना तो धर्म स्थानक का जुड़ाव बच्चों को संस्कारों से जोड़ देगा। आप देखें, सिक्ख समाज में गुरुओं की परम्परा नहीं है। पर वे अपने बच्चों को शुरु से ही गुरुद्वारों से जोड़ देते हैं। परिणामस्वरूप वे बच्चे ता-ज़िंदगी अपनी सिक्ख विरासत को संभाले रहते हैं। मुसलमानों में भी मस्जिद के लगाव के कारण उन्हें मज़हब की तालीम मिलती रहती है। कहीं भी देख लो, प्रायः सभी धर्मस्थानों में उस-2 धर्म के अनुयायी नियमित रूप से जाते

हैं। पर हमारी स्थानकों में हमारे लोग निरंतर, नियमित रूप से तो आना दूर, पर्यूषणों में भी पूरी तरह नहीं आ पाते। इसी कारण हमारे समाज का Graph down होता जा रहा है। हमारी आपको यही प्रेरणा है कि कम से कम इन आठ दिनों में तो आप बच्चों को ज़रूर लाएं। उन्हें छोटे-2 पच्चक्खाण करवाएं, रात का खाना छुड़वाएं, हरी वनस्पति का त्याग करवाएं, सामायिक करवाएं, उनके मन में भावना भरें कि संवत्सरी के दिन पौषध करेंगे, छुट्टी लेंगे, बच्चों को सिखाएं कि आप अपनी हर चीज़ दूसरों से share करें। अभी दान-पुण्य की भाषा वे नहीं पकड़ पाएंगे, उन्हें share करने की भाषा समझ में आएगी। अपने गुरुओं को वदंना कैसे करते हैं, तिक्खुत्तो का उच्चारण शुद्ध सिखाओ। नवकार मंत्र प्रतिदिन जपने की श्रद्धा पैदा करो। हम पर बड़ी ज़िम्मेदारी है अपने बालकों की सुरक्षा की। इसके अलावा आज सबसे पहली ज़रूरत है कि बच्चों को खानपान की शुद्धि का अहसास करवाते रहें। उन्हें बताएं कि हम जन्मजात शाकाहारी हैं। हमारे भोजन में कोई अभक्ष्य वस्तु न आए। उन्हें मज़बूती से प्रतिज्ञाबद्ध करें कि कैंटीन में, बाज़ार में, साथी बच्चों के टिफिन में यदि कोई चीज अंडे वाली है तो उसको छूएंगे भी नहीं। ये प्रारंभिक संस्कार आगे चलकर इन्हें हर मौके पर संभालेंगे। ये संभले रहेंगे तो आपको भी संभालेंगे, अपनी संस्कृति और समाज को संभालेंगे।

मेरा कहने का कुल भाव ये है कि इन सात आठ दिनों में समाज-निर्माण, संस्कार निर्माण के कुछ कदम उठा लें। ये जागरण के दिन है। आत्मा का जागरण हो, घर-परिवार का जागरण हो, समाज-राष्ट्र का जागरण हो, ये ही आज की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

जाग रे मन अब है आई जागरण की भोर,
नव अरुण की अब है छाई लालिमा सब ओर।
जागते है कुछ स्वयं कर्तव्य में निष्णात,
जागते कुछ सुनके 'जागो आया पुण्य प्रभात',
टूटती लेकिन नहीं क्यों तेरी निद्रा घोर। जाग रे मन...॥

प्रभु अरिष्टनेमि के पदार्पण से नगर-2 का भाग्य जाग उठा था। पर्यूषण के आगमन से इस नगरी का भी भाग्य जागे- ये प्रयास हमें करना है। आज हम उस मुकाम पर पहुंच गए हैं कि देवकी देवी गहरी उम्मीदों के सुख सागर में गोते लगा रही है। आने वाला कल उसके लिए सुनहरे वरदान लेकर आ रहा है। हम देखेंगे कि उस महान् नारी का भाग्य-सूर्य किस प्रकार उदित होगा। सबके लिए मंगलकामनाएं।

जय जिनेन्द्र!

तृतीय पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– आ लौट के आजा मेरे मीत

पर्यूषण पर्व महान्, जगाने हमको आए हैं।
जीवन का करो कल्याण, बताने हमको आए हैं ॥

1. साल बाद ये, पर्व हैं आते, जब आते खुशियां हैं लाते,
भव-भव की सोई, अटवी में खोई, आत्मा को मार्ग दिखाते।
मंज़िल होती आसान, बताने...॥

2. सभी तीर्थंकर, और उनके गणधर, और साधुओं ने मनाया,
शुद्ध भाव से, बड़े ही चाव से, जीवन को पावन बनाया।
भव जलनिधि का जलयान बिठाने...॥

3. दुनिया के धंधों, माया के फंदों से, अब किनारा कर लो,
गुरुवर हैं आते, माल लुटाते, झोली भरें, तुम भी भर लो।
नहीं होना है गलतान, चेताने....॥

4. हम सो न जाएं, और खो न जाएं, दिन कीमती जो मिले हैं,
ग़म बो न जाएं, बंद हो न जाएं, फूल जो सुंदर खिले हैं।
अपना जीवन है इक उद्यान, खिलाने....॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन में देवकी के पुत्र-जन्म से प्रारम्भ कर संपूर्ण तृतीय वर्ग के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर एवं अपने पूज्य गुरुदेवों को वंदना करते हुए सभी भाई बहनों को जय जिनेन्द्र।

हम और आप पर्यूषण पर्वों को मना रहे हैं। इन पर्वों में कोई ढोल-धमाका, शोर-शराबा, झंडे, बन्दनवार, बम-पटाखे आदि तो होते नहीं। आत्म-निरीक्षण के इन दिनों में हम हर ओर से अपनी गतिविधियों को सिकोड़कर या कम करके एकांत में बैठते हैं। स्वाध्याय, सामायिक, जाप, ध्यान, त्याग-तपस्या आदि करते हैं। अपने छोटे से समाज से बाहर बहुत कम लोगों को यह मालूम हो पाता है कि जैनों के पर्व चल रहे हैं। ये हमारी ज़िम्मेदारी है कि अपने लिए एकांत का इंतज़ाम भी करें तथा अपने माहौल को इन पर्वों से अवगत भी कराएं। पहला तरीका है कि हर जैन परिवार अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठान आगम-वाचना के बाद खोले, जिससे आपके पड़ौसी दुकानदारों को पता चल जाए कि जैनों की दुकानें देर से क्यों खुल रही हैं। राजस्थान में पाली आदि कई शहरों में तथा गुजरात में अहमदाबाद जैसे कुछ शहरों में तो जैन लोग इन आठ दिनों में दुकान ही नहीं खोलते। चूंकि वहां कुछ कारोबारों पर जैनों का आधिपत्य है, इसलिए जैनों की दुकानें बंद करने पर सारा बाज़ार बंद रहता है। गांव-2, नगर-2 में ये चर्चा हो जाती है कि जैनों के पर्यूषण चल रहे हैं। इधर ऐसा होना मुश्किल है, पर इतना हम ज़रूर करें कि सुबह आगम-वाचना में तथा रात को प्रतिक्रमण में समाज का हर व्यक्ति उपस्थित हो। दूसरा तरीका है कि हम अपने हर परिचित को पर्यूषण की बधाई दें, वह पूछे तो इसका स्वरूप समझाएं। तीसरे, अपने मोहल्लों में या मार्केट्स में पर्यूषण पर्व के Flex भी लगवाए जा सकते हैं। दैनिक अखबारों में पर्यूषण के प्रवचनों के समाचार भी दिए जा सकते हैं। जितने भी निर्दोष तरीके ध्यान में आएं, उनके जरिए इन पर्यूषणों का महत्त्व जन-सामान्य तक पहुंचाया जा सकता

है। सबसे बेहतरीन तरीका तो अपने स्वाभाव का, जीवन का परिवर्तन करना है। अपने घर में हुए वाद-विवादों को समेट कर क्षमायाचना करें। समाज के संघर्षों को शांत करें, ज़िंदगी में किसी से भी टकराव हुआ हो, उसको दूर कर प्रेम भाव की स्थापना करें। इस आंतरिक परिवर्तन का Immediate फायदा तो आपको होगा क्योंकि असीम सुख-शांति का भंडार मिलेगा। Indirect फायदा सकल समाज को होगा। इससे धर्म की विशेष प्रभावना भी होगी। धर्म भावना तथा धर्म प्रभावना के इन श्रेष्ठ दिनों में आज का दिन तो और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आज का दिन महान् बलिदानी श्री गजसुकुमाल के प्रति समर्पित है। जैसे देश के स्वतंत्रता संग्राम में शहीदे-आज़म भगत सिंह का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है, वैसे जैन धर्म के बलिदानी व्यक्तित्वों में गजसुकुमाल का नाम सर्वोपरि है। यह नाम कायरों में बहादुरी का संचार कर देता है। धर्मयुद्ध के लिए जाने वाले वीर सैनिकों के लिए गजसुकुमाल का नाम और दास्तां रणभेरी (नगाड़े) का काम करता है। इनके जीवन चरित्र को सुनकर मुर्दा जिस्मों में भी जान आ जाती है। लक्ष्य की ओर प्रेरित करने वाली Clarion call है इनकी कहानी। इनके वृत्तान्त से ही साधकों को पता चलता है कि आत्म-मुक्ति के लिए प्राणों की आहुति कैसे दी जाती है।

आजादी का संग्राम नहीं बातों से खेला जाता है,
यह शीश कटाने का सौदा नंगे सिर झेला जाता है।
आजादी का इतिहास नहीं काली स्याही लिख पाती है,
इसको लिखने के लिए खून की नदी बहाई जाती है ॥

तो आओ चलें वीर सेनानी गजसुकुमाल से रु-ब-रु हो लें।

देवकी महारानी की ख्वाहिश पूरी होने जा रही थी। वह दिन और रात इन्हीं ख्यालों और ख्वाबों में खोई रहती थी कि मैं अपने नवजात शिशु का मुखमंडल देखूं, उसे चूमूं तथा अपने ज़िंदगी भर के ग़म को भुला डालूं।

नौ माह बाद उसकी आशा पूर्ण हुई। उसकी कुक्षि से पुत्र जन्मा। उसका सौंदर्य ऐसा था, मानों जूही के फूलों का कोमल बिछौना बिछ गया हो, मानों लाक्षारस का झरना बहने लगा हो, उदयगिरि पर्वत पर उगता हुआ सूर्य उठ कर उसके आगोश में उतर आया हो। बालक का स्पर्श इतना मृदुल और कोमल था कि छूने वाले को महसूस होता था, मानो हाथी का तलवा छूआ जा रहा हो। इसीलिए माता-पिता एवं परिवार जनों ने उसका नाम 'गजसुकुमाल' रखा। प्यार-दुलार का महासागर उसके चारों ओर लहराने लगा। सालों-सालों से बच्चे को दुलराने की अंतःकरण में दबी इच्छा को देवकी ने जी भर कर पूरा किया। उसके इर्द-गिर्द मंडराती रहती। बच्चा रूठता तो घंटो-2 मनाती रहती। सोता तो उसकी धड़कनों पर नजर टिकाए रहती। हाथों में लेकर थपथपाती, धीरे-2 लोरियां गाती, कभी बांहों में तो कभी पालने में झुलाती। अनगिनत ढंग से माँ ने अपने लाडले को लाड़ लडाया, खिलाया। खुद भी आनंद की तरंगों पर उछलती रहती। उसे लगने लगा कि मुझे आज जीवन का सर्वानंद मिल गया। मुझ से बढ़कर धन्य-भागी नारी कोई नहीं है। मेरे इस सुकुमाल में सारी सृष्टि समाई हुई है। मेरा कान्हा इसमें छिपा बैठा है। मेरे छह पुत्र, जो सुलसा ने पाले, वे भी इसमें उतर आए हैं। इस एक ने मेरे लिए आठ का बचपन लौटा दिया है। जी चाहता है, इसका बचपन यहीं ठहर जाए। मेरे हाथ से ये अमानत फिसल न जाए। ओ मेरे अरमानो, आज समूचे के समूचे आओ और इस सुकुमाल को अपना मंदिर बना लो। देवकी के लिए धरा पर स्वर्ग उतर आया था। फिर भी माँ जानती है— बच्चे का भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इसे पर्याप्त शिक्षा दिलानी ही होगी, नहीं तो इसका विकास अवरूद्ध हो जाएगा। उसे कला-गुरु के पास सर्वकला-पारंगत बनाने के लिए छोड़ दिया।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा-मध्ये हंस-मध्ये बको यथा ॥

जिस माता-पिता ने अपने बालक को पर्याप्त पढाई नहीं करवाई, वे माता-पिता उस बालक के शत्रु हैं, क्योंकि अशिक्षित बालक दरबारों में बन-ठन कर जाने पर भी ऐसा लगता है, मानों हंसों की टोली में बगुला बैठा हो।

गजसुकुमाल जन्मजात मेधावी था, विनय संपन्न था, अतः गुरुवर्ग ने शीर्घ ही निष्णात कर दिया। उस युग में एक युवक के लिए, विशेष राजघराने के युवक के लिए जो आवश्यक शिक्षा थी, वह सुकुमाल को मिली।

श्री अरविन्द जी की कविता फिर याद आ रही हैः—

अंतगडदशांग जी आगम का, करते हैं भाव सहित वर्णन।
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
नौ मास पूर्णता पर रानी, ने लाल विलक्षण जाया है,
पूर्व दिशा से लाल रवि, ज्यों तिमिर मिटाने आया है,
अति सुंदर है अति कोमल है, कोई स्वर्ग का टुकड़ा उतरा है,
सौंदर्य धरा और अम्बर का, बालक के तन में उभरा है,
गजसुकुमाल नाम रखा, लाड़ों से होता है पालन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

यौवन ने गजसुकुमाल की काया में दस्तक दी तो विश्व का सौंदर्य उसकी एक झलक पाने को मचल उठा। उसके अंग-2 से अद्‌भुत ताजगी और नूर बरसने लगा। श्री कृष्ण जी अपने भाई के उठते यौवन, गदराए बदन को देखते तो सोचकर रह जाते कि इसके लायक कन्या धरती पर कहाँ मिलेगी। उसने अपने निकटवर्ती राजाओं के परिवारों में ऐसी कन्या की तलाश करवाई, खुद भी इधर उधर नज़र दौड़ाई। मगर उसे अपने भाई के योग्य कोई भी कन्या नहीं लगी। जब अपना ही मन संतुष्ट नहीं हो तो किसी से क्या बात करनी। श्री कृष्ण जी की चिंता बढ़ती जा रही थी। पर प्रकृति की गोद में ऐसा भी भव्यतम फूल खिला हुआ था, जो गजसुकुमाल की ज़िंदगी

के गजरे में गूंथा जा सकता था। उसका नाम था– सोमा। द्वारिका के याज्ञिक पंडित सोमिल की धर्मपत्नी सोमश्री की आत्मजा थी सोमा। उसका रूप और लावण्य, सौंदर्य और माधुर्य इतना उत्कृष्ट था कि राजघराने उसका पानी भर सकते थे। सुंदरता की प्रतिमान वह विप्रपुत्री खेलने की भी शौकीन थी। अपनी सहेलियों के साथ गेंद से खेलती थी।

एक बार श्री अरिष्टनेमि प्रभु रैवतक पर्वत पर पधारे हुए थे। तब श्री कृष्ण जी अपने भाई गजसुकुमाल के साथ उनके दर्शन करने जा रहे थे तो संयोगवश राजमार्ग के बगल में खेलती हुई सोमा पर श्री कृष्ण जी की दृष्टि पड़ गई। श्री कृष्ण जी उसे देख विस्मित हो गए, ठगे से रह गए। ऐसा सजीला रूप जीवन में पहली बार देखा था। अंदर ही अंदर पनपती चिंता का समाधान हो गया। सोचने लगे– 'यह कन्या भाई गजसुकुमाल के लिए उपयुक्त रहेगी। ये जोड़ी सृष्टि की सुंदरतम जोड़ी बनेगी। ये Made for each other हैं।' उन्होंने तत्काल कौटुम्बिक पुरुषों अर्थात् सेवकों को आदेश दिया कि इसके पिता से कह दो कि श्रीकृष्ण जी ने अपने भाई का रिश्ता तुम्हारी बेटी के साथ मांगा है। सोमिल की आज्ञा लेकर इसे कन्याओं के अंतःपुर में पहुंचा दो और राजपरिवार की मर्यादाओं, व्यवस्थाओं और योग्यताओं का प्रशिक्षण दिला दो। समय आने पर इसका गजसुकुमाल के साथ विधिवत् विवाह हो जाएगा। ये लड़की आज से हमारी बहू हो गई। ये सारा काम आनन फानन में ही हो गया। फिर भी हमें मानवीय धरातल पर विचार करना चाहिए कि कितनी भी जल्दी हुई हो, कुछ दिन तो इस प्रक्रिया में लगे ही होंगे। हाँ, ये सच है कि सोमा श्री कृष्णजी के महलों में आ गई। और गजसुकुमाल की भावी पत्नी के रूप में उसकी पहचान हो गई। इस प्रसंग को समग्रता से प्रस्तुत करती हुई कविता सुनें:–

कला बहत्तर सीखी हैं, बालक ये युवक बना सुंदर,
श्री कृष्ण ने सोचा भाई की, शादी करना है श्रेयस्कर,
रस्ते में सोमिल ब्राह्मण की, सुंदर कन्या को देखा है,

मुख मंडल पर सौंदर्य शील, मेधा की अंकित रेखा है,
सोमिल की अनुमति मंगवा कर, रिश्ता जोड़ा है मनभावन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

इधर श्री अरिष्टनेमि भगवान् के दरबार में श्री कृष्ण महाराज और भाई गजसुकुमाल पहुंचे। श्री कृष्ण जी ने रूटीन की तरह दर्शन किए और प्रवचन सुना, लेकिन गजसुकुमाल जी ने बिल्कुल नए अंदाज से सुना और नए अर्थों को ग्रहण किया। बात एक होती है पर सबके लिए उसके Meaning अलग होते हैं। भगवान् की वाणी कृष्ण जी ने सुनी, नगर निवासियों ने सुनी और गजसुकुमाल ने सुनी, पर सबकी प्रतिक्रिया भिन्न थी।

एक आदमी सड़क पर खड़ा था। अचानक एक ट्रक उधर से निकला और उस आदमी से हल्के से टक्कर लग गई। आदमी गिर पड़ा, चोट हल्की-सी थी। फिर भी लोग उसे Hospital ले गए। थोड़ी देर उसे संभाला, कुछ ट्रीटमेंट दिया और उसे कहा— अब आप जाओ। वह आदमी तो वहां से जाने को तैयार ही नहीं हुआ। डॉक्टरों ने, हितैषियों ने समझाया— तुम अपने घर जाओ। वह कहता है— मुझे डर लग रहा है। डॉक्टरों ने पूछा— अब किस बात का डर है। तुम बिल्कुल ठीक हो। वह आदमी बोला— उस ट्रक के पीछे लिखा था— 'अच्छा तो फिर मिलेंगे।' इस बार मैं बच गया, पर वो ट्रक दोबारा मिल गया तो मेरी खैर नहीं है। ये अपनी-2 समझ है। उसके लिए भगवान् के वचन रूपांतरण-कारी बन रहे थे। वह बचपन से कुछ न कुछ सुनता ही आ रहा था, पर आज का यह सुनना तो कुछ अलग ही था। इस वाणी में न शरीर के स्वास्थ्य की बात थी, न इंद्रियों की तृप्ति का तरीका था, न पुद्गलों का परिचय था, न जगत् की चर्चा थी। भोग-वासना, पद-प्रतिष्ठा, सौख्य-समृद्धि, मनोरंजन और कौतूहल, सबसे हटकर कुछ निराली दुनिया की खबर मिल रही थी गजसुकुमाल को। वह निराली दुनिया थी 'अपनी'। दूसरे शब्दों में 'आत्मा की'। संसार के कितने जीव होंगे, जिन्हें अपनी खबर होगी या जो अपनी खबर लेना चाहते

होंगे? उसे लगा, इस समवसरण में धर्म सिंहासन पर विराजमान प्रभु अरिष्टनेमि को सचमुच 'अपनी' खबर है। इनके परिवेश में अपने सिवा किसी प्रकार की चर्चा ही नहीं। यहाँ की हवाओं में अपने स्वरूप के स्पंदन हैं, अपने विकास का प्रयास है। धन, धनपति, सत्ता-सत्ताधीशों की बातें इन बातों के सामने अर्थहीन प्रतीत हो रही हैं। मुझे लगने लगा है कि– 'मैं अपने को ढूंढने वाला मुसाफिर बन गया हूँ। यदि मैंने अपने को नहीं पाया तो सारी धरती का साम्राज्याधिकार पाना भी अर्थहीन होगा"।

और सब की ओर देखा, देखा न अपनी तरफ,
दूसरों के वास्ते ही खुद को किया है वकफ़;[1]
भूल जाना खुद को ही तो खुदकशी होगी,
ज़िंदगी में धर्म हो तो ज़िंदगी होगी।

एक विशाल महल में आग लगी हुई थी। मकान का मालिक बदहवास महल के बाहर चीख पुकार रहा था। Fire Brigade वाले आग बुझा रहे थे। कुछ साहसी युवक अंदर का कीमती सामान भी निकाल रहे थे।

जहा गेहे पलित्तम्मि तस्स गेहस्स जो पभू।
सार-भंडाणि णीणेइ असारं अवउज्झइ ॥

एक युवक ने सेठ से पूछा– हम आखरी बार अंदर घुसने जा रहे हैं, तुझे कुछ याद आए तो बता दे, वो चीज बाहर निकाल लाएंगे। सेठ को कुछ ध्यान ही नहीं आ रहा था। वह अपने सामने पड़े बचे हुए सामान को तथा जलते हुए मकान को देख रहा था। उसने यही कहा– 'आप खुद ही देख आओ।' वे युवक उत्साह के साथ अंदर कूदे। अपने हाथ में जो लाए, वह वस्तु उस दिन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी, पर वही उपलब्धि अभिशाप से भी बड़ी बन चुकी थी। सेठ का इकलौता बेटा सेठ के महल में कहीं सोता रह गया। उसको

1 नष्ट

आग का अहसास नहीं हुआ, दूसरों को उसका ध्यान नहीं रहा। लोग सामान निकालने में मस्त रहे, इस बीच बालक दम तोड़ गया। उसकी लाश लेकर बाहर आए तो सबका चेहरा उतरा हुआ था। सेठ की अक्ल सठिया गई। बस एक ही प्रलाप उसके मुंह पर था "सामान बच गया पर सामान का स्वामी खत्म हो गया।" We saved the articles but lost the owner! प्रभु अरिष्टनेमि भी तो हमें, खासतौर पर मुझे समझा रहे हैं कि अब भी मौका है, अपने को बचा लो। इन्होंने भी तो अपने को जलती हुई आग से बचाया था। शादी से बिल्कुल पहले लौट आए थे तोरणद्वार से। ये तभी तो हुआ जब इन्हें 'अपना' ज्ञान हो गया था। इस 'आत्म-ज्ञान' की चिंगारी अब मेरे अंदर भी सुलग गई है। अब मैं भी इनकी तरह ही केवल 'अपने' को पाने में सारी ऊर्जा लगा दूंगा। गजसुकुमाल का नया जन्म हो गया था। अब उसे नया वातावरण, नया परिवेश, नया घर चाहिए था। पुराना छोड़ना था, उससे सविनय विदाई लेनी थी। भगवान् से इतना ही कहा– अब मैं आपका हो गया हूँ, पर माता-पिता की इज़ाज़त अवश्य लेनी है। जल्दी ही चरणों में लौटूँगा। एक परिवर्तित सुकुमाल घर आया। माता-पिता के सामने अपना मनोभाव व्यक्त किया कि मैं किसी अलग किस्म का जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ, जहां मुझे आत्मा के सिवाय कुछ भी नज़र न आए। मेरे लिए ये संसार और संसार की हर वस्तु माया और छलावा है।

अंगारे फूल हैं यहाँ पत्ते कटार हैं,
साए[1] भी दरख्तों के नापाएदार[2] हैं,
है जायका खराब जिनका ऐसे समर[3] यहाँ,
खुशबू यहाँ की भरती मगज़ में गुबार है।
ऐसे जहां को छोड़कर चलिए किसी जगह,
न हो जहां तआल्लुक किसी से किसी तरह,

---

1 छाया 2 आधारहीन 3 फल

हर दौड़ खत्म हो जहां खुदगर्जियां न हों,
रंगीं हर एक शाम हो, रंगीन हर सुबह ॥

ये साम्राज्य, ये राजधानी, ये महल और यहाँ का विस्तृत विलास भी मुझे अपने स्वरूप का अहसास नहीं करवा सकता। ये सब तो कुछ न कुछ बाधाएं हैं मेरे अभियान में। मेरी खोज अपने को पाने की है। इसमें प्रभु अरिष्टनेमि कुछ मदद कर सकते हैं, इसलिए पहले तो उनके पास जाऊंगा। पर आखिरी मंज़िल तो मुझे अकेले अपने दम पर ही हासिल होगी। इसलिए उनके चरणों से कुछ शक्ति ले कुछ दूर अकेलेपन में रहूँगा, ताकि अपने को खोज सकूं।

अपनी तलाश ही है भगवान् की तलाश,
करनी है रूहे गुमशुदा[1] औ अनजान की तलाश।
कूड़ा निकाल फैंक दूं पूंजी जमा करूं,
इस घर में कोई रोशन ऐसी शमा करूं,
हो जाए सुख व शांति के सामान की तलाश ॥

माँ, तुम इस तन की निर्मात्री हो, पिताजी– आप इस काया के कर्त्ता हो, मेरे भाई कृष्ण भी शरीर की सुविधाओं के स्रष्टा हैं, लेकिन ये जिस्म तो 'मैं' नहीं हूँ। मैं तो चेतना शक्ति हूँ, ज्ञान का असीम, अखूट भंडार हूँ, जो तहखाने में छिपा हुआ हूँ। मैं अनंत सुख का स्रोत हूँ, जो मोह की चट्टानों में अवरुद्ध हूँ। माँ, अपनी आज्ञा देकर मुझे अनुगृहीत करें ताकि मैं अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकूं।

माता-पिता को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि गजसुकुमाल को कैसे तो आज्ञा दें और कैसे इंकार करें। अपने सुख के लिए इसे आसमानों से उतारा था। अब वापस चला गया तो हमारा सुख छिन्न-भिन्न हो जाएगा। इसके सुख के लिए हमारे दिलो-जां कुर्बान रहे हैं तो इसके सुख के लिए और भी कुछ कुर्बान करना होगा। अब सवाल था अपने और उसके सुख का। अनिर्णय की

1 गुम हो चुकी आत्मा

स्थिति में केवल श्री कृष्ण ही रस्ता दिखाता है और खबर मिलते ही श्री कृष्ण जी भी आ गए। भाई को गले से लगा लिया और गोद में बैठाकर पुचकारने लगे। एक भाव भरी विनती की– 'भैय्या, अभी तुम दीक्षा मत लो। मेरे मन की योजना ये है कि जल्दी ही तुझे सिंहासन पर बैठाकर मैं निश्चिंत हो जाऊं। द्वारिका का यह सिंहासन तेरी बाट जोह रहा है। ये राज्यभार संभाल और मुझे विश्राम दे।' गुजसुकुमाल के लिए तीन खंड का साम्राज्य अर्थहीन हो चुका था। उस ओर तो झांकना ही नहीं था। अतः चुप्पी साध ली। दोनों भाइयों की मनोभावनाओं को प्रकट करती हुई कुछ पंक्तियांः–

तर्जः– ***अफसाना लिख रही हूँ***

कृष्णः– अपने भैय्या के सिर पर मैं ताज पहनाऊँ।
सिंहासन पर आरूढ़ कर अभिषेक कराऊँ ॥ टेक ॥
माता-पिता की आँख का जगमग सितारा है,
तुझे चांद और सूरज का रुतबा दिलवाऊँ ॥ 1 ॥

गजसुकुमालः– है सिद्ध शिला सिंहासन, मुझ को वहां बिठला,
उससे नीचे सिंहासन पर मन नहीं ललचाऊँ॥ 2 ॥

कृष्णः– तू देख ले संसार में, कितना सौंदर्य है,
सोमा कन्या से ब्याह तेरा जल्दी ही रचवाऊँ॥ 3 ॥

गजसुकुमालः– मुक्तिवधू माला लिए, इंतजार में खड़ी,
उससे फेरे लूँ, उससे वरमाला डलवाऊँ॥ 4 ॥

कृष्णः– फूलों सी कोमल काया, तप कर नहीं सकती,
फूलों की सेज बिछवाऊँ, विश्राम दिलवाऊँ॥ 5 ॥

गजसुकुमालः– हूँ शक्तिशाली आत्मा, नहीं जिस्म है मेरा,
आराम और तकलीफों को भूल मैं जाऊँ॥ 6 ॥

परिवार को यह अच्छी तरह समझ में आ गया कि गजसुकुमाल अब किसी दूसरी दुनिया का राही बनेगा। इसलिए सब नगर-निवासियों तक ये समाचार पहुंच जाना चाहिए। उसके लिए केवल एक दिन के राज्याभिषेक का समारोह आयोजित किया। सोमिल ब्राह्मण को सूचना मिली तो हक्का-बक्का रह गया। उसके सारे सपने चूर-2 हो गए। वह दौड़ा-2 श्री कृष्ण जी के पास आया कि हमारे साथ इंसाफ होना चाहिए। मेरी बेटी का तो जीवन ही बर्बाद हो गया। अब वह कहीं की नहीं रही। आप किसी भी तरह अपने भाई को रोकिये और समझाइये। श्री कृष्ण जी बोले— हम उसे अच्छी तरह समझा चुके, वह मानने को तैयार नहीं है। हम कोई खुशी-2 तो भेज नहीं रहे। जब वह घर पर रहना नहीं चाहता तो हम उसके पैरों में जंजीर तो बांध नहीं सकते। तुम मना सकते हो तो मना लो, हम तो खुश ही होंगे। सोमिल गजसुकुमाल से मिलने गया तो गजसुकुमाल ने ध्यान ही नहीं दिया। उसका ध्यान कहीं और था। उसने सोमा को देखा ही नहीं था, चाहा भी नहीं था, स्वीकृति भी नहीं दी थी, फिर वह उन बातों में क्यों उलझता। गजसुकुमाल के रवैय्ये से तो सोमिल और भी क्षुब्ध हो गया। उसे जंच गया कि श्री कृष्ण जी तो मेरे पक्ष में है, पर यह गजसुकुमाल ही असली अपराधी है। फिर जोर देकर बोला— बताओ, मेरी बेटी का कसूर क्या है, जो उसे धक्का दे रहे हो। गजसुकुमाल जी कसूर-बेकसूर की परिभाषाओं से ऊपर उठ चुके थे, ज्यादा तो चुप ही रहे। पर संक्षेप में इतना ही कहा— आत्मा की राह में आने वाली हर बाधा को मैं ठुकरा रहा हूँ। नारी भी एक बाधा है, उसे स्वीकार करना मुझे गवारा नहीं है। सोमिल उसकी सोच तक नहीं जा सका। बड़बड़ाने लगा, शोर मचाने लगा। निकटवर्ती कर्मचारियों ने उसे बाहर का रास्ता दिखा दिया। तीव्र वैर-भावना लेकर अपने घर लौट आया। ये छोटा सा प्रसंग हमने आपके सामने इसलिए रखा है ताकि अगली घटनाओं को हम सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें। पूरी बात समझे बिना हम किसी को दोष दें— ये ठीक नहीं हैं।

एक लड़के का विवाह के बाद पत्नी से रोज़ झगड़ा रहने लगा। एक दूसरे को बुरा-भला कहते-2 वे दूसरे के माता-पिता को भी कोसने लगते। एक दिन गुस्से में भरी पत्नी ने कहा— मेरी माँ ने मुझे कई बार कहा कि इस लड़के से शादी मत करना। मेरी माँ सही कह रही थी। सुनकर लड़का कहने लगा— अच्छा, ऐसी बात है, वो तो बड़ी भली औरत थी। मैं तो अब तक उसे ख्वामखाह दोष देता रहा। उसकी बात पूरी हो जाती तो मैं सुखी हो जाता।

गजसुकुमाल जी का एक दिन के लिए राज्याभिषेक हुआ। पहली राज-आज्ञा दी कि मेरे लिये रजोहरण-पात्रों का प्रबंध किया जाए, नाई व तेली को एक-2 लाख स्वर्ण मुद्राएं ईनाम में दी जाएं तथा मेरी दीक्षा की तैयारी की जाए। इस तरह दीक्षा की तैयारी भी शुरु हो गई।

इस अवसर पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि गजसुकुमाल जी की वैराग्योत्पत्ति और दीक्षा-निष्पत्ति के बीच कोई दो-चार दिन का ही फासला नहीं रहा होगा। काफी दीर्घकाल तक घर में चर्चाएं हुई होंगी। गजसुकुमाल जी ने साधु जीवन से संबंधित नियमावली की अच्छी तरह जानकारी ली होगी। महाव्रतों के अलावा भिक्षु-प्रतिमाओं का स्वरूप भी समझा होगा। कभी-कभी तो लगता है सारा घटनाक्रम अतिशीघ्र हो गया, पर ये 'चट मंगनी पट ब्याह' वाली घटना नहीं समझनी चाहिए।

राज्याभिषेक के बाद दीक्षा का दिन जब आया, तब सारी द्वारिका, समग्र यादव-वंश, सारा परिवार हर्ष और शोक की लहरों पर तैर रहा था। विशाल शोभायात्रा में नगर का हर वर्ग शामिल हुआ। हजार पुरुष पालकी को उठाए आगे बढ़ रहे थे। माँ देवकी अपने लाल के बगल में बैठी आंसू बहा रही थी। प्रभु के समवसरण में सवारी पहुंची। गजसुकुमाल जी नीचे उतरे, प्रभु चरणों में उपस्थित हुए। देवकी देवी अपने लाल को प्रभु-चरणों में अर्पित करते हुए बोलीः—

तर्जः— क्या मिलिए ऐसे लोगों से

मात देवकी प्रभु चरणों में, अपने सुत को सौंप रही,
मनोभावना कुछ शब्दों से, दृग्जल[1] से कुछ अधिक कही ॥

धन-2 गजसुकुमाल मुनीश्वर, धीर वीर गंभीरा रे,
तीन लोक में इस के बराबर, मिल नहीं सकता हीरा रे,
कहते कहते गंगा यमुना, बांध तोड़ चुपचाप बही ॥

नाथ ये लो मैं हीरा लाई, आप ही जौहरी सच्चे हैं,
परखो रक्खो नाथ संभालो, कुंवर मेरे अभी बच्चे हैं,
आंच कहाँ पर इसने तन से, अब तक लू भी नहीं सही ॥

पुत्र एक शिक्षा तुम सुनना, अंखिया भर-भर रोवे रे,
ऐसी करनी करना कुंवर रे, और मात नहीं रोवे रे,
आज कलेजा भर-भर आता, कांप रहे आकाश मही ॥

माँ की अश्रुधारा बह रही थी। गजसुकुमाल सबके भावों को अपने अंदर समेट रहे थे। घर के कर्ता-धर्ता भाई कृष्ण आगे आए। कहने लगेः—

मातपिता के लाडले छोटे मेरे भाई,
विदाई के समय हैं भावनाएं कुछ उमड़ आई ॥

तुझे प्रभुवर ने दी है दिव्य दृष्टि और संभाला है,
चट्टान को तोड़कर हीरा निकाला है ॥

हृदय है टूटता चट्टान का करते हुए अर्पण,
मगर निश्चय है बन पाएगा तू विश्व का भूषण ॥

ये दुनिया क्लेशखाने के सिवा कुछ भी नहीं भाई,
मगर हम मोह के मारों को न देता कुछ भी दिखलाई ॥

---

1 आँसू

उपस्थित द्वारकावासी, उपस्थित ये ज़माना है,
हृदय के पुष्प को प्रभू चरणों में चढ़ाना है ॥

हमारी आन को रखना हमारी शान को रखना,
हमारी लाज को रखना हमारे मान को रखना ॥

गजसुकुमाल जी ने उत्तर-पूर्व दिशा में जाकर अपने वस्त्राभूषण उतारे, पंचमुष्टि लोच किया और भगवान् अरिष्टनेमि के चरणों में सामायिक-चारित्र ग्रहण कर लिया।

परिवार के लौटने के बाद नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनि भगवान् की सेवा में आए और विनती करने लग– 'प्रभो, आपकी अनुज्ञा चाहिए, मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूँ।' भगवान् ने उसकी योग्यता को जाना और फरमा दिया– 'जैसी तेरी आत्मा को सुख हो।' यद्यपि इस प्रतिमा की आज्ञा 20 वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले साधु को ही दी जाती है, पर इस case में सब कुछ अद्‌भुत था। गजसुकुमाल मुनि तीसरे प्रहर में श्मशान में पहुंच गए और एक पुद्‌गल पर दृष्टि स्थिर कर ध्यानस्थ हो गए। आओ, पुरानी घटनाओं को पुनः कविता में सुनें:–

इक दिन के राजा बनते हैं, माँ पिता भ्रात के कहने से
न रोक सके मुनि बनने से, न डरा सके दुःख सहने से ॥

राज्य तजा दीक्षा धारी, उस शाम प्रभुवर से बोले,
महाकाल में जा प्रतिमा धारुं, निज मन के भाव सभी खोले ॥

श्मशान में जाकर लीन हुए, करके भूमि का प्रतिलेखन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥

ध्यान का अर्थ विचारों का अभाव नहीं है अपितु विचारों की एकाग्रता है। ध्यान में शरीर की चंचलता का तो पूर्ण निरोध किया जाता है, पर शरीर की अनुभूति-क्षमता मंद नहीं होती। विचारों की एकाग्रता

से संकल्प-बल दृढ़तर हो जाता है, भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी चित्त विचलित नहीं होता। शरीर की अनुभूतियां प्रखर हो जाती हैं तो ज्ञान का आविर्भाव अभूतपूर्व स्तर पर होने लगता है। श्री गजसुकुमाल मुनि ध्यान की पराकाष्ठा पर चढ़ते जा रहे थे। तभी सोमिल ब्राह्मण उनके निकट से निकला। वह अपने गृहकार्य तथा हवन-पूजा आदि के लिए कुश, घास, लकड़ियां, पत्ते, दूब आदि वन से लेकर आ रहा था। उस एकांत में उसने गजसुकुमाल मुनि को अकेला देखा तो उसका क्रोध भड़क उठा। उसके दिमाग में पिछले दिनों का समग्र घटनाचक्र तैरने लगा। किस प्रकार इस झूठे, पाखंडी, दुष्ट साधु ने मेरी पुत्री तथा मेरी ज़िंदगी में ज़हर घोल दिया। उसका क्रोध तीव्र-तीव्रतर-तीव्रतम होता गया। अंतरात्मा में दबे लाखों भव पूर्व के वैर संस्कारों ने जोर मारा और वह नृशंसता पर उतर आया। बदला लेने की प्रक्रिया प्रारंभ करे, उससे पूर्व उसने चारों ओर देखा। फिर समीपवर्ती तालाब से गीली मिट्टी लेकर आया और ध्यानस्थ खड़े गजसुकुमाल मुनि के सिर पर पाल बना दी। फिर फूटे घड़े के ठीकरे से श्मशान की चिता से जलते-धधकते अंगारे उठाकर सिर पर रख दिए और रखकर अपने घर की तरफ भाग लिया ताकि मैं पकड़ा न जाऊँ?

ध्यानस्थ मुनि को देखा तो, सोमिल को क्रोध तीव्र आया,
जिंदा नहीं छोडूंगा इसने, मेरी बेटी को ठुकराया ॥

बांधी सर पर मिट्टी की पाल, जलते अंगारे डाले हैं,
फिर भी शांत खड़े मुनिवर, निज प्रतिमा के रखवाले हैं ॥

सिर जला भयंकर पीड़ा थी, समभाव से किया है मोक्षगमन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

गजसुकुमाल मुनि के मुंडित सिर पर जैसे ही धधकते अंगारे रखे गए, सिर में तीव्र वेदना उभर गई, सिर से पैर तक एक भीषण झनझनाहट फैल गई। अंग-2 भड़क उठा। रोयां-2 React करने लगा, शरीर का

हर अवयव रक्षा के लिए बिलख उठा, मगर शरीर की इस बेचैनी पर मन का संकल्प-बल हावी हो गया। मुझे शरीर को किञ्चित् मात्र भी कंपित नहीं होने देना है, ये उनका मानसिक निश्चय था। फिर उन्होंने मन का रूख मोड़ लिया। प्रथम क्षण में सोमिल को अंगारे रखते देखा था। उसे रोकने की इच्छा नहीं उभरी, उसके प्रति नाराज़गी और द्वेष नहीं आया अपितु सकारात्मक दृष्टि से सोचने लगे— ये मेरे ससुर बने थे, आज ये मेरे माथे पर सेहरा बांधकर गए हैं, पगड़ी बांधकर गए हैं। इन सकारात्मक विचारों का दौर और आगे बढ़ा, शरीर और मैं भिन्न-2 तत्त्व हैं। शरीर की म्यान में मैं अर्थात् आत्मा तलवार की तरह बंद था। आज दोनों को अलग-2 कर लेना है। नारियल के खोल पर चोट पड़ती है तो खोल ही टूटता है। उसकी गिरी अखंड रहती है। आज ये शरीर जल रहा है, आत्मा नहीं जल रही— यह तो जल ही नहीं सकती। **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। नैनं क्लेदयन्त्यापो, नैनं शोषयति मारुतः'॥** मुझे, मेरे वास्तविक स्वरूप को, मेरी आभ्यंतर शांति को शस्त्रों की तीखी धार से काटा नहीं जा सकता, अग्नि से जलाया नहीं जा सकता। बाहरी निमित्तों का प्रभाव शरीर पर पड़ सकता है, आत्मा पर नहीं। अब मैं शरीर के स्तर पर नहीं, अपने स्तर पर जी रहा हूँ। शरीर की सहिष्णुता, मन की एकाग्रता, अध्यवसायों की शुद्धि बढ़ रही थी। कर्मों के सारे आवरण उतरते जा रहे थे। शरीर की शक्ति जवाब देती, उससे पूर्व ही आत्मा में केवल-ज्ञान, दर्शन प्रकट हो गया और शरीर निष्क्रिय होते ही आत्मा मोक्ष में जा पहुंची। मानव जाति को इस उपलब्धि की जानकारी होती, उससे पूर्व तो समीपवर्ती देवों ने उस आत्मा के मोक्ष कल्याणक की खुशी मना ली थी। चुप्पी और सन्नाटे में शरीर का अंग-2 राख हो गया। श्मशान में दो चिताएं साथ-2 जल रही थी— एक में स्वाभाविक रूप से मरे किसी अज्ञात मानव का शरीर जल रहा था, दूसरी में एक नृशंस हत्यारे के द्वारा मारे गए महामुनि का तन राख हो रहा था। आओ उस महामुनि की स्मृति से अपने अन्तर्मन को पावन बना लें।

तर्जः– छू लेने दो नाजुक होठों को

शुद्ध शुक्ल ध्यान अपनाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने।
दावानल शांत बनाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

सोमा कन्या को छोड़ दिया, बंधन मुक्ति अपनाने को,
संसार का वैभव ठुकराया, आध्यात्मिक वैभव पाने को,
जो चाहा झटपट पाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

श्री कृष्ण का प्यार बिसार दिया, माता का दुलार बिसार दिया,
विस्तृत परिवार बिसार दिया, सुख का संसार बिसार दिया,
पिंजरे से उड़ दिखलाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

रो-रोकर माता बोली थी, ऐसी करनी सुत कर जाना,
ले जन्म किसी माता को फिर, मेरे की तरह मत तड़पाना,
माता का वचन निभाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

आज्ञा श्री नेम प्रभु की ले, श्मशान निषद्या स्वीकृत की,
अतंर में प्रतिसंलीन हुए, बाहर से दृष्टि संवृत की
निज देह का भान भुलाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

कन्या छोड़ी ये लखकर के, सोमिल पापी इकदम भभका,
सिर पर मिट्टी की पाल बना, अंगारे चिता के रख लपका,
तब समता घन बरसाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

श्री कृष्ण ने बूढ़े की ईंटे, एक क्षण में जैसे खिसकाई,
भव-2 की कर्म श्रेणियां ही, मुनिवर ने क्षण में बिखराई,
हमको भी पाठ पढ़ाया था, श्री गजसुकुमाल मुनीश्वर ने ॥

श्री गजसुकुमाल जी के साथ घटी इस घटना के भिन्न-2 पहलुओं की चर्चा से पहले पूज्य गुरुदेवों की एक परम्परा का जिक्र करना ज़रुरी है। हमारे गुरु भगवन्त गजसुकुमाल जी के बलिदान और निर्वाण के उपलक्ष्य में श्रावक-श्राविकाओं से त्याग पच्चक्खानों का

चढ़ावा लेते हैं। स्थानकवासी संघ में पैसे का, मिठाई या कपड़े का, फल-मेवे का चढ़ावा तो चलता नहीं। कोई भाई-बहन जीवन पर्यंत के लिए सामायिक करने का नियम ले, शीलव्रत की प्रतिज्ञा धारण करे, प्रतिक्रमण याद करने का संकल्प ले, घर में कलह-क्लेश न करने का प्रण करे, व्यापार में प्रामाणिकता रखने का निश्चय करे, भ्रूण हत्या जैसे पाप का त्याग करे आदि कोई न कोई चढ़ावा श्री गजमुकुमाल जी के जीवन चरित्र के पारायण पर दिया जाता है। आशा है आप भी उस निर्वाण-प्राप्त आत्मा के बलिदान को खाली नहीं जाने देंगे। जो भाई-बहन जीवन पर्यंत के लिए नियम लें, उनका चढ़ावा बड़ा माना जाएगा तथा जो वर्ष भर के लिए नियम लेंगे, उनका चढ़ावा भी गिनती में अवश्य आएगा।

आप श्रद्धाशील हैं, इस अवसर को चूकेंगे नहीं, चढ़ावा ज़रूर चढ़ाएंगे। श्री गजसुकुमाल जी का निर्वाण जिन हालातों में हुआ, उन हालातों पर प्रभु अरिष्टनेमि तथा श्री कृष्ण जी के नजरिए अलग-अलग थे। श्री अरिष्टनेमि भगवान् का कहना था कि इस आत्मा ने अपना अंतिम लक्ष्य पा लिया तथा उस लक्ष्य प्राप्ति में एक आदमी ने मदद दे दी। यह उनका spiritual positivism था। श्री कृष्ण जी का ध्यान उस हत्यारे की तलाश करना था, जिसने बेगुनाह महाव्रती साधु को जिंदा जला दिया— ये उनकी Administrative Responsibility थी। इन दृष्टिकोणों को आगम में वर्णित करते हुए लिखा कि कृष्ण जी अगले रोज़ सूर्योदय के बाद हाथी पर सवार होकर भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शन के लिए रवाना हुए। मार्ग में उन्होंने देखा कि बुढ़ापे से जर्जर देह वाला एक बुजुर्ग आदमी ईंटों के ढेर से एक-2 ईंट उठाकर राजमार्ग से अपने घर के अंदर रख रहा है। श्री कृष्ण जी दया अनुकंपा से भीग गए और हाथी पर बैठे-2 उन्होंने एक ईंट उठाई और घर में पहुंचा दी। श्री कृष्ण जी को मदद करते देख सारी सेना ने, सभी साथियों ने ईंट उठा-2 कर अंदर पहुंचा दी। उस बुजुर्ग की लंबी समस्या का समाधान हो गया। करुणा-दया और अनुकंपा की ऐसी नजीर विश्व-साहित्य में

बड़ी दुर्लभ मिलती है जब सत्ता के शिखर पर बैठा हुआ मानव ज़मीन के अदने मानव का कष्ट हरण करता हो। श्री कृष्ण जी हर लिहाज से लाजवाब हैं। ऐसे ही किसी करुणा-शील मानव के हृदय से निकले कविता के चंद बोल हैं:—

किसी गिरते हुए इंसां को उठाने दो मुझे,
किसी लुटती हुई अस्मत को बचाने दो मुझे,
गीत गाए हैं बहुत प्यार और मोहब्बत के,
आज इंसानियत के गीत गाने दो मुझे ॥ 1

किसी के बहते आंसुओं को सुखाने दो मुझे,
किसी के ज़ख्मों पर मरहम भी लगाने दो मुझे,
जलाए होंगे तुमने बहुत से चिराग,
मगर एक बुझती हुई शमां को जलाने दो मुझे ॥ 2

किसी की दास्ताने-ग़म को सुनाने दो मुझे,
किसी बहके हुए को राह पर लाने दो मुझे,
ज़माने में दुःख दर्द बहुत, बयां कैसे करें,
किसी उजड़ी हुई बस्ती को सजाने दो मुझे ॥ 3

किसी का एक अश्क भी जो मैं सुखा पाऊं,
किसी का एक दर्द भी जो मैं मिटा पाऊँ,
ज़िंदगी अपनी कामयाब तभी समझूंगा,
किसी के वास्ते ये ज़िंदगी लुटा पाऊँ ॥ 4

अनुकंपा की मिसाल कायम कर श्री कृष्ण जी प्रभु अरिष्टनेमि के चरणों में पहुंचे। वंदना-नमस्कार करके भाई गजसुकुमाल मुनि को नहीं देखा तो भगवान् से पूछा— प्रभो, मेरे छोटे भाई गजसुकुमाल कहाँ हैं? भगवान् ने फरमाया— कृष्ण जी, गजसुकुमाल मुनि ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया है अर्थात् वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर मोक्ष में पहुंच गए हैं।

आश्चर्य और हैरानी के साथ श्री कृष्ण जी ने पूछा– भगवन्, ऐसे कैसे? तब प्रभु ने पिछले दिन की घटना ज्यों की त्यों सुना दी। बस एक बात का उल्लेख नहीं किया। अंगारे रखने वाले व्यक्ति का नाम पता न बताकर इतना ही कहा कि एक आदमी ने ऐसा कर दिया।

कोई गुमनाम आदमी एक मुनि को, श्री कृष्ण जी के सगे भाई को ज़िंदा जला डाले– ये बात श्री कृष्ण जी को बर्दाश्त नहीं हुई। उनके दिल में तीव्र रोष की ज्वाला धधक उठी। पूछने लगे– प्रभु, मुझे ये बता दीजिए कि ऐसा दुष्ट कौन है, जिसने इतना नृशंस कार्य कर दिया। मैं उसका, उसके परिवार और कुल का जड़ से खात्मा कर दूंगा। ऐसे शैतान को सख्त से सख्त सज़ा मिलनी चाहिए। भगवान् जानते हैं कि श्री कृष्ण जी तीव्र क्रोध की स्थिति में हैं और ये कुछ भी आदेश जारी कर सकते हैं। ये एक के बदले सैकड़ों-हजारों लोगों को मौत के घाट उतार सकते हैं, इसलिए पहले इनका क्रोध शांत किया जाए। अपराधी का पता इन्हें लगे– ये ठीक है, पर थोड़ा सा Time Gap बीच में पड़ जाए तब। इसलिए उनके आवेश पर प्यार के छींटे डालते हुए प्रभु फरमाने लगे– कृष्ण जी, आप उस आदमी पर भी गुस्सा न करो। बल्कि मेरी नज़र से देखने की कोशिश करोगे तो लगेगा कि उस आदमी ने गजसुकुमाल मुनि की लक्ष्य-सिद्धि में मदद की है, जैसे तुमने आज आते-2 उस बूढ़े की ईंटे उठवाकर उसकी मदद की थी। जो काम वह बुजुर्ग कई दिनों में कर पाता, उसे आपने मिनटों में करवा दिया। ऐसे ही करोड़ों जन्मों से बटोरे कर्म नष्ट होने में जाने कितना समय लगता, पर उस आदमी ने सब कर्मों की उदीरणा अर्थात् शीघ्र समाप्ति करवा दी। पिछले भवों में गजसुकुमाल के जीव ने अशुभ कर्मों का बंधन किया था। टीकाकारों ने लिखा है कि एक सेठ की दो पत्नियां थी। एक की कुक्षि से पुत्र का जन्म हुआ तो दूसरी संतान-हीन ही रही। उस संतान-हीन नारी के मन में अपनी सौत और उसके पुत्र से ईर्ष्या बन गई। एक बार

भगवान् अरिष्टनेमि माता देवकी
तथा भ्राता श्रीकृष्ण की साक्षी से श्री
गजसुकुमाल को दीक्षा प्रदान करते हुए

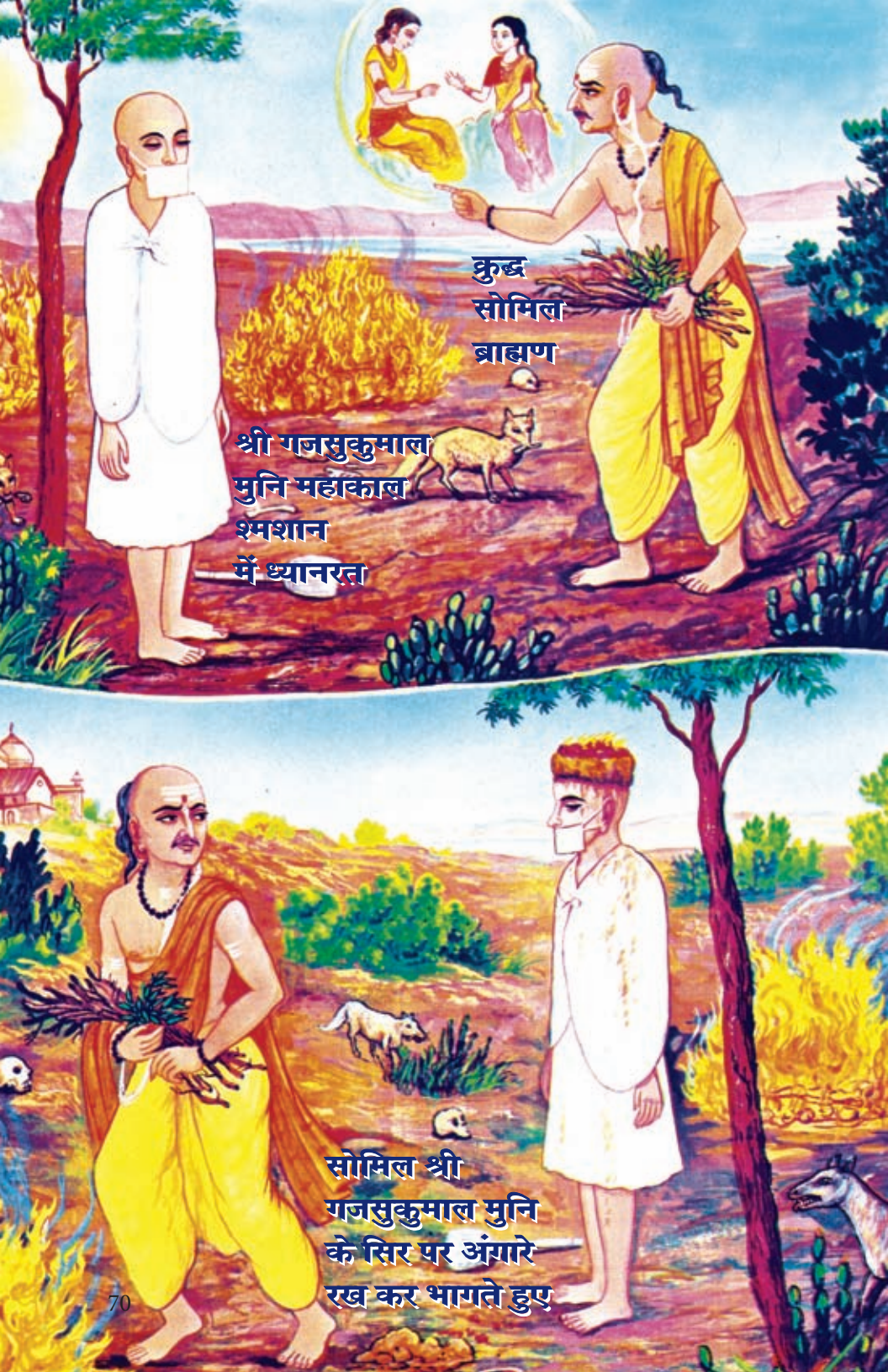
क्रुद्ध
सोमिल
ब्राह्मण
श्री गजसुकुमाल
मुनि महाकाल
श्मशान
में ध्यानस्त
सोमिल श्री
गजसुकुमाल मुनि
के सिर पर अंगारे
रख कर भागते हुए

छोटे बालक के सिर पर फोड़े हो गए। उस समय नकली सहानुभूति का प्रदर्शन करते हुए उस सौतेली माँ ने कहा– 'तू कहे तो मैं इस बालक के सिर पर गर्म-2 पूड़े बांध देती हूँ, इससे इसके फोड़ों का ईलाज हो जाएगा।' दूसरी औरत भोली थी,उसने उसे अनुमति दे दी। सौतेली माँ ने गर्म-2 पूड़े उस बालक के सिर पर बांध दिए जिससे वह बालक तड़प-तड़प कर मर गया। उस समय के बांधे हुए कर्म अब उदय में आ गए। भगवान् कहने लगे– श्री कृष्णजी! सोमिल और गजसुकुमाल का पुराना वैर इस तरह प्रकट हुआ है। प्रभु अरिष्टनेमि ने वीतराग अवस्था के साधकों का दृष्टिकोण श्री कृष्ण जी के सामने रख दिया, जिस अवस्था में हत्यारे और कातिल लोगों के प्रति भी दुर्भाव नहीं रहता। लेकिन श्री कृष्ण जी की सोच भिन्न थी। वे मानते थे कि अत्याचारी, अन्यायी एवं आततायी लोगों को दंडित नहीं किया जाएगा तो वे समाज में विध्वंस मचा देंगे। उनके अनुसार अपराधी को सजा मिलना ही इंसाफ है। इस दृष्टि-भिन्नता के कारण श्री कृष्ण जी फिर अपराधी का अता-पता पूछते हैं। भगवान् के समझाने से श्री कृष्ण जी का रोष कुछ Down तो हुआ था, पर पूरी तरह खत्म नहीं। भगवान् ने उसे ठंडा करने के उद्देश्य से फरमा दिया कि अभी तुम वापस अपने महलों की ओर लौटोगे, रास्ते में वह आपको मिल जाएगा, आप को सजा देने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। वह बेचारा तो आपको देखते ही काल कर जाएगा। वह ऐसा दुष्कृत्य कर चुका है, जो उसे जीने नहीं देगा। श्री कृष्ण जी फिर कुछ शांत हुए। हाथी पर बैठकर महलों की ओर चले। उदासी से मन मलिन था। हर ओर मायूसी की छाया फैली हुई थी।

पकी फसल हो तो बरसात बुरी लगती है,
घर में पड़ी लाश हो तो बारात बुरी लगती है।
छोटी सी ज़िंदगी में बड़ा सा अनुभव है कि,
दिल उदास हो तो हर बात बुरी लगती है ॥

उधर बेचारे, बेभागे सोमिल की हालत भी खराब हो गई थी। मुनि पर अग्निकांड करने के बाद एक पल के लिए भी उसे शांति और चैन नहीं था, पूरी रात खौफ में कटी। सुबह होने के बाद तो उसे लगा कि अब मरा, अब मरा। ज़रूर श्री अरिष्टनेमि भगवान् ने कृष्ण जी को, सारी समाज और नगरी को मेरे कुकृत्य की खबर दे दी होगी। श्री कृष्ण जी तो किसी को बक्शने वाले हैं नहीं। उन्होंने कंस, शिशुपाल, जरासंध जैसे शक्ति संपन्न, धुरंधरों को नहीं बक्शा, फिर मैं किस खेत की मूली हूँ। वह मेरी बोटी-2 नुचवा देगा, मेरे परिवार का सर्वनाश कर देगा, सारे खानदान को मिट्टी में मिला देगा। हाय! क्या करुं? भाग जाऊं, छिप जाऊं, ऐसी जगह चला जाऊं जहां किसी को मेरी खोज खबर ही ना मिले। बिना किसी को बताए चल दिया घर से, कहाँ जाना था, उसे खुद भी पता नहीं था। पर मुंह छिपाता-2 नगरी से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था और अचानक श्री कृष्ण जी दिखाई पड़ गए। जिनसे छिपने के लिए घर से भागा था, वही सामने आ गए। दिल पर एक झटका लगा, शरीर का तंत्र लड़खड़ा गया, तीव्र भय से Heart की Functioning collapse हो गई। धड़ाम से ज़मीन पर गिर पड़ा। प्राण पखेरु-उड़ गए। श्री कृष्ण जी ने अपने सामने गिरते हुए इंसान को देखा तो चौंके। जब गौर से देखा तो वह सोमिल था। भगवान् ने फरमाया था कि गजुकुमाल मुनि का हत्यारा मेरा सामना नहीं कर पाएगा, अपनी मौत मर जाएगा। फिर तीव्र क्रोध से श्री कृष्ण की नसें तमतमाने लगी। यदि कहीं इसमें प्राण बाकी हों तो उन्हें भी निकलवा दूं। इसे तड़पा-2 कर मारुं। अपना क्रोध जी भर कर उतारा। फिर उसकी लाश को फिंकवा दिया और पानी से जगह साफ करवा अपने घर पर लौट आए। ज़िंदगी की गाड़ी आहिस्ता-2 पटरी पर आई पर एक गहन आतंरिक अवसाद श्री कृष्ण जी के मानस में समा गया। उन्हें लगने लगा कि खुशियों, खुशहालियों के दिन अब लंबे समय तक नहीं रहेंगे। एक आशंका बार-2 उनके चित्त को झकझोरने लगी कि

कल क्या होगा? उनका दुनिया के लोगों से विश्वास-सा उठने लगा, उनकी चेतना कभी-2 पुकार उठती।

मांग न पानी जग के खारे सागर से,
तेरी प्यास बुझेगी अपनी गागर से ॥

द्वारिका नगरी के पांच और महापुरुषों ने भगवान् के चरणों में दीक्षा ले अपना कल्याण किया। उनके नाम इस प्रकार हैं– बलदेव और धारिणी के तीन पुत्र– सुमुख, द्विमुख तथा कूपदारक थे। वसुदेव धारिणी के दो पुत्र-दारुक तथा अनादृष्टि थे। सभी मोक्षगामी जीव थे।

आज हमने गजसुकुमाल जी का बलिदानी जीवन सुना, प्रयास करें कि अपने जीवन में उन जैसी समता, दृढ़ता तथा ध्येय-निष्ठा को विकसित करें।

आप सबकी धर्मश्रद्धा की हम तारीफ करेंगे। हाँ, एक और निवेदन है, जो भाई बहन अभी तक नहीं जागे, उन्हें भी जगाएं तथा पर्यूषण की आराधना में उन्हें भी लगाएं। आपके स्नेह सत्कार का आभार मानते हुए पुनः।

जय जिनेन्द्र!

चतुर्थ पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– उठ जाग मुसाफिर भोर भई

चौथा दिन है पर्यूषण का, देखो क्या कुछ कर पाए हैं।
कुछ हुई कमाई आत्मा की, या यों ही दिवस बिताए हैं ॥

दुनिया की अंधी दौड़ नहीं, छुट पाई तो क्या छोड़ा है।
वह धन्य भाग जिसने अपने, तीनों ही योग टिकाए हैं ॥

जो स्वर्गों जैसी सुंदर थी, जल गई द्वारिका नगरी भी।
सुनकर क्या अपने मन में हम, अनित्य भावना लाए हैं ॥

परिणाम भयंकर होता है दुर्व्यसनों का और ऐबों का।
खुद बचें, बचाएं औरों को, ये आगम की शिक्षाएं हैं ॥

नारी को क्यों अबला कहते, देखो श्री कृष्ण की रानी भी,
महलों के सुख को छोड़ चली, संयम का बोझ उठाए हैं ॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के चतुर्थ व पंचम वर्ग के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना, पूज्य गुरुदेवों को वंदना तथा भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र!

जागरण के इन मधुर क्षणों में श्रद्धा, भक्ति, सामायिक, स्वाध्याय, सेवा और सम्मान की कलकल गंगा बह रही है। आप और हम मिल-जुलकर पर्यूषणों की आराधना कर रहे हैं। वे क्षेत्र धन्य हैं, जहां त्यागी-तपस्वी मुनियों के चातुर्मास चल रहे हैं। तथा क्षेत्रवासी उनके सान्निध्य में धर्म-ध्यान कर रहे हैं। पर हम भी अपने को परम भाग्यशाली मानते हैं, जो तीर्थंकर भगवन्तों की वाणी का पान कर रहे हैं तथा करवा रहे हैं। यदि हम आज अपने घर होते तो इतने निश्चिंत और आत्मलीन नहीं हो सकते थे, जितने अब हैं। यहाँ आकर हमें परिवार, व्यापार तथा संसार का भार बहुत कम महसूस होता है। जिनशासन की सेवा का सौभाग्य मिलता है, आपका असीम स्नेह प्यार मिलता है। कई धर्म संस्थाओं में ऐसे-2 सेवाभावी व्यक्ति भी हैं, जो कई-2 महीने घर-बार छोड़कर अपने गुरुओं के डेरों में सेवा करते हैं। हमें इन दिनों स्वाध्याय का पर्याप्त समय उपलब्ध हो जाता है। भगवान् महावीर ने फरमाया है कि **"सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ"** स्वाध्याय से ज्ञान की रुकावटें हट जाती हैं। हमें कई बार महसूस होता है कि आगम के मूल शब्दों से भी हमें अर्थ का बोध हो रहा है। हमें प्राकृत भाषा का ज्ञान नहीं है, पर स्वाध्याय तो इस रूकावट को भी Remove कर देता है।

तो आओ चलते हैं, आगम में वर्णित मोक्षगामी आत्माओं का परिचय कर लें। आज हमें चौथे और पांचवे वर्ग की वाचना करनी है। चौथा वर्ग अति संक्षिप्त है। इसमें जालि-मयालि आदि दस राजकुमारों के संयम और मोक्षगमन का वर्णन हैः—

अंतगड़दशांग जी आगम का, करते हैं भाव सहित वर्णन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥
द्वारिकाधीश वसुदेव जी के सुपुत्र हुए थे जालि कुमार,
सुख वैभव उत्तम पाया था पचास मिली थी उनको नार ॥
इक रोज़ प्रभु नेमि आए, उपदेश सुनाया मनमोहक,
सुनकर जालि ने ली दीक्षा, पाली थी सोलह वर्षों तक ॥

फिर शत्रुंजय पर्वत पर जा, संथारापूर्वक किया मरण,
जिन वाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥

जिस तरह जालि ने कर्मों का अंत किया, उसी तरह मयालि, उपयाली, पुरुषसेन तथा वारिषेण ने भी किया। इनके माता-पिता वसुदेव तथा धारिणी थे। कृष्ण जी की पत्नी रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न ने, जाम्बवती के पुत्र सांब ने मोक्ष पाया। प्रद्युम्न तथा वैदर्भी के पुत्र अनिरुद्ध ने भी मुक्ति प्राप्त की। श्री अरिष्टनेमि भगवान् के भाई समुद्र विजय, शिवा के लाडले सत्यनेमि तथा दृढ़नेमि ने भी ऐसे ही मुक्ति हासिल की। इन दस महापुरुषों की ज़िंदगी में झांकने से पता चलता है कि श्री कृष्ण जी की तीन पीढ़ियां दीक्षित हुई थी। इनमें सात इनके भाई हैं, दो पुत्र हैं तथा एक पोता है। इनकी दीक्षा के समय माहौल न अधिक मायूसी का था, न अधिक खुशी का। श्री कृष्ण जी दीक्षा लेने वालों को न तो प्रेरणा दे रहे थे, न रोक रहे थे। दीक्षित होने वाले अपने पारिवारिक वृद्धजनों से पूछ लेते, वे भी औपचारिक तौर पर उन्हें रोकने का प्रयत्न तो करते, पर अधिक दबाव नहीं डालते कि घर पर रुको। यही रवैय्या श्री कृष्ण जी का था। हाँ, धीरे-2 श्री कृष्ण जी का दृष्टिकोण ये बनता जा रहा था कि द्वारिका में सब कुछ अच्छा नहीं है। आम आदमी विलासिता की ओर बढ़ रहा था। सेठ-साहूकारों के बालक, युवक उच्छृंखल होते जा रहे थे। राज-परिवार से जुड़े लोगों में मर्यादा की रेखा नदारद होती जा रही थी। हर ओर मनमानी का राज्य था। इसी कारण राज्य-प्रशासन का डर लोगों से हटता जा रहा था। शराब-मांसाहार, जो भगवान् अरिष्टनेमि की कृपा से कम हुआ था, फिर से सिर उठाने लगा था। जिस दिन से गजसुकुमाल जी को जीवित जला दिया था, उस दिन से तो श्री कृष्ण जी बहुत व्यग्र-दुःखी और निराश हो गए थे। उन्हें अचानक ऐसा लगता था, मानों श्मशानों से उठी हुई आग पूरी द्वारिका को जलाने लगी है। कभी उन्हें लगता कि संसार का हर त्यागी द्वारिका को अभिशप्त करार कर रहा है। श्री कृष्ण जी

को चैन और विश्राम नहीं था। उनकी मनोदशा को चित्रित करने वाले चंद शब्दः—

मुझे ले चलो यहाँ से मेरा मन उबल रहा है,
सारे शहर का मौसम फिर से बदल रहा है।
दुबके हुए खड़े हैं सब लोग ही घरों में,
खंजर कोई हवा में शायद उछल रहा है ॥

अग्नि से खेलते हैं उनका चरित्र देखो,
ज्यों सर्प अपने अंडे खुद ही निगल रहा है।
बहरे सभी बने हैं हर चीख है निरर्थक,
मेरा देश आज कैसे सांचे में ढल रहा है ॥

अंतकृद्-दशांग सूत्र के पांचवे वर्ग में श्रीकृष्ण जी की मानसिक व्यथा का कुछ वर्णन होने जा रहा है। इस वर्ग में उन दस देवियों की साधना का उल्लेख है, जिन्होंने पहले श्री कृष्ण जी के महलों का सुख भोगा, फिर वैराग्य के ऊंचे सोपानों पर चढ़कर मोक्ष महल का अनन्त आनंद चखा। उन महान् नारियों के नाम हैंः— पद्मावती, गौरी, गांधारी, लक्षणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी, मूलश्री तथा मूलदत्ता। इस वर्ग की शुरुआत होती है भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण से। प्रभु द्वारिका के बाहर सहस्राम्र वन में पधारे हुए थे। हर बार की तरह श्री कृष्ण जी अपने परिवार के साथ दर्शन करने आए। महारानी पद्मावती, शेष पटरानियां एवं पुत्रवधुएं भी श्री चरणों में उपस्थित हुई। सामान्य जनता उपदेश सुनकर चली गई, पर श्री कृष्ण जी वहीं बैठे रहे। दिल में बसे गहन अवसाद का कुछ समाधान करना था। राज्य-व्यवस्था के भार से दबे हुए थे और स्थितियां हाथों से बाहर निकलती जा रही थी। Law and order लागू नहीं हो रहा था। अपने घर के बच्चे बिगड़ रहे थे। ऐसे में उनके लिए श्री अरिष्टनेमि का ही सहारा था। इसलिए पूछ लिया— 'प्रभो, बारह योजन लंबी, नौ योजन

चौड़ी, स्वर्ग के समान सुंदर इस द्वारिका नगरी का विनाश किन कारणों से संभावित है।' प्रभु ने फरमाया— इसके विनाश के तीन कारण बन सकते हैं 1. सुरापान 2. अग्नि-प्रकोप 3. द्वैपायन सरीखे ऋषि की नाराजगी। भगवान् ने श्री कृष्ण जी की आशंकाओं को पुष्ट कर दिया। इनके मन के किसी कोने में हल्की सी उम्मीद रही होगी कि शायद प्रभु फरमा दें कि द्वारिका का बाल भी बांका नहीं होगा। प्रभु के तो कथन मात्र से ही अनहोनी टल जाएगी। मगर भगवान् ने तो उस भावी विनाश का पूरा खाका ही खींच दिया। अब तक की ज़िंदगी में निराशा को पास फटकने नहीं दिया था मगर आज श्री कृष्ण जी भी घोर निराशा में घिर गए। मेरा, मेरे परिवार का, मेरे वंश का, मेरी नगरी का, मेरे राज्य का क्या होगा? जैसे मेरे कुछ भाई, कुछ पुत्र, कुछ पौत्र साधना के मार्ग पर आरूढ़ हो गए, क्या मैं वह पथ नहीं अपना सकता। मन ही तैयार नहीं होता कि दीक्षा लूं। घर की, समाज की, राष्ट्र की जिम्मेदारियों को छोड़ अपनी आत्मा की खोज करुं। मुझे ये संसार अच्छा लगता है, भले ही दुःखों से भरा है। निकलने की मानसिकता नहीं बनती। हाय, क्या होगा मेरा!

श्री कृष्ण जी का मानसिक भार कम करने हेतु भगवान् अरिष्टनेमि ने कहा— हे कृष्ण वासुदेव, आप जैसे कर्म पुरुष पूर्व जन्मों से इस तरह की मानसिकता लेकर आते हैं। वे गृह त्याग, संसार-विमुखता की ओर मुड़ ही नहीं सकते। पूर्व जन्मों के ऐसे गहन संस्कारों को निदान कहा जाता है। हे कृष्ण जी, आप निदान का बंधन लेकर आए हो। इस ज़िंदगी में तुम्हें अभी कुछ निराशा-हताशा के दौर से गुजरना है जैसे कि द्वारिका दहन होगा, माता-पिता विदा हो जाएंगे, तुम और बलभद्र पांडवों की राजधानी पांडु मथुरा पहुंचने के लिए प्रस्थान करोगे। मगर बीच में ही कौशाम्ब के जंगल में जराकुमार के हाथों शरीर से हाथ धो बैठोगे। कुछ समय तीसरी पृथ्वी में बिताकर अगली उत्सर्पिणी में पौण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर में अमम तीर्थंकर के रूप में जन्म होगा। उस भव में ही सिद्धगति के अधिकारी बनोगे।

पिछले प्रसंग को श्री अरविंद जी ने काव्य में यों पिरोया हैः—

इक रोज़ प्रभु नेमि जी के, चरणों में कृष्ण जी बैठे थे,
कब कैसे द्वारिका नष्ट होगी, कर दिए प्रश्न यों टेढ़े थे,
द्वैपायन, सुरा और अग्नि से, तेरी नगरी जल जाएगी,
श्मशानों सा मंजर होगा, बस नज़र राख ही आएगी,
मदिरापायी युवकों के हाथों, पीड़ित होगे संत श्रमण
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-भव के कट जाते बंधन ॥

भगवान् अरिष्टनेमि ने जैसे ही जीवन का सुनहरा पृष्ठ उघाड़ा, श्री कृष्ण महाराज बाग-2 हो गए। उनके रोम-2 की कली खिल उठी। उन्हें लगा, सारा अंधकार विलीन हो गया। दो जन्मों के बाद की भावी उपलब्धि मानों वर्तमान में हस्तगत हो गई। अंग-2 उछल रहा था, कदमों में नई जान आ गई। कंठ में सिंहनाद बजने लगा, पैर धरती पर नहीं पड़ रहे थे। भगवान् से आशा का असीम प्रसाद लेकर अपने राजमहलों में आ गए। दरबार भर लिया तथा नगरी और राष्ट्र पर आने वाले विप्लव का संगीन नक्शा जनता के सामने प्रस्तुत किया। जनता तो अंधकारमय भविष्य की कल्पना से ही सिहर गई। उन्हें समझ नहीं आया कि इस भीषण काल का प्रतिकार क्या है? तब श्री कृष्ण ने कहा— 'घबराने से काम नहीं चलेगा। हम यदि कोशिश करेंगे तो कुछ न कुछ समाधान ज़रूर निकलेगा। स्थायी समाधान तो उनके लिए है, जो सदा के लिए त्याग मार्ग पर चलने को तत्पर हों, उनके लिए तो आनंद ही आनंद है। कोई खतरा ही नहीं, कोई भी विपदा उनका बाल-बांका नहीं कर सकेगी। दीक्षा लेने के इच्छुक नर-नारी ये चिंता न करें कि हमारे बाद हमारे परिवार-जनों का पालन-पोषण कौन करेगा? हम उन्हें जीवनोपयोगी स्थायी सामग्री प्रदान करेंगे। राष्ट्रीय कोष की अकूत संपदा इस उत्तम काम के लिए प्रयुक्त की जाएगी। बच्चों की शिक्षा, रहन-सहन, चिकित्सा आदि मूलभूत ज़रूरतें प्रशासन के जरिए पूरी की जाएंगी। युवकों को उनकी योग्यता तथा आवश्यकता के अनुसार रोज़गार तथा वेतन मिलेगा। वृद्धों

को हर प्रकार का गुजारा-भत्ता मुहैय्या होगा। महिलाओं को सम्मान, सुरक्षा और सहायता उच्च कोटि की मिलेगी। जितनी सुविधाएं पारिवारिक व्यक्ति नहीं जुटा सकते, उससे ज्यादा राज्य की ओर से जुटाई जाएंगी। लेकिन जो नर नारी अपने आप को महाव्रतों के पालन में अक्षम मानते और समझते हों, वे घर में रहकर धर्म-ध्यान करें। कम से कम इतनी तो उनसे भी अपेक्षा है कि वे उद्दण्डता-पूर्ण हरकतों से बाज आएं। नगरी में शीघ्र ही शराब पर पाबंदी लगेगी। जो उस पाबंदी को निभाएगा, वह स्वयं को तथा राष्ट्र को सुरक्षित रखेगा तथा जो इस पाबंदी को तोड़ेगा, प्रशासन उससे सख्ती से निपटेगा।' इस अभियान के अंतर्गत श्री कृष्ण जी ने शराब की भट्टियां बंद करवा दी, फैक्ट्रियों पर Ban लगा दिया गया। बिक्री केन्द्र, दुकानें, ठेके सील कर दिए। पुराने शराब का Stock उठवाकर शहर से बाहर पर्वत पर फिंकवा दिया। चारों ओर खुशनुमा माहौल बनने लगा। श्री कृष्ण जी ने ये घोषणा समग्र राज्य में करवा दी। कुछ पुराने पियक्कडों के अलावा हर सामान्य नर-नारी ने इस सुधार को समर्थन दिया, Moral and vocal Support दी। घोषणा की प्रतिध्वनि हर गली, मोहल्ले तथा बाज़ारों में गूंजने लगी। लोगों में ये भाव और चाव था कि इस आंदोलन को कामयाब बनाएंगे। जिनकी रगों में नशा समा चुका हो, ऐसे लोगों का ईलाज तो हो नहीं सकता।

एक लड़का पीने का जबरदस्त आदी था। उसे अच्छे-बुरे की, अपने-पराए की तमीज नहीं रहती थी। आखिर उसे नशा मुक्ति केंद्र में भर्ती करवाना पड़ा। डॉक्टरों की कड़ी मेहनत से कुछ मोड़ आने लगा। डॉक्टरों ने उसके परिवार वालों को बुलाया और बताया कि अब यह बिल्कुल ठीक हो गया है। इसे आप घर ले जा सकते हो। घर वालों ने कहा— हमें ये सबूत दो कि यह बिल्कुल ठीक हो गया है। डॉक्टरों ने कहा— सामने अनार के पेड़ पर एक हरा और एक लाल रंग का तोता बैठा है। आप इसे कहो, ये ले आएगा। उन्होंने कहा— बेटा, दोनों तोतों को लेकर आओ। वह गया, चुपचाप पकड़ कर ले आया लेकिन उसके हाथ में केवल एक लाल तोता ही था। सबने पूछा— तुझे दो तोते लाने

को कहा था, तू एक क्यों लाया, तथा दूसरे को क्यों छोड़ आया? वह बोला— हरा तोता अभी पका नहीं था, लाल पक गया था। पेड़ पर लगा-2 जब पक कर लाल हो जाएगा तब ले आऊंगा। डॉक्टरों ने माथे पर सिर मार लिया— इसका इलाज कैसे करें? कुछ लोग तो लाइलाज होते हैं। हाँ, अधिकांश रूप में द्वारिका में की गई शराब-बंदी की घोषणा जब जन-स्वीकृति बन गई तब उसके बोल यों गूंजे...

तर्जः— आराम है हराम

संकट की बेला आई, देता है प्रलय दिखाई,
नगर निवासी मिलकर इसका कर लो सामना,
लो भावना बना ॥

1. जलती नगरी से बचना हो दीक्षा कर लो धारण
घर का क्या होगा मत रुकना इस चिंता के कारण,
बूढ़ों की और बच्चों की, निर्धन निर्बल कच्चों की,
देखभाल हर हाल करुंगा निश्चय मानना ॥

2. जो दुनिया में रहें नशों का पूर्ण त्याग कर डालें,
संभव है कुछ साल महीने घोर विपत्ति टालें,
है नशा नाश का कारण, ये तंत्र मंत्र है मारण,
राज्य प्रशासन की सख्ती को हंसकर झेलना ॥

3. संत जनों का आदर करना है कर्त्तव्य सभी का,
आदर न कर सकें निरादर हो नहीं जती सती का,
इससे अपना ही भला है, संतों को मान से क्या है?
जहां संत वहां सूर्य उदय है होती शाम ना ॥

4. अब शिकार और मांसाहार पर लग जाए पाबंदी,
जुआ चोरी दुराचार हैं आदत बेहद गंदी,
मौका है सुधर अब जाओ, जीवन धन सकल बचाओ,
वर्ना मुश्किल हो जाएगा विप्लव थामना ॥

इधर श्री कृष्ण महाराज अपनी प्रजा को अलग-2 किस्म के संदेश भिजवा रहे थे। उधर भगवान् अरिष्टनेमि के समवसरण में पद्मावती, सत्यभामा, रूक्मिणी आदि राज-रानियां वैराग्य के महासागर में डुबकियां लगा रही थीं। वहां तो ज्ञान का सूर्य जगमगा रहा था। जो आत्मा चाहे, वह अपनी आंखे खोलें, अपने सद्गुणों, दुर्गुणों पर दृष्टिपात करे, अपने गंतव्य पथ को चुने और चलने के लिए कटिबद्ध हो जाए। महारानी पद्मावती ने, या यों कहिए– उसके साथ आई सभी रानियों तथा उनकी बहुओं ने प्रभु से निवेदन किया कि– 'हे प्रभो, हमें आपके संयम पथ पर अग्रसर होना है, केवल वासुदेव श्री कृष्ण जी की आज्ञा लेनी आवश्यक है।' ये कहकर वे सभी अपने-2 घर लौट आई। पद्मावती ने अपने पतिदेव श्री कृष्ण जी से निवेदन किया कि मेरा भाव दीक्षा लेने का है। श्री कृष्ण जी तो इस समय इस विषय में निश्चय किए हुए थे कि मेरे घर का कोई भी सदस्य दीक्षा लेगा, उसे रोकना तो दूर बल्कि उसे उत्साह ही दूंगा, इसलिए तत्काल स्वीकृति दे दी। बोले– 'जैसे तुम्हें अच्छा लगे, मेरी तरफ से कोई रूकावट नहीं है।' उन्होंने पद्मावती आदि रानियों के दीक्षा-प्रसंग को एक महोत्सव का रूप देने का फैसला लिया। पहले तो एक ऊंचे पट्टे पर पद्मावती देवी को बैठाया गया, फिर 108 सुनहरी कलशों से उसे नहलाया गया। इस स्नान को आगम की भाषा में **'निष्क्रमणाभिषेक'** कहते हैं। सब प्रकार के आभूषण और जेवरों से अलंकृत करके एक पालकी में, जिसे एक हजार आदमी उठा रहे थे, बैठाकर द्वारिका के मुख्य-2 मार्गों से गुजारा गया। फिर सहस्राम्र-वन में पहुंच प्रभु के चरणों में वंदना की। श्री कृष्ण जी ने भगवान् श्री अरिष्टनेमि के समक्ष अपने भाव प्रकट करते हुए कहा– 'प्रभो, ये मेरी पट्टरानी पद्मावती है। अब तक इसमें मेरे प्राण बसे हुए थे, इससे मेरे दिल को तसल्ली मिलती थी। मेरा मानना था कि इसका दीदार किसी महान् सौभाग्यशाली पुरुष को ही हो सकता है। परंतु आज यह सब स्नेह बंधनों को छिन्न-भिन्न कर दीक्षा लेना चाहती है, तो मैं भी इसे आपकी सेवा में सुपुर्द करने आया हूँ। मैं आपको आहार की नहीं, शिष्या की भिक्षा देना चाहता हूँ। आप

इसे मंजूर करें।' यों सौंपकर अंतःपुर के सर्वोत्तम रत्न को सौंप कर श्री कृष्ण जी अपने घर लौट आए। पद्मावती ने अपने बहुमूल्य आभूषण उतारे, पंचमुष्टि लोच किया और साध्वी का वेष धारण कर प्रभु-चरणों में हाज़िर हो गई। निवेदन करने लगी— 'प्रभो, द्वारिका की आग की मुझे फिक्र नहीं है क्योंकि मुझे तो सारा संसार ही आग में धधकता दिख रहा है। मुझे आप वो धर्म सिखाओ जिससे मेरी आत्मा का उद्धार हो सके।' प्रभु अरिष्टनेमि ने उसे आत्म-कल्याण का सच्चा स्वरूप समझाया और बाद में अपने संघ की प्रवर्तिनी यक्षिणी आर्या के हवाले कर दिया। आर्या यक्षिणी के नेतृत्व के नीचे पद्मावती ने संयम साधना के क्षेत्र में लंबे-2 डग भरे। उन्होंने साधना में उपयोगी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। तपस्या के नूतन कीर्तिमान स्थापित किए। उपवास, बेला, तेला, 15 दिन, मासखमण आदि तपस्याएं उनके 20 वर्षीय श्रमण-पर्याय का अभिन्न अंग बनी रही। अंतिम समय में एक महीने का संथारा तो किया ही, केवल-ज्ञान, दर्शन पाकर अंत में मुक्ति भी हासिल की। पद्मावती के समान ही शेष सात पटरानियों ने भी दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया। इन महारानियों के पीछे-2 श्री कृष्ण महाराज के पुत्र साम्ब की दो पत्नियां— मूल श्री तथा मूलदत्ता भी दीक्षित हुई और उन्होंने अपने लक्ष्य का वरण किया।

अन्तकृद्-दशांग के इस वर्णन के अलावा भी अनेक ग्रंथों में श्रीकृष्ण जी के संबंध में व्यापक वर्णन मिलता है। महाभारत, भागवत आदि हिन्दू-ग्रंथों की तरह जैन-ग्रंथ भी श्री कृष्ण की जीवनी के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देते हैं। कुछ बातें जैन-ग्रंथों में सुरक्षित रह गई तो कुछ हिन्दू-ग्रंथों में। ये बातें एक दूसरे की पूरक हैं, विरोधी नहीं। हमारा तो ये मानना है कि जो लोग हिन्दू-ग्रंथों को पढ़ते हैं उन्हें जैन-ग्रंथ भी पढ़ने चाहिए तथा जो लोग जैन-ग्रंथों को पढ़ते हैं, उन्हें हिन्दू-ग्रंथ भी पढ़ने चाहिएँ, ताकि ज्ञान का क्षितिज विस्तृत हो सके। भागवत में वर्णन आता है कि श्री कृष्ण जी आठ भाई थे। पर आठवें का कोई नाम-काम नहीं बताया। इसके लिए सामग्री मिलती है अंतगड-दशांग

में, जिसमें गजसुकुमाल जी को उनका आठवां भाई बताया है। कुछ और प्रसंग भी है, जिनका वर्णन जैन लेखकों ने स्थान-2 पर किया है। जैसे कि श्री कृष्ण जी हमेशा गुण-ग्राही थे। उनकी दृष्टि Positive रहती थी। किसी व्यक्ति या घटना के Negative पहलू को वे देखते नहीं थे। राजमार्ग पर मरे हुए कुत्ते के शरीर में से दुर्गंध आ रही थी। उस वक्त भी श्री कृष्ण जी ने कहा था कि इस कुत्ते के दांत कितने सुंदर और साफ सुथरे हैं। इनके विषय में एक भजन आपके सामने रखना चाहूँगा।

तर्जः– अच्छा सिला दिया तूने मेरे प्यार का

भारतीय संस्कृति के मानदंड थे,
द्वापर कालखंड में वो मार्तंड[1] थे ॥
तोड डाली जेल की थी जंजीरे जन्म से,
कंस वंश को मिटाए शौर्य से व कर्म से,
खेल में ही खत्म किए पाखंड थे ॥

बांसुरी की तान पे नचाए ग्वाल बाल थे,
गीता से मिटाए सारे संशयों के जाल थे,
पांचजन्य घोष से बने प्रचण्ड थे ॥

कृष्ण की कहानी क्या वो तो इतिहास था,
जिसने पुकारा हरदम उसके ही पास था,
मानियों के बचे नहीं पर घमंड थे ॥

सूर्य बन के आया जब, सारे तारे बुझ गए,
आया वो तूफान जब तिनके सारे उड़ गए,
देवदार था वो बाकी ऐरण्ड[2] थे ॥

गृहस्थ के लिए बताया कर्म ही धर्म है,
अनासक्ति को बताया कर्म का भी मर्म है,
चारों ओर से चौकन्ने भारण्ड[3] थे ॥

---

1 सूर्य 2 निम्न कोटि का वृक्ष 3 दो दिशाओं में देखने वाला पक्षी

यों तो श्री कृष्ण जी पहले से ही प्रभु अरिष्टनेमि के उपासक थे। लेकिन जब से द्वारिका-दहन का खतरा सिर पर मंडराने लगा, तब से तो उनका समग्र ध्यान संयम प्रेरणा में लग गया था। उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप नगरी में सैंकड़ो-हज़ारों नर-नारियों ने दीक्षा ग्रहण की। उनके महलों में हर वक्त त्याग-वैराग्य की चर्चाएं होती रहती। आमोद-प्रमोद, राग-रंग, वैभव-विलास की सदाबहार महफिलों की बजाय धर्म-गोष्ठियां होती, आत्म-कल्याण की चर्चाएं चलती, त्याग-तपस्या, संयम और साधना के उपायों पर विचार-विमर्श होता। कुछ ऐसी भावुक आत्माएं भी होती, जो उन चर्चाओं में हिस्सा लेने के बाद बहुत गहराई में उतर जाती। ऐसी एक रानी कनकवती के विषय में एक आचार्य ने लिखा है कि कनकवती एक बार इतनी आत्मलीन हो गई कि उसके सारे घाती कर्म नष्ट हो गए और उसे महल में ही केवल-ज्ञान हो गया।

"गृहेऽपि कनकवत्याश्चिन्तयन्त्या भव-स्थितिम्,
उत्पेदे केवलं ज्ञानं सद्यस्त्रुटित-कर्मणः ॥"

वैराग्य की भावनाओं ने राजभवनों को तपोवन जैसा पवित्र बना दिया था। श्री कृष्ण जी की भरसक कोशिश रही कि नए युवक-युवतियां संसार के बंधन में आने से पहले ही निकल जाएं। विवाह करवाने के बाद तो जिम्मेदारियों का बोझ इतना ज्यादा हो जाता है कि निकलना काफी कठिन हो जाता है। वे खुद ये महसूस करते थे कि मैं अपनी पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय जिम्मेदारियों को चाहकर भी नहीं छोड़ सकता। पर जिन्होंने संसार का स्वाद नहीं लिया, उनके लिए बाहर आना काफी आसान है। उन्होंने एक अनूठा प्रयोग किया— वे कन्या-अन्तःपुर में विवाह योग्य पुत्रियों में से एक-2 पुत्री को अपने पास बुला लेते और पूछते— बेटी, ये बता, तू दासी बन कर जीना चाहती है या स्वामिनी? स्वाभाविक रूप से कन्या कहती कि मैं स्वामिनी बनना चाहती हूँ, दासी नहीं। तो श्री कृष्ण जी समझाते कि विवाह के बाद लड़कियां अपने पति को स्वामी कहती हैं और उन्हें स्वामी की दासी बन कर रहना पड़ता है। यदि घर-परिवार छोड़कर दीक्षा ले लोगी तो

अपने जीवन की तथा सारे संसार की स्वामिनी बनोगी। उनके समझाने का इतना सुंदर तरीका था कि लगभग सभी अविवाहित कन्याओं ने विवाह से इंकार कर दिया और महाव्रत का मार्ग अपना लिया। समग्र राज्य में वैराग्य की तीव्र प्रेरणा के फलस्वरूप श्री कृष्ण जी ने तीर्थंकर नाम-कर्म का बंध कर लिया। समय-2 पर मुनियों को भावपूर्वक वंदन करते-2 उन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व को उजागर कर लिया।

घर में उनका सबसे अधिक लगाव भाई बलभद्र से बना रहा।

राज्य की सुरक्षा की चिन्ता उन्हें सता ही रही थी, इसलिए उनका प्रयास रहा कि अनेक अनर्थों की जड़ 'मदिरा' का प्रचलन बंद कर दिया जाए। ये सोचकर कि यदि 'मदिरा' उपलब्ध नहीं होगी तो लोग पीएंगे कैसे? एक बार ज़बरदस्ती छुड़वा दी जाए तो बाद में उसकी मांग बंद हो जाएगी। Out of sight, out of mind. राज्य-शासन मानवों की विचार धारा नहीं बदल सकता, वह तो वस्तु की उपलब्धता, अनुपलब्धता को Control कर सकता है। शराब न मिलने से Crime Rate भी कम होने लगा। सड़कों पर मारपीट, लडाई-झगड़े, कोर्ट-कचहरी के मुकदमे घट गए। पति-पत्नियों की तकरारें भी अल्प हो गई। बच्चों की सेहत और पढ़ाई सुधरने लगी, घरों में समृद्धि का प्रभाव दिखने लगा, रोज़-2 के घरेलू क्लेश अब प्यार प्रेम में तब्दील हो गए। सब कुछ Positive होने के बाबजूद कुछ लोग ये ही शिकायत करते कि हमारे खाने पीने की स्वंतत्रता पर सरकार प्रहार कर रही है। इनकी दाल तो गल नहीं सकती थी। पर चैन से बैठते फिर भी नहीं थे। उन्हें भूखा-नंगा रहना मंजूर था, पर अपनी 'घूंट' छोड़ना नहीं।

इसीलिए तो कहा गया है कि अमीरी आती है तो वह भी छप्पर फाड़ कर आती है और मुसीबत आती है तो वह भी छप्पर फाड़कर आती है।

सुना होगा आपने कि एक युवक की शादी के बाद उसका जीना मुश्किल हो गया। वह अपनी पत्नी से तो दुखी था ही, अपनी सास से और भी ज्यादा दुखी। एक दिन उसका अपनी पत्नी से काफी

झगड़ा हो गया। उसने अपने पीहर में माँ को फोन कर दिया कि तूने मेरी शादी किसके साथ कर दी, ये तो रोज़-2 लड़ रहा है। अब मेरा विचार है कि मैं तीन चार महीने के लिए तेरे पास आ जाऊँ तो इसे पता चल जाएगा कि औरत के बिना घर कैसे चलता है। उसकी माँ ने कहा– बेटी, तू पीहर मत आ। इसको पूरी सजा देनी है, सबक सिखाना है, इसलिए मैं ही पांच-छह महीनों के लिए तेरे घर आंऊगी, तब इसे पता चलेगा। लड़के को पता चला तो नानी याद आ गई। एक बीमारी के ऊपर दूसरी बीमारी– यही हाल उन जवानों का था।

गली में एक बुढ़िया जोर-2 से खांस रही थी। उधर से एक पियक्कड़ गुज़रा। पूछने लगा– 'ताई, क्या हो गया?' ताई बोली– 'बेटा खांसी हो गई, इलाज कुछ हो नहीं रहा। दवाई बहुत ले ली।' उसने अपनी जेब से बोतल निकाली और कहने लगा– 'तू दो घूंट पी ले, सारी खांसी भाग जाएगी।' बुढ़िया– 'बोली ये कैसे?' शराबी बोला– 'दो घूंट पीते-2 मेरी दस कीले ज़मीन खत्म हो गई, तेरी खांसी खत्म क्यों नहीं होगी?'

"टूटी खटिया शराब चलती है,
डूबी लुटिया शराब चलती है।
नंगी भूखी बीमार औरत है,
कुंवारी बिटिया शराब चलती है ॥"
"आज मजहब बन गया सबका शराब,
और है रब बन गया सबका शराब।
दौर कुछ ऐसा ज़माने में चला,
एक मतलब बन गया सबका शराब ॥"
"देश है सारा किताबी हो गया,
देश है सारा शराबी हो गया।
आचरण में शून्य फिर भी धर्म है,
धर्म कितना इंकलाबी हो गया ॥
पीजिए शराब ये भी है फैशन,

खाइए कबाब ये भी है फैशन।
ढाइए जुल्म फिर जन्नत के,
लीजिए ख्वाब ये भी है फैशन ॥
गांधी के ज्ञान में शराब बंदी है,
भारत के विधान में शराबबंदी है।
धर्म पे लड़ते हैं मरते हैं हम,
फिर भी खतरे के निशान में शराबबंदी है ॥"

जैसे हालात श्री कृष्ण जी के युग में बने थे, यदि गौर करें तो हमारे देश में भी कुछ-2 वही हालात फिर से बनते जा रहे है। आज शराब पीना Status symbol बन चुका है। कोई शादी हो, पार्टी हो, Meeting हो, Get-together हो, शराब परोसना और पीना आवश्यक होता जा रहा है। जिन समाजों और घरों के लोग शराब शब्द भी अपने मुंह पर नहीं आने देते थे, उन्हीं समाजों एवं घरों के लोग अपने हलक से नीचे उतार लेते हैं। सारे देश की चर्चा आज बेमानी है, आज जैन समाज भी इस मसले पर कटघरे में खड़ा है। साधु-संत दावा नहीं कर सकते कि मुंहपत्ती लगाने वाले भाई शराब नहीं पीते, मंदिरों में पूजा प्रक्षाल करने वाले दूध के धुले हैं। घर के बुजुर्ग ये विश्वास नहीं दिला सकते कि हमारे बेटे-पोतों का खाना-पीना शुद्ध है। जिन लोगों के घरों-दुकानों, दफ्तरों में भगवान् महावीर की तस्वीरें टंगी रहती है, गुरुओं के स्टीकर चिपके रहते हैं, उन्हीं जगहों पर शराब के प्याले खनखनाते नज़र आते हैं। इस समाज का गौरव आज खतरे में है और सबसे बड़ी चुनौती बनकर आई है मदिरा। इधर हम देख रहे हैं, उधर श्री कृष्ण भी देख रहे थे। काफी दिनों तक धर्म और समाज में सुधार का वातारण बना रहा पर यह वेग लम्बे Time तक नहीं चल सका।

कुछ यदुवंशी युवक सुहावना मौसम देख द्वारिका से बाहर Picnic मनाने चले। चले थे, तब मौसम Cloudy था, पर धीरे-2 बादल बिखर गए और गर्मी हो गई। युवकों को प्यास लगी। एक छोटा-सा परंतु साफ सुथरा सरोवर नज़र आया। वास्तव में उस सरोवर का पानी

नशीला था, मादक था। कुछ समय पूर्व श्री कृष्ण जी ने सारे शहर की फैक्ट्रियों, भट्टियों, ठेकों और अहातों से शराब उठवाई थी, उसे राज-कर्मचारी इस तालाब में उंड़ेल गए थे। यहाँ लोगों का आवागमन कम था। ये युवक भी यों ही आ गए थे। उन्होंने वह पानी पिया तो पुराने संस्कार और स्वाद जागृत हो गए। पहले तो प्यास बुझाने के लिए पिया था, फिर ज़ायका लेने के लिए, फिर नशा बढ़ाने के लिए पीया। यों छक कर पी लिया और टुन्न हो गए। खूब खरमस्तियां की। उसी नशे में घूमते-2 पहाडी पर टहलने लगे। एक शांत-एकांत गुफा में ध्यानलीन तपस्वी द्वैपायन को देख लिया तो आग बगूला हो गए। कहने लगे- ये पाखंडी साधु द्वारिका को भस्म करने की योजना बना रहा है। ये हमारा क्या नाश करेगा, हम ही इसका काम तमाम कर देते हैं। नशा तो उनके दिमाग में सवार था ही, अब तो क्रोध-प्रतिशोध भी उस उन्माद में शामिल हो गया। सबने उस तपस्वी को सताना शुरु कर दिया। थप्पड़, लात-मुक्कों से पिटाई तो की ही, पत्थर मार-2 कर घायल भी कर दिया। आसपास से लकड़ियां तोड़ तड़ातड़ मारना भी शुरु कर दिया। ऋषि काफी देर तक उस पीड़ा को चुपचाप झेलते रहे। जब जुल्म की इन्तहा हो गई तो उसने उन्हें बाज आने को कहा। फिर भी नहीं माने तो क्रोधोन्मत्त होकर शाप देने लगा— तुम्हारा नाश होगा, सत्यानाश होगा। तुम्हारा नाश अपने आप नहीं होगा, मैं तुम्हारा नाश करुंगा। केवल तुम्हारा ही नहीं, तुम्हारे पूरे खानदान का नाश करुंगा। जितने तुम्हारे हिमयती हैं, किसी को नहीं छोडूंगा। इस राक्षसी द्वारिका के वासियों का सर्वनाश न कर दूं तो मैं भी द्वैपायन नहीं। तुमने मुझे गजसुकुमाल समझ रखा है, जिसे तुम जिंदा जला दो तो भी क्षमा कर देता है। मैं तुम्हारें सारे शहर को राख बनाकर ही चैन लूंगा। दुष्टों, तुम अपने आप को समझते क्या हो। खबरदार, यहाँ से एक कदम भी इधर-उधर हुए तो।

मैं लघु पंछी उड़ने वाला पकड़ोगे पंख जला दोगे ये मत समझो
मैं नवल कली हूँ उपवन की मसलोगे धूल मिला दोगे ये मत समझो

मैं पतली दुबली दीपशिखा मारोगे फूंक बुझा दोगे ये मत समझो
मैं कच्ची मिट्टी हूँ जिसको पानी में डाल गला दोगे ये मत समझो

मैं एक प्रबल भूचाल यदि कभी भूले भटके भी आया
सारा संसार हिला दूंगा,
मैं ज्वाला मुखी भयंकरतम अनजाने में यदि फूट पड़ा कहीं
तो अग जग भस्म बना दूंगा।
मैं आंधी का अल्हड़ झौंका यदि अपनी मस्ती में आया
मिट्टी में तुम्हें मिला दूंगा,
मैं प्रलय मेघ यदि बरस पड़ा अपने पूरे पागलपन में
जल थल को एक बना दूंगा ॥

द्वैपायन ऋषि का क्रोध दावानल बनकर सबको भस्मसात् करने को तैयार बैठा था कि श्री कृष्ण जी को किसी ने जाकर सूचना दे दी कि आपके परिवार के कुछ लड़कों ने द्वैपायन ऋषि को मरणासन्न कर दिया है और वह प्रलय की भाषा बोल रहा है। श्री कृष्ण जी का माथा ठनका। फिर भी अपने भाई बलराम को लेकर चल दिए। सिर से छत्र और मुकुट उतार, नंगे पैर पैदल चलकर ऋषि के पास पहुंचे। ऋषि की स्थिति शोचनीय थी, कुछ देर का मेहमान नज़र आ रहा था। आंखें अंगारों की तरह धधक रही थी। श्री कृष्ण, बलराम दोनों भाइयों ने प्रणाम किया। कहने लगे– 'ऋषि प्रवर, ये गलती बच्चों ने कर दी, हम दोनों भाई इसे अपनी गलती मानते हैं, आप माफ कर दो।' उनकी भावनाओं तथा स्थितियों को व्यक्त करने वाला एक भजनः–

तर्जः– बेदर्दी बालमा तुमको मेरा....

क्षमा करना ऋषि हमको, क्षमा के हम भिखारी हैं।
सहिष्णु हो प्रभु तुम तो, बने हम सब पुजारी हैं ॥ टेक ॥

1. हैं हम तो भूल के पुतले, हो बक्शन-हार तुम स्वामी,
गुनहगारों में हम शामिल, क्षमा अवतार तुम स्वामी,
हो खुशबूदार तुम चंदन, भले हम तीखी आरी हैं।

2. नशे में ये सितम ढाया, ये वर्ना कर नहीं सकते,
ये जिंदा लाश हैं बैठी, भले ये मर नहीं सकते,
इन्होंने आपको मारा, ये अपने ही शिकारी हैं ॥

3. ऋषि ने मरते-2 ये, कहा माफी है दोनों को,
मेरे दिल में दया उमड़ी, सिर्फ काफी है दोनों को,
मेरे आक्रोश की भाजन, तुम्हारी नगरी सारी है ॥

4. यों कहकर प्राण तज डाले, बिलखते रह गए दोनों,
जो अपने लाडलों ने था, किया वो सह गए दोनों,
मुसीबत टालने की अब, हमें करनी तैयारी है ॥

तीर हाथ से निकल चुका था। फिर भी श्री कृष्ण जी की कर्म, शक्ति का संसार में सानी नहीं था। उन्होंने तुरंत नगरी में घोषणा करवा दी कि द्वैपायन ऋषि काल कर चुका है। वह कभी भी, किसी भी तरह का उपद्रव कर सकता है। अतः उस उपद्रव-उपसर्ग का बचाव करना हमारा फर्ज़ है। अब जिसे घर से निकल कर दीक्षा लेनी हो, वह दीक्षा ले ले। जिसे घर में ही रहना हो, वह यथाशक्ति धर्म का सहारा ले। जिससे बने, वह नकारसी-पौरुषी करे तथा अधिकाधिक घरों में आयंबिल तप की आराधना होती रहेगी तो पूरी संभावना है कि इस नगरी पर कोई प्राकृतिक या दैवीय प्रकोप नहीं होगा। नगर निवासियों के लिए यह सूचना एक झटके की तरह थी। दहशत का माहौल छा गया। अधिकतर लोगों ने आयंबिल तप की आराधना में अपनी भलाई समझी। कुछ ने दीक्षा अपनाकर दीर्घतर कल्याण-पथ चुना। उधर द्वैपायन ऋषि क्रुद्ध अवस्था में काल करके अग्निकुमार देव बना। जन्म के तुंरत बाद उसने पूर्वभव की ओर निहारा और एकदम पूर्व निदान के कारण द्वारिका-वासियों के प्रति रोष-प्रतिशोध से भर

गया। उसने निर्णय किया कि सारी द्वारिका को आग लगाकर भस्म कर दूं। उसने अग्नि-प्रकोप प्रारंभ कर दिया लेकिन आयंबिल तप के प्रभाव से नगरी का बाल भी बांका नहीं हुआ। नगर निवासियों को ये अहसास एक बार भी नहीं हुआ कि हमारे चारों ओर मौत का बवंडर मंडरा रहा है और किसी विशिष्ट पुण्य-प्रभाव से हम बचे हुए हैं। सभी लोग सदा की भांति जीवन-यात्रा को संपन्न कर रहे थे। निर्भयता और निश्चिन्तता के वातावरण में संयम-तप के प्रति पैदा हुई उत्सुकता धीरे-2 मंद पड़ने लगी और लोग भूल भी गए कि आयंबिल तप भी करना है। एक-2 व्यक्ति ने धर्मनिष्ठा के प्रतीक आयंबिल तप को छोड़ दिया और अग्नि कुमार देवता को अपना क्रूर कोप फैलाने का मौका मिल गया। एक झटके में द्वारिका में अग्नि प्रकोप प्रारंभ हो गया तथा ऊंचे-2 महल धधक उठे। हवा के तेज झौंकों ने आग की लपटों को शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला दिया। वैभव-विलास के हर सामान पर अग्नि ज्वालाएं अपनी जीभ लपलपा रही थी, लोग चीखो-पुकार कर रहे थे। कोई जान बचाने के लिए माल को जलने दे रहा था, कोई माल बचाने के चक्कर में जान गंवा रहा था। धू-धू कर जलती द्वारिका में हर आदमी बदहवास हो जीवन की क्षणभंगुर लीला का दर्शन कर रहा था, पर वैराग्य के लिए बहुत कम लोगों की मानसिकता बन पाती थी। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'**— 'तू अपना कर्म किए जा' वाले सिद्धांत को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाले श्री कृष्ण जी ने सोचा कि इतने ऊंचे महलों में लगी आग को बुझाने के लिए हमारे कुंओं, बावड़ियों का पानी पर्याप्त नहीं है। इसलिए समुद्र के पानी की मदद से आग बुझाई जाए। वे समुद्र तट पर आए, अपनी सशक्त भुजाओं के बल पर समुद्र के पानी को 60-70 मंजिले महलों पर उडेलने लगे। थोड़ी ही देर में आग बुझनी शुरू हो गई। अग्निकुमार देवता ने देखा कि आग क्यों बुझ रही है तो ध्यान आया कि श्री कृष्ण महाराज अपनी पराक्रम शक्ति से मेरी योजना को असफल कर रहे हैं तो श्री कृष्ण जी को चकमा देते हुए

उस देव ने समुद्र के उस पानी को किरोसीन के रूप में तब्दील कर दिया। आज भी Bombay High में तथा खंभात के समुद्र-तटीय क्षेत्रों में कच्चा तेल निकल रहा है। श्री कृष्ण जी उस पानी को पहले की तरह उछालते जा रहे थे। कुछ देर पहले फैंके हुए पानी से आग बुझने लगी थी पर बाद में फैंके पानी से आग और भड़कने लगी थी। श्री कृष्ण जी को अहसास हो गया कि देवशक्ति के आगे हथियार तुझे डालने ही पडेंगे। तुरंत नगरी में लौट आये। अब सोचा-अपने पूज्य माता-पिता को महलों से निकाल कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दें। भाई बलराम को साथ ले अपने माता-पिता को एक रथ में बैठाया। घोड़े भी जाम हो गए और बैल तलाश किए तो वे भी नहीं मिले। या तो अग्नि में जल मरे या इधर-उधर भाग गए। अंततः दोनों भाई रथ में घोड़ों की जगह जुत गए। रथ को अपने कंधों से खींचते-2 द्वारिका के मुख्य द्वार तक आ पहुंचे। वहां भी आग की लपटें घिरी हुई थी, दरवाज़ा कभी भी गिर सकता था। मगर उन साहसी मातृ-पितृभक्त पुत्रों ने कोई खतरा नहीं माना। उस धधकती-दहकती आग की परवाह न करते हुए रथ को गेट से बाहर खींचने लगे। बात सैकिंडों की थी। उस रथ का आधा हिस्सा गेट से बाहर पहुंचा था, आधा निकलना था कि गेट गिर गया। माता-पिता पर पत्थर पड़े तो वहीं ढेर हो गए। आग में रथ और रथ में बैठे वसुदेव-देवकी राख हो गए। कृष्ण और बलराम की जान बच गई पर शान लुट गई थी। अपने हाथों खड़ी की सल्तनत का ऐसा अनिष्ट विनाश होगा, ये ख्याल कभी सपने में भी नहीं आया था। उनके सपनों का बाग उजड़ गया था, लेकिन जीवन कभी रुकता नहीं है। इस ध्येय से दोनों भाई युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों की राजधानी पांडु मथुरा की ओर चल दिए। चलते-2 कौशाम्ब वन में पहुंच गए। सफर लंबा था, श्री कृष्ण जी भूख और थकान से बेहाल थे। ज़िंदगी भर की मेहनत ने सेहत और शरीर पर आज अपना असर दिखाना शुरु कर दिया। चलने के लिए कदम जवाब दे गए। एक वृक्ष की छाया में शिला पर लेट गए, अपना

पीताम्बर शरीर पर तान लिया। भाई बलराम से कहा– कुछ भोजन का प्रबंध आपको ही करना होगा, मैं तो आज असहाय हूँ। बड़ा भाई भोजन लेने चला गया। इधर श्री कृष्ण जी ज़िंदगी की घटनाओं का चित्रपट अपनी स्मृति में उतार रहे थे। लेटे-2 पैर थक गए। एक पैर को दूसरे पैर पर रखा ताकि कुछ थकान कम हो मगर अचानक कहीं दूर से एक तीखा तीर उनके पैर में आ लगा। श्री कृष्ण जी मारणांतिक कष्ट से कराह उठे। उठने की कोशिश की, पर उठा नहीं गया। तभी एक पुरुष वहां पहुंचा। जंगली शिकारी के रूप में जरा कुमार को देख श्री कृष्ण जी भौंचक्के रह गए। ये मेरा ही भाई है। इसने ही मुझे अपने तीर का निशाना बनाया। श्री कृष्ण जी को रोष उमड़ने लगा। जरा कुमार ने श्री कृष्ण जी को पहचाना। हाय भाई, मैं द्वारिका छोड़कर जंगल में इसलिए रह रहा था ताकि मुझे आपके वध का भागी न बनना पड़े। श्री कृष्ण जी बोले– तूने द्वारिका छोड़ दी पर शिकार जैसा दुर्व्यसन नहीं छोड़ा। पर अब ज्यादा बात करने का समय नहीं है। मैं संसार से जा रहा हूँ। बलराम जी आने वाले हैं। वे किस मिज़ाज़ के हैं तुझे पता ही है।

"मा भै जरे त्वमुत्तिष्ठ, काम एव कृतो हि मे,
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम्।"

अर्थात्ः हे जरा कुमार, अब भय छोड़ कर उठो। तुमने मेरी इच्छा पूरी कर दी। मैं तुझे अनुमति देता हूँ कि तुझे भी स्वर्ग प्राप्त हो।

सारे प्रसंगों को समेटते हुए कविता के स्वर सुनेंः

द्वैपायन अग्नि देव बना, नगरी को आन जलाया है
गिरधर ने लाखों यत्न किए, पर कुछ भी बच नहीं पाया है।
घनश्याम और बलदेव बचे, बाकी नगरी श्मशान बनी
पांडु मथुरा के लिए चले, वन में मोहन को प्यास लगी
इक तीर शिकारी का आया, कर ले गया उनके प्राण हरण
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

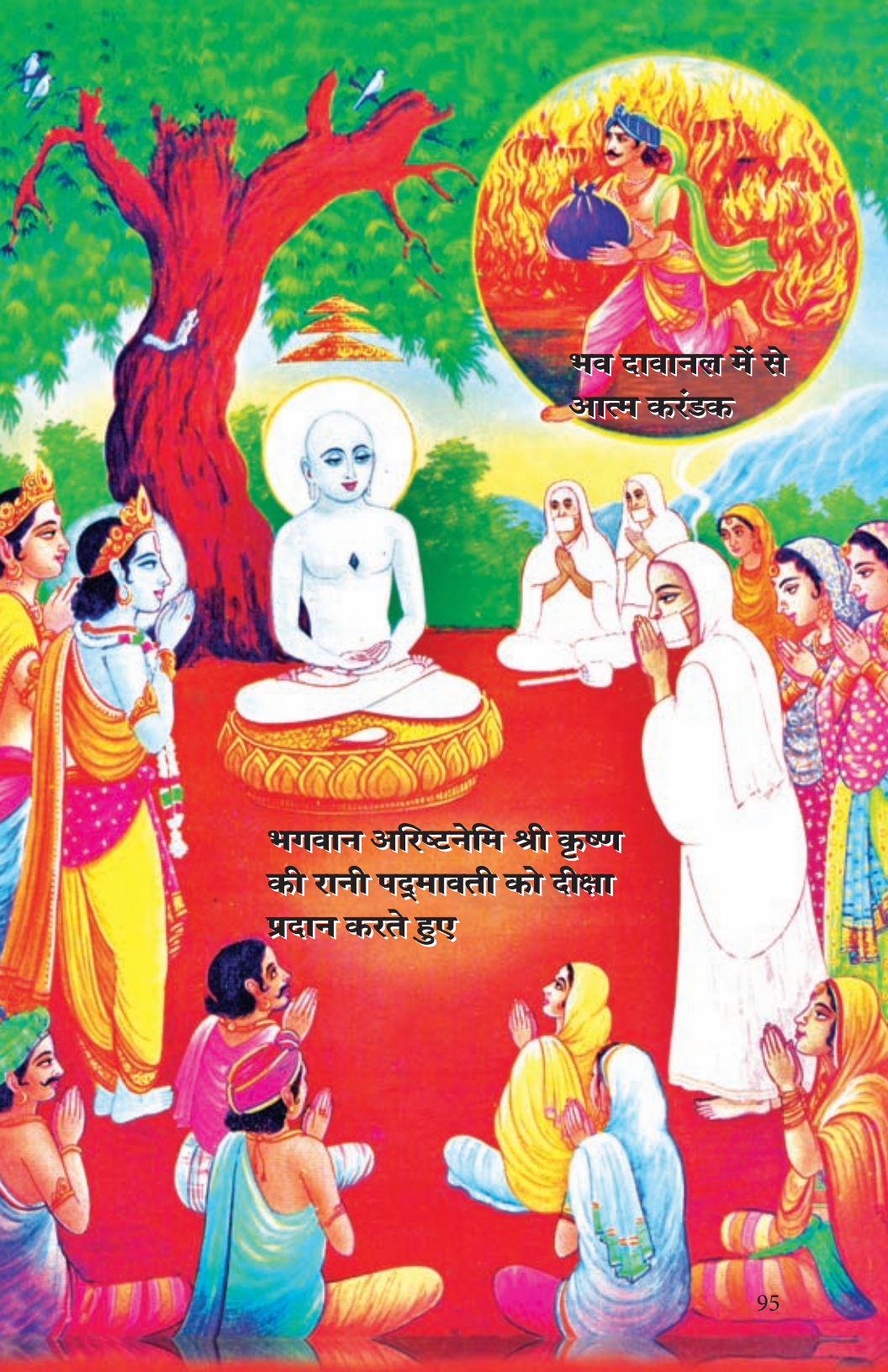

भव दावानल में से
आत्म करंडक

भगवान अरिष्टनेमि श्री कृष्ण
की रानी पद्मावती को दीक्षा
प्रदान करते हुए

कृष्ण-बलराम अपने
माता-पिता को रथ में बैठा कर
जलती हुई द्वारिका नगरी से
निकालने का प्रयास करते हुए

जरा कुमार विदा हुआ। बलराम जी को आने में देर लग गई और अकेले श्री कृष्ण जी अपनी जीवन यात्रा का समापन देख रहे थे। एक-2 अंग निष्क्रिय होता चला गया और देह निष्प्राण हो गयी। सामान्यतः मानव सृष्टि की धारणा है– हमारे जन्म के समय परिवार वाले हंसते हैं, मृत्यु के समय रोते हैं, परंतु विश्व के विलक्षण पुरुष थे– श्री कृष्ण जी, जिनके जन्म के समय परिवार तो क्या माता-पिता भी हंस नहीं सके थे और मृत्यु के समय कोई परिवार जन था ही नहीं जो कि रोता। इसीलिए तो लिखा है– **'आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय, यों कबहूँ या जीव को साथी सगो न कोय'** ॥

प्रसंग बहुत लंबा है पर हमें मुख्य बात ये याद रखनी है कि वैभव-विलास के विपुल भंडारों में भी मानव को वैराग्य का दामन नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि आत्मा के लिए तो वही अंतिम शरण है। वैभव और विलास की निःसीम दौड़ में तो व्यसन तथा विनाश ही हाथ आते हैं। अतः समझदार व्यक्ति जीवन की आखिरी सांस से पहले अपना ध्येय पा लेते हैं और नादान आदमी सब कुछ गंवा कर रोते-2 संसार से विदा होते हैं।

हम चार दिन से प्रभु अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण जी की महिमा सुन रहे थे। अब हम प्रभु महावीर के शासन की झलक लेने जा रहे हैं।

पर्यूषण पर्व बड़ी शान से संपन्न हो रहे हैं। आप सब क्षेत्रवासी धर्मध्यान में जुटे हुए हैं, हमें हार्दिक प्रसन्नता है। बाकी चार दिनों तक भी अपना उत्साह दो-गुणा चौगुणा होता जाएगा– ऐसी आशा है।

जय जिनेन्द्र!

पंचम पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– करना है मुक्ति का अभियान

आए हैं पर्यूषण जलयान, पार उतर लो भाई।
ले लो जल्दी अपना स्थान, पार उतर लो भाई ॥

1. बैठो संकोच करो मत, कोई भी सोच करो मत।
करना है जीवन का कल्याण, पार उतर लो भाई ॥

2. आगम का अद्‌भुत निर्झर, बहता है यहाँ निरन्तर।
सुस्ती छोड़ो सुनकर आह्वान, पार उतर लो भाई ॥

3. अर्जुनमाली का जीवन, पापी से बनता पावन।
करके जिनवाणी रस पान, पार उतर लो भाई ॥

4. होती है खूब पिटाई, रखते मुनिवर समाई।
होता है कर्मों का अवसान, पार उतर लो भाई ॥

5. ऋजुता मन में लानी है, सुख व शांति पानी है।
करना वीर प्रभु का ध्यान, पार उतर लो भाई ॥

6. दिन पंचम पर्यूषण का, अवसर अन्तर्शोधन का।
रखना है मात्र धर्म का ध्यान, पार उतर लो भाई ॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के छठे वर्ग के पहले तीन अध्ययनों के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

अंतिम तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एवं अपने पूज्य गुरु-भगवतों को वंदना-नमस्कार करते हुए आप सब भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र!

हमारा और आपका असीम सौभाग्य है, जो अपने पवित्रतम पर्वों की पालना धर्मध्यान और शास्त्र-वाचना के साथ कर रहे हैं। चार दिन पूरे हो चुके। आज पांचवां दिन प्रारंभ हुआ है। अंतकृद्-दशांग सूत्र में लगातार चार दिनों से 22वें तीर्थंकर तथा उनके शासनवर्ती साधु-साध्वियों का मंगलकारी विवरण हमने सुना और सुनाया। आज से हम चौबीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थवर्ती साधु-साध्वियों का वर्णन सुनेंगे और सुनाएंगे। एक सहज जिज्ञासा मन में उभरती है कि 22वें तीर्थंकर के बाद 23वें तीर्थंकर का तथा उनके अंतकृत् केवलियों का उल्लेख किए बिना ही चौबीसवें तीर्थंकर के साधु-साध्वियों का वर्णन प्रारंभ क्यों हो गया? 23वें तीर्थंकर के युग में जो मुक्ति-गामी आत्माएं हुई, उनका वर्णन इस आगम में क्यों नहीं है? एक कड़ी खिसकने से संपूर्ण चित्र में एक रिक्तता-सी अनुभव होती है। इसका समाधान पाने के लिए हमें इतिहास पर दृष्टि डालनी पड़ेगी।

ऐसी संभावना है कि इस अंतगड़ सूत्र में पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान् से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर के काल तक के अंतकृत्-केवलियों का चरित्र समाया हुआ था। अति विस्तृत पाठ होने से उनको स्मृति में सुरक्षित रखना मुनियों के लिए कठिन हो गया होगा और आहिस्ता-2 पहले 21 तीर्थंकरों के शासनवर्ती अंतकृत्-केवलियों वाला पाठ विलुप्त हो गया। और तीन तीर्थंकरों की विरासत ही बच पाई। इन तीन तीर्थंकरों की विरासत भी दो भागों में बंट गई लगती है। भगवान् महावीर के समय में तथा काफी लंबे अरसे तक बाद में भी पार्श्वनाथ प्रभु के साधु-साध्वी अवशिष्ट रहे। उनकी भावना रही होगी कि भगवान्

पार्श्वनाथ जी के मुनियों एवं साध्वियों का जीवन चरित्र सुनना हमारी बपौती है, उस पर महावीर प्रभु के मुनियों का कोई अधिकार नहीं है। भगवान् महावीर के मुनियों ने भी उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए पार्श्व प्रभु के मुनियों का जीवन चरित्र सुनाना छोड़ दिया हो। उधर पार्श्वनाथ प्रभु की संप्रदाय लुप्त हो गई तो उनके ऐतिहासिक साधु साध्वियों का इतिहास भी लुप्त हो गया हो और भगवान् महावीर के मुनियों ने अपने पास बचे दो तीर्थंकरों का इतिहास आगे बढ़ा दिया हो, जो आज भी हमारे पास है।

आज छठा वर्ग प्रारंभ हो रहा है, जिसमें 16 महापुरुषों का चरित्र गूंथा हुआ है। जिनमें से कुल तीन का तो आज तथा शेष 13 का वर्णन कल करने का भाव है। सभी सोलह मोक्षगामी आत्माओं की नामावली निम्न हैः— 1.मंकाई 2.किंकम 3.मुद्गरपाणि 4.काश्यप 5.क्षेमक 6.धृतिधर 7.कैलाश 8.हरिचंदन 9.वारत्र (या व्यारक्त) 10.सुदर्शन 11.पूर्णभद्र 12.सुमनभद्र 13.सुप्रतिष्ठ 14.मेघ 15.अतिमुक्त तथा सोलहवां राजा अलक्ष।

पहले और दूसरे अध्ययनों का सार ये है कि ये दोनों राजगृह नगर के प्रतिष्ठित सेठ थे। भगवान् महावीर के धर्मोपदेश से बोधि को प्राप्त हुए। दीक्षा लेकर उज्जवल संयम-तप से आत्मा को भावित किया तथा सोलह साल साधना में लगा विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हो गए।

आज का मुख्य वक्तव्य अर्जुनमाली के संबंध में है। उसे प्रारंभ करते हुए श्री अरविंद जी ने लिखा हैः—

अंतगड़ दशांग जी आगम का, करते हैं भाव सहित वर्णन।
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
हे जम्बू, राजगृही नगरी, थी भाग्यवान् व पुण्यशाली,
जनता महावीर की दीवानी, श्रद्धा रखती बन मतवाली,
मंकाई किंकम मुनि बने, सुन महावीर की शुभवाणी,

ग्यारह अंगों को पढ़ा संथारा करके हुए थे निर्वाणी,
अब वर्णन अर्जुनमाली का, लो सुनो सुनाएं हो के मगन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

अर्जुनमाली की ज़िंदगी सरलता-कुटिलता, क्रूरता-कोमलता, निरीहता तथा सहिष्णुता के विविध रंगों से रंगी हुई है। शराफत के ऊपर ताकत, ताकत के ऊपर दहशत, दहशत के ऊपर शैतानियत आदि के कैसे-2 खेल संसार में खेले जा सकते हैं या खेले गए हैं, ये तथ्य समझने के लिए अर्जुनमाली का वृत्तान्त पर्याप्त है।

जिस समय राजा श्रेणिक एवं महारानी चेलना अपने पूरे वैभव के साथ राजगृही में रहकर मगध का प्रशासन संभाले हुए थे, उस समय उसी नगरी में अर्जुन नामक एक माली अपनी अति सुंदर पत्नी बंधुमती के साथ जीवन-यात्रा का संचालन कर रहा था। कहने को वह भी अपनी माली बिरादरी में कुछ कम हैसियत का इंसान नहीं था, मगर हकीकत ये थी कि वह थोड़े ही संसाधनों से गुजारा कर रहा था, पर संतुष्ट था। घर में खूबसूरत और अनुकूल चलने वाली पत्नी थी, अच्छा बाग उसके पास था। उसी बाग के एक कोने में उसका खानदानी यक्षायतन अर्थात् मंदिर था। इस मंदिर में एक देव प्रतिमा थी जिसके हाथ में एक हजार पल का लोहे का मुद्गर बनाया हुआ था। आज के युग के अनुसार वह मुद्गर 56 किलोग्राम वजन का था क्योंकि 56 ग्राम से एक पल बनता है। अर्जुनमाली की दृढ़ धारणा थी कि ये देवता मेरे सुख-दुःख का साथी है। उसकी पूजा-उपासना करके इसको खुश रखना वह अपना मौलिक कर्त्तव्य समझता था। इसलिए उसने अपना रुटीन बना रखा था कि रोज़ाना बाग में फूल चुनने जाता और उनमें से जो अधिक सुन्दर और प्यारे फूल होते, उन्हें अलग छांटकर देवता की प्रतिमा के आगे चढ़ाता, फिर भूमि पर दोनों घुटने टिकाकर भाव-भक्ति के साथ प्रणाम करता। विश्व-पटल पर जहां अर्जुनमाली जैसा भद्रिक इंसान रह रहा था, वहीं

उसी नगर में, उन्हीं गली-चौराहों पर, उन्हीं हवाओं में सांस लेने वाला एक शैतानी गिरोह भी था, जिसे उस ज़माने में ललिता गोष्ठी के नाम से पहचान मिली हुई थी। उस गिरोह के आतंक से जन-जीवन संत्रस्त था। उस गिरोह में छः युवकों की टोली तो बिल्कुल निरंकुश थी। वे कुछ भी अच्छा-बुरा कर दें, राज्य प्रशासन उनके सामने पंगु था। न पुलिस उन्हें पकड़ सकती थी, न उन पर मुकदमा चल सकता था, न उन्हें सजा दी जा सकती थी क्योंकि उन्हें काफी अरसे से एक तरह की राजनयिक छूट मिली हुई थी। इन छः युवकों ने एक बार भीषण आग से राजा श्रेणिक के दो पुत्रों– हल्ल-विहल्ल को बचाया था और उन्हें ये वरदान मिल गया था कि वे कानून की गिरफ्त से बाहर रहेंगे।

आगमकारों ने अब तक हमारे सामने मुख्य-2 पात्रों का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर दिया हैः– 1. राजा श्रेणिक 2. अर्जुनमाली व उसकी पत्नी बंधुमती 3. ललिता गोष्ठी के छह गुण्डे। अब तक के प्रसंग को काव्य में सुनेंः–

श्रेणिक नृप की उस नगरी में, छः युवकों की एक टोली थी
वरदान भूप का मिला हुआ, पर पिस रही जनता भोली थी
वो हर कानून से ऊपर थे, हद से नीचे गिर सकते थे
इज्जत लूटें, उत्पात करें, पर लोग न कुछ कर सकते थे
नगरी में अर्जुनमाली था, और बंधुमती उसकी मालन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

एक बार घोषणा हुई कि कल शहर में मेला लगेगा। अर्जुनमाली ने सोचा कि मेले के मौके पर फूलों की काफी बिक्री हो सकती है इसलिए अपनी पत्नी को भी कल साथ ले लूं, ताकि अधिक से अधिक फूल चुने जा सकें और मेले में बिक सकें। इस उद्देश्य से सूर्योदय होते ही दोनों पति-पत्नी अपने बाग में फूल एकत्रित करने चल दिए। उधर ललित गोष्ठी के 6 युवक पहले ही बाग में मस्ती कर रहे थे। जब अर्जुनमाली और बंधुमती फूल चुनने में व्यस्त थे, तब उन युवकों ने

एक शरारत भरी योजना बनाई कि जब ये दोनों मंदिर में पूजा करने आएंगे, तब हम अर्जुनमाली को रस्सियों से बांध देंगे और इसकी पत्नी के साथ दुराचार करेंगे। इस योजना को पूरा करने के लिए वे छहों अर्जुनमाली से पहले ही मंदिर में जाकर दरवाज़ों के पीछे छिप गए तथा चुपचाप बैठकर अर्जुनमाली और बंधुमती की प्रतीक्षा करने लगे।

सोचा था बिकेंगे फूल खूब, नगरी में उत्सव आया है
पत्नी को साथ में लेकर के, कुछ फूल तोड़कर लाया है
वह नित्य नियम के कारण ही, कुलदेव के मंदिर जाता है
यौवन सौन्दर्य बंधुमती का दुष्टों को कुटिल बनाता है
छिप जाते मंदिर में आकर, कर रहे प्रतीक्षा हैं प्रतिक्षण
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

सरलता, श्रद्धा से भरपूर अर्जुनमाली प्रतिदिन की भांति आज भी देव मंदिर में आया, सामने दिखते ही सिर झुकाया, फिर फूल चढ़ाए। उसके पश्चात् जमीन पर घुटने रख सिर नमाने लगा। तभी छहों गुण्डे दरवाज़ों के पीछे से निकले। अर्जुनमाली को पकड़कर रस्सियों से उसके हाथ पैर बांधकर एक तरफ पटक देते हैं और बेचारी अबला बंधुमती की अस्मत के साथ खिलवाड़ करने लगते हैं।

असहाय, लाचार बंधुमती रोती रही, तड़फती रही, चीखती रही। चिल्लाते-2 अधमरी हो गई, मगर उन दरिंदों ने न रहम दिखाई न शरम। अर्जुनमाली उस अनाचार की लीला को देख-2 कर कसमसाता रहा, पैर पछाड़ता रहा, रोता और कराहता रहा। जब उसके विलाप-प्रलाप और आक्रोश का मानवों के ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा तो अन्ततः उसका गुस्सा लावा बनकर उस मंदिर के देवता पर फूट पड़ा। यदि संसार की देव शक्तियां देख रही हों तो बचाओ-2, महापाप हो रहा है, मंदिर अपवित्र हो चुका है, नारी को रौंद दिया गया है, गरीब का खून हो चुका है। हे मुद्गर-पाणि यक्ष! मैंने, मेरे पूर्वजों ने बचपन से तेरी पूजा की है, तुझ पर भरोसा टिकाया है, क्या तू भी हमें धोखा देगा, क्या इस

मुसीबत के मौके साथ नहीं देगा? चीखते-पुकारते अर्जुनमाली पागल-सा हो गया, उसकी रगों का खून उबलने लगा। अब यक्ष कहीं बाहर नहीं रहा, उसके शरीर में समा गया। वह खुद यक्ष बन गया। उसके सारे बंधन टूट गए। वह 56 किलो का मुद्‌गर उस प्रतिमा के हाथ में नहीं अपितु अर्जुनमाली के हाथों में था। वह महाकाल की मानिन्द उन आततायियों पर टूट पड़ा और छह के छह दुष्टों को उसने मौत के घाट सुला दिया, साथ ही अपनी निरूपाय पत्नी बंधुमती को भी।

पिछली घटना को श्री अरविंद जी के काव्य तथा एक स्वतंत्र भजन के माध्यम से पेश करना हैः–

सच्ची श्रद्धा से अर्जुन फिर, मंदिर के भीतर आया है
आते ही छह शैतानों ने, मुश्कों से बांध गिराया है
लाचार पति के आगे ही, पत्नी को आन दबोचा है
असहाय स्थिति में अर्जुन ने, क्या बोला क्या नहीं सोचा है
ये देव है या इक पुतला है, जो देख रहा अबला का दमन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

भजनः–

तर्जः– चांदी की दीवार न तोड़ी

जो निर्धन को निर्बल कहता, भूला वह इंसान है।
निर्धन की ताकत के पीछे छिपा हुआ भगवान् है ॥ टेक ॥

1. जो नारी की इज्जत को बाजार में बेचा करते हैं,
बनें भेड़िए और दरिंदे नहीं जरा भी डरते हैं,
कीडे पड़ जाते हैं तन में कुत्तों जैसे मरते हैं,
आंखों से अंधे होते और बहरे होते कान हैं ॥

2. अरे जालिमों, ठहरो तुमको मौत के घाट उतारुंगा,
इस मंदिर के महाकाल को सीना फाड़ पुकारुंगा,

या मैं मर जाऊंगा खुद ही या फिर तुमको मारुंगा,
आंखों से दुष्कर्म देखना कायरता अपमान है ॥

3. उठा देव का मुद्गर सातों को ही नींद सुलाया है,
मारो-2 काटो-2 प्रलय गीत यों गाया है,
उस उपवन को खून मांस से मुर्दा घाट बनाया है,
बीज ज़हर के बोने से तो सदा हुआ नुकसान है ॥

उस दिन के बाद अर्जुनमाली के शरीर में प्रविष्ट वह मुद्गरपाणि यक्ष प्रतिदिन 6 पुरुष तथा एक नारी का वध करने लगा। उसकी खून की भूख सात प्राणियों के वध से ही शांत होती थी। दिन निकलते ही उसका एक ध्येय बन जाता था कि कहीं न कहीं छः पुरुषों तथा एक नारी को मारुं। उसके लिए अब अपराधी-निरपराधी, गुनहगार-बेगुनाह, कसूरवार-बेकसूर का कोई मतलब नहीं था। उसे तो बस सरोकार था मारने से।

कुछ प्रश्न उभरते हैं ऐसे घटना-प्रसंग से। अर्जुनमाली ने अपनी पत्नी को क्यों मारा? इसका समाधान मिलेगा- उस युग की मनोवृत्ति को समझने से। कोई भी कन्या या महिला दुराचार की शिकार होने के बाद किसी लायक नहीं रहती थी। उसे न पीहर वाले संभालते थे, न ससुराल वाले। समाज उन नारियों को हीनता की दृष्टि से देखने लगता था। अधिकतर औरतें इस संताप से बचने के लिए आत्महत्या कर लेती थी या फिर परिवार वाले उसे मार डालते थे। व्यभिचार-पीड़ित नारी को वह युग दुराचारिणी मानकर अभिशप्त करार देता था। जैसे कि श्री रामचंद्रजी को पूर्णतः निर्दोष सीता को भी केवल रावण के घर में रहने मात्र से निर्वासित करना पड़ा था। लोक-मानस ही ऐसा था। जब श्री राम जैसे महान् व्यक्ति भी सीता को घर पर नहीं रख सके तो अर्जुनमाली जैसा साधारण आदमी अपनी पत्नी को घर पर कैसे रख पाता?

दूसरा प्रश्न उठता है कि अर्जुनमाली ने इतनी हत्याएं की, उसका कर्मबंध कितना गहरा हुआ होगा? इसका उत्तर ये दिया

जा सकता है कि उसने जो कुछ किया, वह आवेश की अवस्था में किया। यक्ष का आवेश था, इसलिए वह इतना हत्याकांड कर सका वर्ना अपने आप में होता तो वह इतना बड़ा जुल्म नहीं कर सकता था।

अर्जुनमाली के इस तांडव नृत्य से सामान्य आदमी दहशत में आ गया। हर तिराहे-चौराहे पर उसके प्रकोप की चर्चा होने लगी। राजा श्रेणिक को पता चला तो उसने भी पूरे नगर में घोषणा करवा दी कि कोई भी आदमी अर्जुनमाली की दिशा में न जाए क्योंकि उसके ऊपर यक्ष का असर छाया हुआ है। तथा उसके हाथ में 56 K.G. का मुद्गर है, वह किसी को भी मार सकता है। राजा श्रेणिक की इस घोषणा के बावजूद अर्जुनमाली की प्रलय कहानी का अंत नहीं आया। कोई आदमी या औरत किसी न किसी दिशा से, किसी न किसी कारण से उधर पहुंच जाता और अर्जुनमाली के मुद्गर का शिकार हो जाता।

बड़ा दहशत का माहौल था। सब चिंता में घिरे थे। निश्चिंत रहने वाले भी चिंता में वक्त गुजारने लगे। संसार में निश्चिंतता होनी ही कठिन बात है। एक सेठ जी ने एक बुद्धिमान् आदमी को नौकरी पर रख लिया। नौकर ने सेठ जी से अपना काम और वेतन पूछा तो सेठ ने कहा— मेरे दिमाग में चिंता भरी रहती है, अब ये काम तेरा है। मैं निश्चिंत रहूँगा और तेरा वेतन होगा 10 हजार रु. प्रतिमाह। सेवक ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अगले महीने नौकर अपनी तनख्वाह लेने गया तो देखा सेठ जी उदास हैं। नौकर ने मालिक से कहा— आप उदास क्यों हो, चिंता करना मेरा काम है। सेठ जी बोले— बिल्कुल ठीक है। मैं तो चिंता छोड़ चुका था पर आज तुझे देख कर चिंता हो गई कि तुझे 10 हजार की तनख्वाह कैसे दूंगा। मतलब ये कि संसार तो चिंताओं का घर है। राजगृही का भी यही हाल था।

इस भयावह स्थिति में भी आगमकार हमें ऐसी दो महान् आत्माओं का साक्षात्कार करवाते हैं। एक तो वो जो भय से मुक्त हैं, दूसरे वो जो सबको भयमुक्त करते हैं। पहली आत्मा है— सुदर्शन श्रमणोपासक, जो

जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञाता था तथा श्रावक के नियम-व्रतों से पूर्णतः ओत-प्रोत था। दूसरी महान् आत्मा थी— श्रमण भगवान् महावीर, जो अभयदयाणं तथा जियभयाणं थे। स्वयं भयविजेता होकर औरों को अभय प्रदान करने वाले थे। श्रावक सुदर्शन तो राजगृह नगर में रहता ही था, उन दिनों श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी राजगृह के गुणशील उद्यान में पधार गए। कथानक और काव्य साथ-2 चल रहे हैं:—

दैवी शक्ति व मुद्गर से, सातों को मार दिया फौरन
हर रोज़ सात के मरने पर, बुझ जाती उसकी क्रोध अगन
नगरी में हा-हाकार मचा, राजा ने सबको रोका है
मत नगरी से बाहर निकलो, मृत्यु का खेल अनोखा है
नगरी के शुभ दिन आए तो, महावीर प्रभु के पड़े चरण
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

भगवान् महावीर के पदार्पण की खबर चारों ओर फैल गई। अधिकतर जनता चाहती है कि उनके दर्शन करें, प्रवचन सुनें। उनके दर्शन-प्रवचन हमारे लोक-परलोक के लिए हितकारी और सुखकारी हैं। लेकिन प्रभु-चरणों में पहुंचने का साहस कोई नहीं कर पा रहा। सबको डर है अर्जुनमाली के मुद्गर प्रहार का। पर सेठ सुदर्शन किसी और मिट्टी का बना हुआ है। वस्तुतः जैन शासन में सुदर्शन श्रावक के नाम से दो व्यक्ति बड़े मशहूर रहे हैं और दोनों ही बड़े निडर एवं धर्म पर मर-मिटने वाले रहे हैं। एक श्रावक सुदर्शन था चंपा नगरी का रहने वाला जिसने अपने शील-धर्म के प्रभाव से शूली को सिंहासन के रूप में बदल दिया था। दूसरा दृढ़धर्मी श्रावक है यही राजगृह का रहने वाला सुदर्शन, जिसे जैसे ही प्रभु के आगमन की सूचना मिली, वैसे ही उनके दर्शनों की प्रबल उत्कण्ठा जाग उठी। फिर भी वह अपने पिता एवं माता जी की आज्ञा लेना ज़रूरी समझता था। इसलिए घर आकर कहने लगा— 'हे माता जी, पिताजी! मैं भगवान् महावीर के दर्शन करने जाना चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।' माता-पिता

कहने लगे– 'पुत्र, तुम प्रभु महावीर को वंदना करने वहां मत जाओ, बल्कि यहीं बैठे-2 उन्हें वंदना-नमस्कार कर लो। यदि उधर जाओगे तो तुम्हारी ज़िंदगी को खतरा है।' लेकिन सुदर्शन सेठ का मन नहीं माना। कहने लगा कि ऐसे कैसे संभव है कि प्रभु हमारी नगरी में आए हों और हम घर बैठे-2 ही उनको वंदना कर लें। मेरी भावना तो यही है कि मुझे उद्यान में पहुंचकर प्रत्यक्ष रूप से प्रभु को वंदना करनी चाहिए तथा प्रवचन सुनना चाहिए। जहां तक अर्जुनमाली के प्रकोप की बात है, ये मेरा पक्का विश्वास है कि तीर्थंकर भगवन्तों के शरणे से हर प्रकार की ईति भीति दूर हो जाती है। श्रावक की भावना को प्रकट करते हुए भजन की चंद पंक्तियांः–

तर्जः– चलो बुलावा आया है, माता ने बुलाया है।

आज बहारें छाई हैं, नई सदाएं[1] आई हैं,
वीर प्रभु ने अपनी नगरी आकर धन्य बनाई है ॥ टेक ॥

1. आंखें तरस गई दर्शन को बार-2 अकुलाती थी,
वीर-2 रट नाम प्रभु का जुबां बंद हो जाती थी,
टूट रही सांसों की माला मुश्किल बचने पाई है ॥

2. अभयदयाणं सरण-दयाणं जियभयाणं आए हैं,
फिर क्यों माता-पिता आपके मुखमंडल कुम्हलाए हैं,
रोम-2 की कली खिली है ऐसी रुत मुस्काई है ॥

3. है विश्वास हमें भगवन् पर उनकी वाणी दर्शन पर,
आत्म तत्त्व पर अडिग भरोसा श्रद्धा है अपने मन पर,
आज्ञा दे दो हंसकर मैय्या कसम आपकी खाई है ॥

4. आप सरीखे विज्ञ पिता भी अगर हौंसला छोड़ेंगे,
कैसे नगर निवासी अपनी घेरे बंदी तोड़ेंगे,
सब दुःख भंजन संकट मोचन प्रभु की शरण सहाई है ॥

---

1 ध्वनियाँ

सेठ सुदर्शन के माता-पिता अपने पुत्र की विशुद्ध प्रभु-भक्ति से परिचित भी हैं, प्रभावित भी हैं। उन्हें अहसास है कि ऐसे धर्मनिष्ठ युवक के आगे बाधा और कष्ट टिक नहीं सकते, पर मन में एक आशंका बनी हुई थी कि कुछ अनिष्ट न हो जाए। इसलिए न चाहते हुए भी उसे भगवान् के दर्शनार्थ जाने की अनुमति दे दी। सेठ सुदर्शन स्नानादि आवश्यक कार्यों को संपन्न कर अकेला ही, पैदल रूप में भगवान् की वंदना करने चला। गुणशील उद्यान में पहुंचने के लिए मुद्गर-पाणि का मंदिर रस्ते में पड़ता था। जब सुदर्शन उस मंदिर के बगल से जा रहा था, तब अर्जुनमाली ने अथवा यों कहिए कि मुद्गरपाणि यक्ष ने उसे देख लिया। बंधुमती की घटना के दिन से आज तक अर्जुनमाली और मुद्गर-पाणि यक्ष दो नहीं रह गए थे। वे एकमेक रूप से व्यवहार कर रहे थे। आगमकार भी कभी अर्जुनमाली शब्द का प्रयोग करते हैं तो कभी मुद्गरपाणि यक्ष शब्द का। यों ये दोनों अलग नहीं रह गए थे। मुद्गरपाणि ने आज फिर एक पुरुष को देखा तो आग-बबूला हो गया। उसे हर पुरुष दुराचारी, दुष्ट, अथवा बलात्कारी नज़र आता था तथा हर नारी व्यभिचारिणी। उन सबका इलाज उसके पास था— मुद्गर। जब तक इन दुष्टों पर मुद्गर नहीं पड़ेगा, तब तक ये सदाचारी नहीं बनेंगे। इसी सोच में यक्ष ने 56 किलोग्राम का मुद्गर उठाया और सुदर्शन श्रावक को समाप्त करने के लिए दौड़ा। सुदर्शन श्रावक ने भी मुद्गरपाणि को अपनी ओर लपकते देखा। लेकिन मन में भय, घबराहट, बेचैनी और हड़बड़ाहट नहीं आने दी। बिल्कुल शांत और संतुलित भाव में अपने आप को ले आया।

सर्वप्रथम उसने अपने दुपट्टे के छोर से ज़मीन को साफ किया। फिर सिद्धों को सभक्ति नमस्कार किया। तत्पश्चात् भगवान् महावीर को वंदना करके कहने लगा— 'हे प्रभो! मैंने आपके सान्निध्य में श्रावक के व्रतों का प्रत्याख्यान करते हुए स्थूल-2 पापों का नियम लिया था, लेकिन इस समय मैं सब पापों का स्थूल तथा सूक्ष्म— सभी स्तरों पर प्रत्याख्यान करता हूँ तथा चारों प्रकार के आहार का भी त्याग करता

हूँ। ये मारणांतिक कष्ट यदि छूट गया तो मैं पारणा कर लूंगा और सामान्य गृहस्थ जीवन चलाता रहूँगा। यदि यह उपसर्ग नहीं टला तो मेरा त्याग-प्रत्याख्यान चालू रहेगा।' इस प्रकार सागारी-संथारा ग्रहण कर लिया। किसी भी धर्मदृष्टि-संपन्न इंसान की सबसे बड़ी पहचान ये होती है कि संकट काल में भी उसका मानसिक संतुलन डगमगाता नहीं है। जीवन-मृत्यु की विकराल घड़ियों में अपने में स्थित हो जाने की कला जिसे प्राप्त हो जाती है, वह सच्चा धर्मात्मा है, सच्चा श्रावक है तथा वही सच्चा साधु है। सुदर्शन श्रावक में सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा हुई थी, इसलिए उसने उस मौके अपने को विचलित नहीं होने दिया।

"जीना मरना एक है जिसको जरा भी ज्ञान है,
ये इधर का मर्तबा है वो उधर की शान है ॥"

मुद्गरपाणि यक्ष अपने मुद्गर को लहराता हुआ श्रमणोपासक की तरफ आ रहा था। उसे ख्याल था कि यह शख्स मुझे देखते ही रोएगा, गिड़गिड़ाएगा, भागने की कोशिश करेगा या भय के मारे ज़मीन पर गिर जाएगा। लेकिन यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ। उस यक्ष का तेज प्रभावहीन हो गया। अब वह और निकट आया तथा ध्यानस्थ श्रावक के चक्कर काटने लगा। ये भी आश्चर्य की बात है कि एक दृढ़-निश्चयी श्रावक के सामने देव शक्ति को चक्कर काटने पड़े। उसे हल्की सी उम्मीद थी कि जैसे ही मैं निकट जाऊंगा, वैसे ही इसके दम खुश्क हो जाएंगे और यह आदमी ज़मीन सूंघने लगेगा। पर अब तक भी सुदर्शन सेठ के मन में कंपन पैदा नहीं हुआ। फिर तो उस यक्ष को श्रावक के सामने आकर खड़ा होना पड़ा। उसकी नज़र से नज़र मिलाने की कोशिश की, ये सोच कर कि शायद आंखों की क्रूरता देख कर ही यह डर जाए। मगर श्रावक तो फिर भी अप्रभावित ही रहा। देव-शक्ति कब तक टिकती? वह देवता वहां से रफूचक्कर हो गया, साथ ही अपना मुद्गर भी ले गया। रह गया अर्जुनमाली। वह इतने दिनों से आवेश की स्थिति में था, उस आवेश के हटते ही उसका

शरीर निढाल हो गया और वह धड़ाम से ज़मीन पर गिर गया। उम्मीद तो ये थी कि सेठ सुदर्शन ज़मीन पर लुढ़क जाएगा। पर हुआ उल्टा ही। अर्जुनमाली ही ज़मीन पर लुढ़क गया। उपसर्ग टलने से श्रावक सुदर्शन निश्चिंत हो गया।

सुदर्शन श्रावक संसार की Positive ऊर्जा का प्रतीक है। यों तो विश्व में Negative Energy की भी कमी नहीं है। उन्हीं Negative Elements के कारण एक शरीफ आदमी घोर हत्यारा बन गया। वह बिल्कुल सामान्य स्तर का इंसान था। उसे हैवान, शैतान बनाने में उन नकारात्मक तत्त्वों का हाथ रहा, जिन्होंने समाज, परिवार तथा मानवता के हर मूल्य को बेरहमी से कुचल डाला था। जितना भीषण हत्याकाण्ड 5-6 महीने राजगृही में चला, उसके पीछे अकेला अर्जुनमाली या शूलपाणि ही जिम्मेदार नहीं थे अपितु ललिता गोष्ठी के छह गुंडे भी जिम्मेदार थे। इस नकारात्मक ताकत को निरस्त करने वाली सकारात्मक शक्ति के पुंज श्रावक सुदर्शन ने एक चमत्कार ही कर दिया। उसने निराशा का गहन अंधकार एकदम छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने अर्जुनमाली के शरीर से यक्ष को हटा दिया, राजगृही पर मंडराए दहशत के बादलों को भी तितर-बितर कर दिया।

जैसे ही अर्जुनमाली को होश आया, उसने अपने सामने सुदर्शन श्रावक को देखा। पुराना कोई परिचय नहीं था, इसलिए पूछ लिया कि आप कौन हैं तथा आपको कहाँ जाना है? बड़े प्रेम के साथ श्रावक ने कहा– 'मेरा नाम सुदर्शन है। मैं भगवान् महावीर स्वामी का श्रावक हूँ तथा अब उन्हें ही वंदना करने चला था कि आपसे मुलाकात हो गई।' अर्जुनमाली ने पहले भगवान् महावीर के विषय में सुना था, पर कभी दर्शनों का मौका नहीं मिला था। जैसे ही सुदर्शन श्रावक ने भगवान् का जिक्र किया, उसकी भावना जागृत हो गई और कहने लगा- मेरी भी इच्छा है कि प्रभु महावीर के चरणों की वंदना करुं तथा पास बैठकर उनकी उपासना भी करुं। सुदर्शन श्रावक तो पूर्णतः तैयार था, बोला– 'जैसी आपकी इच्छा।' सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली के साथ

गुणशील बाग में भगवान् को वंदना करने चला। दोनों ने भगवान् को वंदना की। भगवान् ने दोनों को ही आत्मानुभूति-परक ज्ञान का पान कराया। भगवान् तो जीवन संशोधन का पाठ पढ़ाते हैं। लेकिन पढ़ते वही हैं, जिन्हें स्वयं को बदलना है। जो बदलना ही नहीं चाहते, उनके लिए भगवान् भी बेकार हैं।

एक सेठ के तीन लड़के थे। उनमें से एक पागल हो गया। इलाज करवाया, पर सफलता नहीं मिली। किसी ने बताया कि शहर में एक संत आए हैं, वे ठीक कर सकते हैं। सेठ संत के चरणों में गया, समस्या बताई कि लड़का पागल है। आप दया कर दो तो ठीक हो जाएगा। आपका बड़ा अहसान मानूंगा। संत बड़े सरल थे। कहने लगे— 'सेठ! तू बेईमानी का धंधा छोड़ दे। शुद्ध कमाई से पुण्य बढ़ेगा और तेरा बेटा ठीक हो सकता है। सेठ बोला— महाराज, इसकी बजाय तो आप भले मेरे दो और बच्चों को पागल कर दो, पर मैं ये धंधा नहीं छोड़ सकता। जब इस तरह का संकल्प हो, तो भगवान् क्या कर सकते हैं।

सुदर्शन श्रावक भगवान् का पुराना उपासक था। वह जानता था कि भगवान् जीवन का परिमार्जन करने की विविध विधियां बताते हैं। श्रावक और साधु-धर्म की मर्यादाएं समझाते हैं। वह अपने श्रावक जीवन के निर्वाह में संतुष्ट था। इसलिए धर्मकथा सुनकर अपने घर वापस लौट आया। लेकिन अर्जुनमाली के लिए तो केवल एक ही मार्ग था— वह मुनि बनने की सोच रहा था। लेकिन वह विचार करने लगा— क्या मैं संयम के महामार्ग पर चलने का अधिकारी हूँ। मैं तो महापापी हूँ, हत्यारा हूँ। सैकडों-हजारों निर्दोष लोगों का कातिल हूँ। उसे रह-रह कर पिछली घटनाएं याद आती हैं। कुछ यादें साफ-2 हैं, कुछ धुंधली-2 हैं, कुछ उसे बिल्कुल याद नहीं है। क्या मेरा उद्धार हो सकता है? क्या मेरे गुनाह माफ हो सकते हैं? क्या मेरे पापों का निस्तारा संभव है। अन्ततः वह भगवान् के चरणों में खड़ा होकर अपनी मनोव्यथा को उंडेल देता है।

तर्जः– माता त्रिशला के प्यारे गुणी नंदना...

मेरा जीवन बना कितना खूंखार है,
वीर तेरे सिवा कौन आधार है ॥ टेक ॥

1. सारी नगरी जलाई मेरी आग ने,
जहर उगला प्रबल क्रोध के नाग ने,
शेष बिल्कुल नहीं प्रेम और प्यार है ॥

2. देखकर दुष्ट पुरुषों के दुष्कर्म को,
भूल बैठा मैं शांति तथा धर्म को,
काल बनकर किया सबका संहार है ॥

3. होश इतना नहीं मैंने क्या-2 किया,
रम्य उपवन को मरघट बना है दिया,
अस्थियों के शिखर खून की धार है ॥

4. अपने ही पाप कैसे बताऊं प्रभो,
जानते हो सभी क्या छिपाऊं प्रभो,
मेरा मन हर तरह से ही लाचार है ॥

5. बक्श दो और गले से लगा लो मुझे
गिर रहा गर्त में अब बचा लो मुझे,
जीत में बदल सकती मेरी हार है ॥

भगवान् महावीर जानते हैं कि अर्जुनमाली का अन्तर्मन इतना दूषित नहीं है, जितना कि ऊपर से दिख रहा है। हिंसा और आतंक इसकी मूल प्रकृति नहीं है। परिस्थितियों ने इसे इस मुकाम पर पहुंचा दिया है। अब भी इसकी आत्मा शांति के लिए लालायित है। इसने हिंसा की है– शरीर के स्तर पर। मन के स्तर पर इसने वास्तविक और काल्पनिक अपराधियों को ही दण्ड दिया है तथा आत्मा के स्तर पर इसमें दोष-परिमार्जन की अधिक क्षमता है। अतः इसे अहिंसा का उत्कृष्ट स्वरूप मिलना ही चाहिए। इसे महाव्रतों की सौगात देनी ही

चाहिए। भगवान् ने उसे ठुकराया नहीं, झिड़का नहीं, दुत्कारा नहीं, फटकारा नहीं अपितु हर साधना के इच्छुक की तरह ही अपने संघ में शामिल करने को तैयार हो गए।

उन्होंने अर्जुनमाली की निराशा का समाधान करते हुए जो कहा होगा उसको भी एक भजन के रूप में गाने का मन हैः—

भजनः—

तर्जः— जहां डाल-2 पर सोने की चिड़िया

जहां धर्म, नहीं पाप वहां है, नहीं दुःख ताप वहां पर,
है धर्म सुखों का सागर
जहां सूर्य हो अंधकार का, नहीं वहां रहता डर ॥ टेक ॥

1. पाप तभी तक शक्तिशाली है जब तक न हो ज्ञानोदय,
ज्ञान क्रिया आ जाएं तो फिर सकल पाप का हो क्षय,
नींद टूटने पर सपनों का छिन्न भिन्न हो चक्कर ॥

2. औषध मिल जाए तो रोग का खतरा टल जाता है,
फार्मूले से कठिन प्रश्न भी शीघ्र हो हल जाता है,
अर्जुनमाली मत घबराओ संयम ले लो सत्वर ॥

3. तुम अतीत में क्या थे, छोड़ो भूतकाल की बातें,
वर्तमान को सुदंर कर लो भूल के काली रातें,
आने वाला वक्त तुम्हारा सुंदर है अति सुंदर ॥

4. देव गुरु और धर्म का शरणा मिला उसे क्या चिन्ता,
मन तक रहता मैल परंतु निर्मल होती आत्मा
आत्म तत्त्व को पहचानों तुम उड़ो लगा कर दो पर ॥

भगवान् का सान्निध्य ही ऐसा था कि किसी पतित आत्मा को अपने ऊपर अविश्वास ही नहीं रहता था। हर आत्मा ये मानने लगती थी कि मैं भी इन जैसा वैभव प्राप्त कर सकती हूँ। अर्जुनमाली ने प्रभु

से यही कहा— 'प्रभो, मुझे आपकी हर बात सही जंच रही है। आपके शब्दों ने मेरे मन पर जादू कर दिया है, मेरा तन-मन आपके उपदेशों पर चलने को आतुर हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप मुझे भी महाव्रतों की शिक्षा दो।' भगवान् ने फरमाया— अर्जुन, जैसी तेरी आत्मा की तैयारी हो। अर्जुन ईशान-कोण में गया, पंचमुष्टि लोच करके भगवान् के चरणों में उपस्थित हो गया। भगवान् ने उसे पांच महाव्रतों का तोहफा दिया। दीक्षा ग्रहण करते ही अर्जुन मुनि ने भगवान् से विनती की कि प्रभो, आपकी आज्ञानुसार मैं बेले-2 की निरंतर तपस्या करना चाहता हूँ। भगवान् की अनुमति पाकर अर्जुन मुनि ने अपने अभिग्रह और संकल्प को फौलादी बना लिया। अर्जुन शब्द बड़ा प्यारा शब्द है। महाभारत में श्री कृष्ण का प्रिय सखा, प्रिय शिष्य अर्जुन है। श्री कृष्ण को युद्ध में यदि किसी की ताकत, शक्ति और भक्ति पर भरोसा है तो वह अर्जुन की शक्ति और भक्ति है। भगवान् महावीर को भी पूरा भरोसा है अर्जुन मुनि की भक्ति और सहनशक्ति के ऊपर। उन्हें पता है— ये कभी भी साधना के संग्राम से पीछे नहीं हटेगा। संस्कृत भाषा में सीधे, सरल और ऊंचे सफेदे के पेड़ (यूकेलिप्टस) को अर्जुन कहते हैं। जिसमें कोई टेढ़ापन न हो, मोड़-तोड़ न हो, ऐसे वृक्ष को अर्जुन कहते हैं। सरलता और ऊंचाई इस वृक्ष की उल्लेखनीय विशेषता होती है। ऐसे ही अर्जुनमाली के हृदय की सरलता एवं भावों की उच्चता आगमों में उल्लेखनीय बताई है। अर्जुन वृक्ष की छाल Heart के रोगियों के लिए फायदेमंद मानी जाती है। अर्जुन अणगार की तपस्या भी साधकों को Inspiration और Strength देती है। अर्जुन शब्द का एक और अर्थ है— श्वेत रंग। **'वलक्षो धवलोऽर्जुनः'**— 'जिस रंग में कोई दाग न हो, कालिख न हो, उस रंग को अर्जुन कहते हैं।' जैसे शुक्ल-लेश्या उत्कृष्ट लेश्या तथा शुक्ल-ध्यान उत्कृष्ट ध्यान माना जाता है, वैसे ही अर्जुन मुनि उत्कृष्ट साधक बन चुके थे। अर्जुन शब्द की व्याख्या चली तो आओ स्वर्ण अर्जुन की चर्चा भी हो जाए। White Gold या Platinum को स्वर्ण अर्जुन कहा जाता है, जिसकी कीमत

Gold से काफी ज़्यादा होती है। यदि सहिष्णुता, समता और शांति की दृष्टि से देखें तो अर्जुन अणगार अन्य श्रेष्ठ मुनियों से भी ज्यादा सक्षम प्रतीत होते हैं। उनके कठिन तप की स्तुति में लिखा है:—

शुद्ध भाव से दीक्षा लेकर बेले-2 तप करते हैं
भिक्षा हेतु नगर में जाते, तिरस्कार को सहते हैं
छः महीने तक जन-2 से, अपमानित पीड़ित होते हैं
प्रायश्चित्त पावन गंगा में, पाप पंक सब धोते हैं।
मोक्ष लक्ष्मी पा जाते सच्चे प्रायश्चित्त के कारण
जिनवाणी के सुनने से ही भव-2 के कट जाते बंधन ॥

भगवान् महावीर कुछ दिन राजगृह में विराजमान रहे और अर्जुन मुनि की प्रगति को देखते रहे। अर्जुन मुनि दो दिन तक तपस्या करके तीसरे दिन पारणे के लिए नगरी में गए तो लोगों ने उन्हें पहचान लिया। उन्हें पहचानते ही चारों तरफ हल्ला मच गया। काफी लोग इकट्ठे हो गए। 5-6 महीने से लोगों में जो गुस्सा दबा पड़ा था, वह एकदम फूट पड़ा। मुनि को थप्पड़ों, मुक्कों, डंडों, पत्थरों से मारने लगे, गालियां देने लगे। कोई कहता है— इसने मेरी माँ का कत्ल किया है। दूसरा कहता है— इस दुष्ट ने मेरे पिता को मार डाला, अगला बोलता है— इसने मेरे भाई और बहन को खत्म कर दिया। कोई अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु का नाम लेता है तो कोई अपने स्वजन-परिजन का। अर्जुन मुनि मार-पीट सहन कर रहे हैं, गाली-अपमान झेल रहे हैं, पर क्या मज़ाल मन में किसी के प्रति हल्का-सा भी दुर्भाव लेकर आए हों। शांत-समाधिस्थ होकर देखते रहे। उन्होंने अंदर ही अंदर अपने को शरीर से अलग कर लिया था। जो चोट पड़ रही थी, वह शरीर पर पड़ रही थी और वे शरीर से अलग आत्मा थे। जो तीखे-कड़वे शब्द थे, वे कानों के स्तर पर जा रहे थे। उनके अन्तर्जगत् तक उन शब्दों का प्रवेश नहीं हो रहा था। अपने बचाव के लिए किसी के आगे गिड़गिड़ाए नहीं, अपना स्पष्टीकरण भी नहीं दिया। बचने के लिए इधर

उधर नहीं हुए। इस प्रक्रिया में आहार मिला तो पानी नहीं मिला, पानी मिला तो आहार नहीं मिला। जो मिला, उसमें भी काफ़ी-कुछ बिखर जाता। पर अब तो अर्जुन अणगार पहले वाले अर्जुनमाली नहीं रह गए थे। अब उन्हें अपना लक्ष्य ही नज़र आ रहा था, और कुछ दिख ही नहीं रहा था। गुरु द्रोण जब अपने शिष्यों की धनुर्वेद की परीक्षा ले रहे थे, तब उन्होंने पूछा था— उस पेड़ की ओर देखो, वहां तुम्हें क्या नज़र आ रहा है, जिस पर तुम्हें निशाना साधना है। सभी विद्यार्थी कहते हैं— 'हमें चिड़िया की आंख के अलावा वृक्ष की शाखाएं, पूरा पेड़, आकाश तथा आकाश में उड़ते पक्षी भी दिखाई दे रहे हैं।' गुरु ने सबको Reject कर दिया। कह दिया कि तुम सही निशाना नहीं लगा सकते। लेकिन जब अर्जुन की बारी आई तो उसने गुरुदेव से कहा— इस समय चिड़िया की आंख ही दिखाई दे रही है। मेरे लिए पूरे वातावरण में अपने निशाने के अलावा कुछ है ही नहीं। गुरु ने कहा— छोड़ो तीर। अर्जुन का तीर सीधे लक्ष्य पर लगा। यही लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता अर्जुन अणगार में थी। न उनका मारपीट करने वालों की तरफ ध्यान था, न स्तुति करने वालों की तरफ, न अपने पिछले जीवन की तरफ तथा न शरीर की अनुकूलता— प्रतिकूलताओं की तरफ। भगवान् ने जब ये देख लिया कि अर्जुन मुनि अपने मार्ग पर परिपक्व होकर चल रहा है, इसके मन में कोई कंपन शेष नहीं है तो भगवान् वहां से विहार कर गए। अर्जुन मुनि राजगृह में ही रहकर अपनी परीक्षा देते रहे। महान् साधना के धनी उस महामुनि को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए गुरुदेवों ने लिखा है:—

भजनः—

तर्जः— महावीर जग स्वामी तुमको...

धन्य अर्जुन अणगार, तुमको लाखों प्रणाम ॥ टेक ॥

1. भक्ति का जब कांटा बदला, जीवन का सब नक्शा बदला,
हे क्षमाधर्म अवतार, तुमको लाखों प्रणाम ॥

2. बेले-2 तप हैं करते, भिक्षा खातिर घर-2 फिरते,
सहते गाली मार, तुमको लाखों प्रणाम ॥

3. मूरख जाने ये ढोंगी हैं, ज्ञानी समझे ये योगी हैं,
सबके अलग विचार, तुमको लाखों प्रणाम ॥

4. छह महीने में कर्म खपाए, प्रभु से पहले सिद्ध कहाए,
पाया मुक्ति द्वार, तुमको लाखों प्रणाम ॥

5. हिंसा हारी, जीती अहिंसा, अर्जुन मुनि की दिव्य तितिक्षा,
बनी विश्व आधार, तुमको लाखों प्रणाम ॥

जैसे हमारे गुरुदेव अर्जुन मुनि की महानता को नमस्कार कर रहे हैं, आओ हम भी अपने ढंग से नमस्कार करें। यहाँ नमस्कार का अर्थ सिर झुकाना ही नहीं है। अपने जीवन में कुछ न कुछ त्याग-प्रत्याख्यान ग्रहण करना भी है। आओ, अर्जुन मुनि की स्मृति में कुछ नए संकल्प जीवन में धारण करें। जो भाई-बहन प्रतिदिन सामायिक नहीं करते, वे जीवन-पर्यंत के लिए या एक साल के लिए या छः महीने के लिए अवश्य सामायिक करने का नियम ले। सामायिक से हमारी आत्मा में समता-भाव पैदा होगा। सामान्य बोली में कहें तो जीवन में 'समाई' आएगी। सामायिक हमारी सबसे बड़ी पूंजी है। तीर्थंकर भगवान् हमें ये तोहफा देकर गए हैं। हमारी ओर से भी उनके चरणों में ये चढ़ावा है। जो भाई-बहन सामायिक करते हैं, वे प्रतिक्रमण याद करें, 25 बोल का स्तोक याद करें, भक्तामर या और कोई स्तोत्र याद करें। रात्रि-भोजन त्याग करने की भावना बनाएं। बड़े-2 नियम न हो सकें, तो अपनी क्षमता के अनुसार छोटे-2 नियम लिए जा सकते हैं। इन नियमों के अलावा जीवन में ऊंचे संस्कारों के प्रति भी जागरूक रहने की आवश्यकता है। खास तौर पर हम संकल्प करें कि हम नारी जाति के प्रति सम्मान का भाव रखेंगे। किसी की बहू-बेटी को देखकर मन में दुर्विचार नहीं आने देंगे। न आंखों में बुराई आने देंगे तथा न ही दिल में।

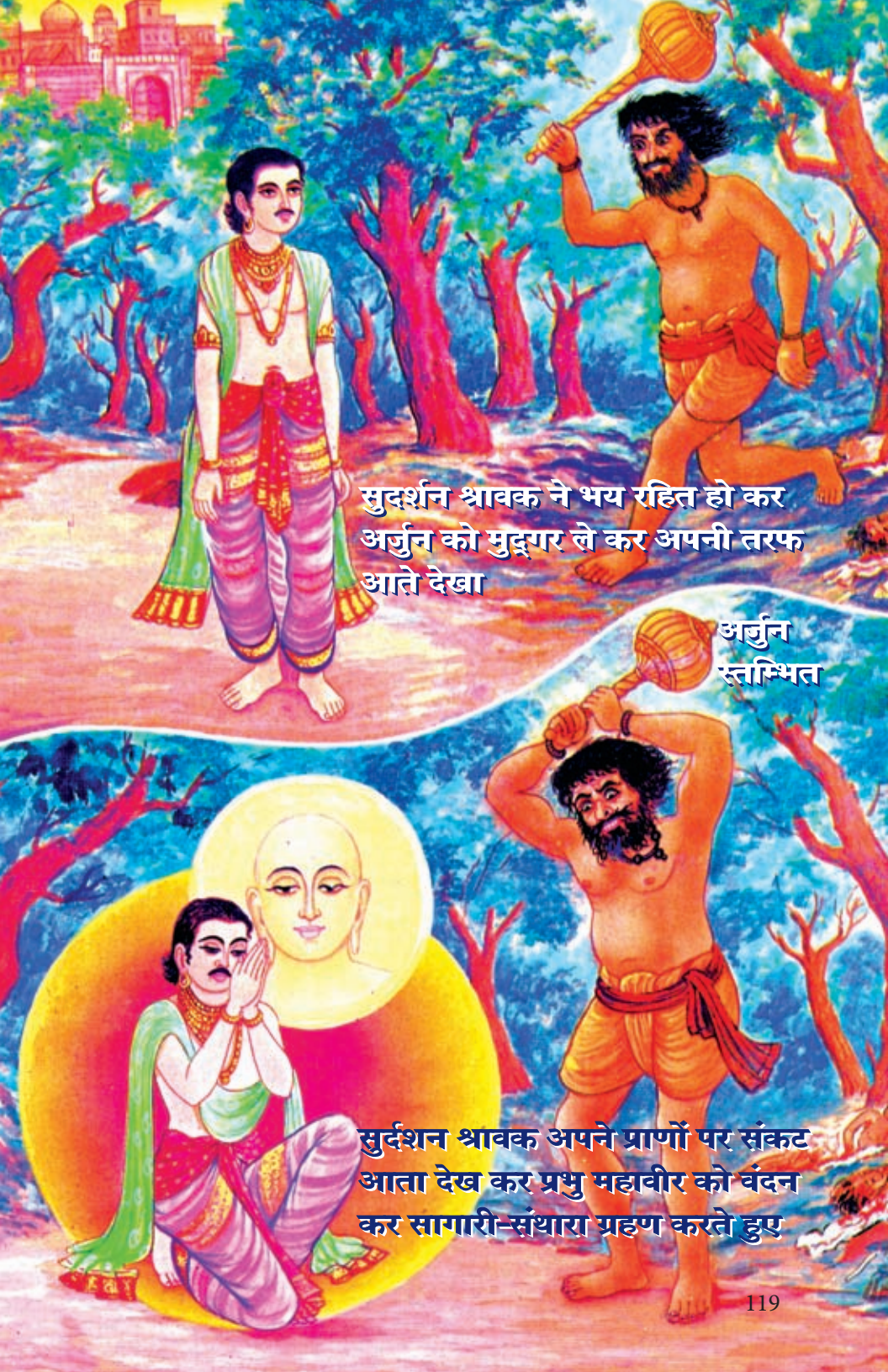

सुदर्शन श्रावक ने भय रहित हो कर
अर्जुन को मुद्गर ले कर अपनी तरफ
आते देखा

अर्जुन
स्तम्भित

सुर्दशन श्रावक अपने प्राणों पर संकट
आता देख कर प्रभु महावीर को वंदन
कर सागारी-संथारा ग्रहण करते हुए

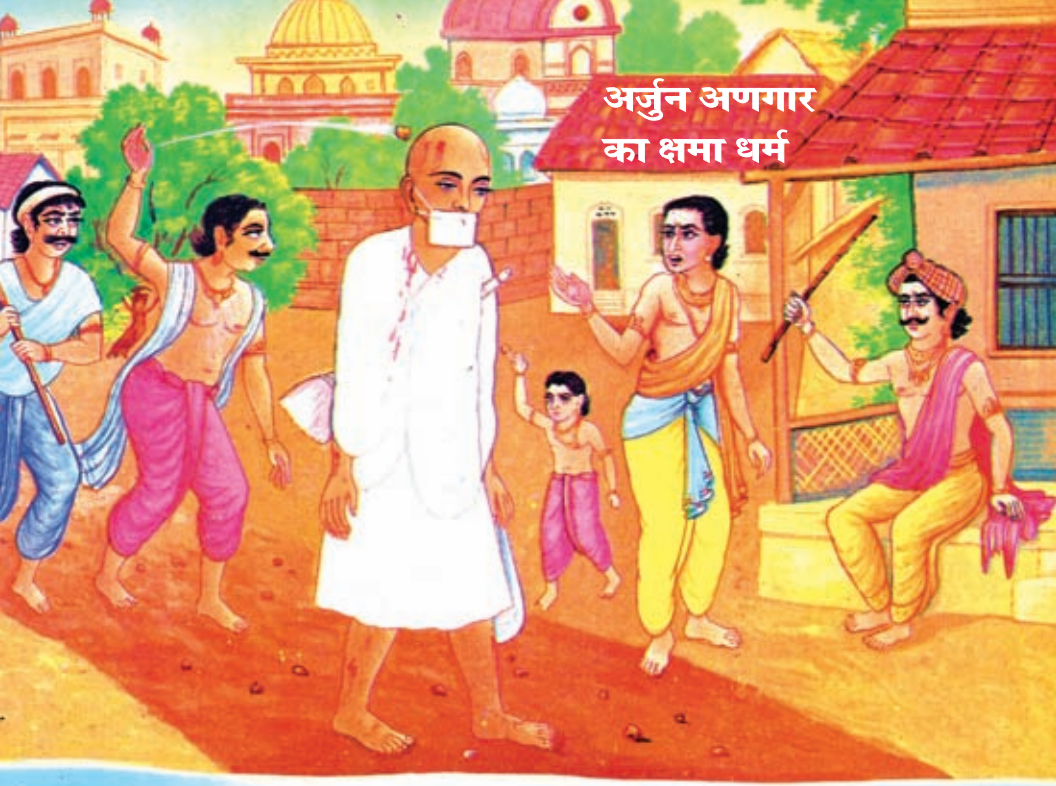

अर्जुन अणगार
का क्षमा धर्म

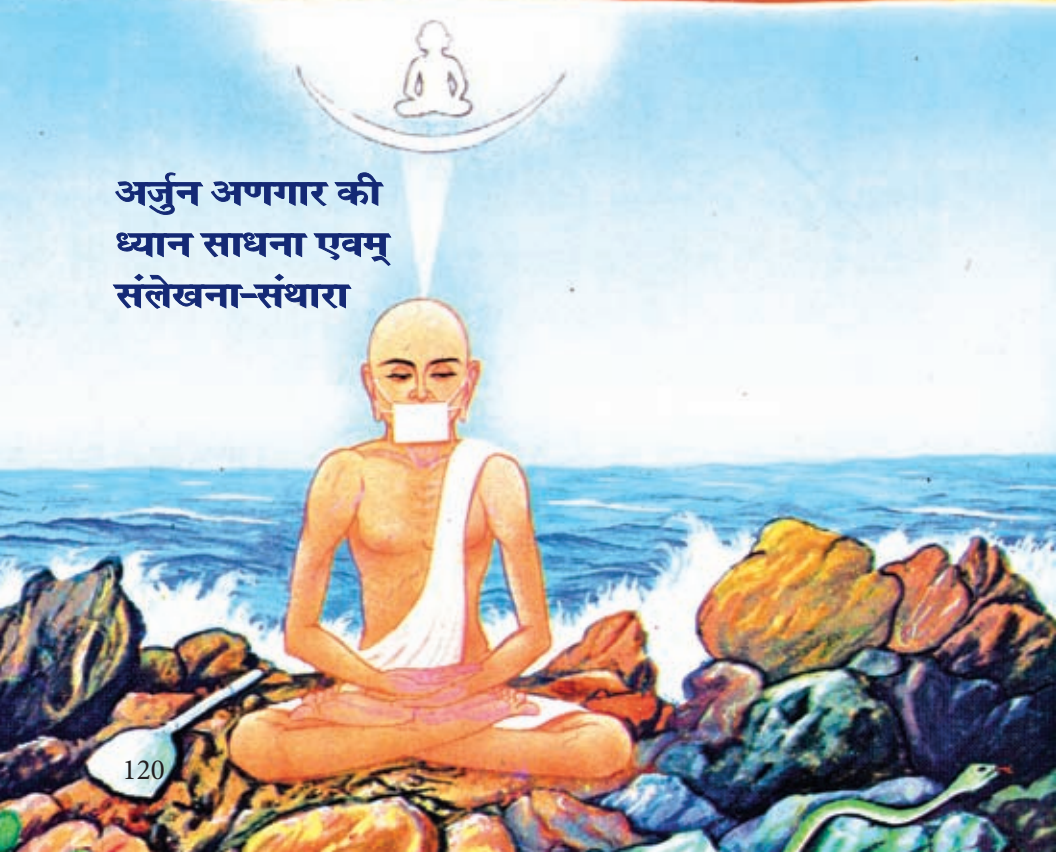

अर्जुन अणगार की
ध्यान साधना एवम्
संलेखना-संथारा

नज़रों पे चलो डाल के जरा लाज का आंचल,
हो जाए ना कहीं दिल किसी तीर से घायल ॥

आज के युग में आंखों और दिल के विकारों से भयंकर विकार चल रहा है दुराचार और व्यभिचार का। कहीं-2 तो ललिता गोष्ठी की तरह अनर्थकारी और भयावह कांड भी घटित हो रहे हैं, कहीं भीतर ही भीतर पाप पनप रहे हैं। आज के जमाने में हम धार्मिक लोगों के लिए ये बहुत बड़ी चुनौती है। ऐसा न हो कि हम ऊपर से सफेद-पोश और दूध के धुले नज़र आए तथा अंदर से हमारा Character काला-कलूटा हो। याद रखें— If character is lost, everything is lost. अर्जुनमाली के जीवन को सुनकर हमें ऐसी बुराइयों से तो दूर रहना ही चाहिए।

चलो, फिर अपने आगम की पंक्तियों में झांके। अर्जुन मुनि ने छह महीने तक संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित किया। और अंत में 15 दिन की संलेखना-संथारा ग्रहण करके केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन पाया। विपुलाचल पर्वत पर वह आत्मा निर्वाण को प्राप्त हुई।

इस प्रकार पतित से पावन, कंकर से शंकर बनने की यह प्रक्रिया इनके जीवन चरित्र से ज्ञात होती है। भगवान् महावीर ने फरमाया है कि हर आत्मा परमात्मा है। अपने परमात्म भाव को उजागर करने का प्रयत्न हमें भी करना है। जो इस दिशा में कदम बढ़ाएंगे, उनको अवश्यमेव मोक्ष-लक्ष्मी वरण करेगी।

पर्यूषण पर्व सानन्द व्यतीत हो रहे हैं। आप सबका सहयोग मिल रहा है, मिलता रहेगा। अब कुल तीन दिन शेष हैं। अपने उत्साह को बनाए रखें, यही आपसे निवेदन है।

जय जिनेन्द्र!

छठे पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– करना है मुक्ति का अभियान

खिलाने मन में शुभ्र किरण, हैं आए (आ गए) पर्यूषण।
बनाने निर्मल तन और मन,.... ॥ टेक ॥

1. श्रद्धा की ज्योत जलाओ, भक्ति की धार बहाओ,
देने समकित भव्य रतन....॥

2. ज्ञान का स्रोत हैं अंदर, पर्वत में जैसे निर्झर,
उठे भीतर में धर्म लगन....॥

3. सुस्ती कायरता भागे, विक्रम और उत्साह जागे,
बढ़े संयम में नित्य चरण...॥

4. सुन लो महावीर वाणी, सुन लो इतिहास कहानी,
विलक्षण जीवन के लक्षण...॥

5. मुखड़ा निहारो अपना, रूप संवारो अपना,
दिखाने हम सबको दर्पण...॥

6. समय जो चूका चूका, वक्त ने उस पर थूका,
बचा लो इज्जत रूपी धन...॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के छठे वर्ग के चौथे अध्ययन से शुरु कर छठे वर्ग के अन्तिम अध्ययन तक मूल पाठ की वाचना करनी है।)

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एवं अपने पूज्य गुरुदेवों को वंदना करते हुए सभी भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र!

आप और हम जितने सौभाग्यशाली हैं, उतने भाग्यशाली न तो संसार के सम्राट् हैं और न स्वर्गों के देवता। उन्हें धर्म का सहारा मिला या नहीं; ये हमें पता नहीं है, पर हमें तो मिला ही है, ये हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं। धर्म की आराधना करते हुए हमें जो आनंद मिलता है, वह आनंद हमें न तो धन कमाते हुए मिलता है, न अच्छे-2 पकवान-मिष्टान्न खाते हुए मिलता है। वस्तुतः सच्चा आनंद है तो धर्म के पालन में ही, बाकी आनंद तो काल्पनिक हैं। मानव-जाति ने नकली और क्षणिक सुख की झलक को असली सुख मान लिया और उसी में संतुष्टि मान ली, इसी वजह से धर्म के सच्चे सुख की तरफ से ध्यान हट गया, लेकिन जिन्हें धर्म के सुख का आनंद मिला है, वे ही जानते हैं कि असली क्या है और नकली क्या है? सुना है हमने, एक गरीब औरत अपने छोटे से बच्चे को पानी में आटा घोलकर पिला देती थी और कहती थी कि ये दूध है। लेकिन जब उस बच्चे ने किसी मित्र के घर असली दूध पिया तो उसे पता चला कि असली और नकली दूध मे क्या फर्क होता है। हमें भी अनादिकाल से भौतिक वस्तुओं के भोग में सुख महसूस होता था। लेकिन अब धर्म का आनंद पाकर पता चला है कि वह तो सब नकली माल था।

अंतगड़-सूत्र में भी जीवन का वास्तविक आनंद लेने वाले महापुरुषों की कहानियां आ रही हैं। आज प्रारंभ में कुछ सेठ-साहूकारों के त्याग की दास्ताने हैं और बाद में एवंता कुमार की रोचक ज़िंदगी का वर्णन है। चौथे अध्ययन से लेकर चौदहवें अध्ययन तक का वर्णन केवल परिचय रूप ही है। कहानी का अंश तो 15वें अध्ययन में आएगा। इसलिए पहले पात्रों का परिचय कर लें:— राजगृह के

काश्यप, काकंदी के क्षेमक और धृतिधर गाथापतियों ने दीक्षा लेकर सोलह वर्ष संयम पालकर मोक्ष पाया था। साकेत नगर के कैलाश तथा हरिचंदन ने 12 साल संयम पालकर मुक्ति प्राप्त की। राजगृह के वारत्रक ने भी 12 साल संयम निभाया था। हाँ, वाणिज्य ग्राम के सुदर्शन तथा पूर्णभद्र की दीक्षा-पर्याय पांच वर्ष की थी। श्रावस्ती के सुमन-भद्र अनेक वर्षों तक, तो सुप्रतिष्ठ 27 वर्षों तक साधना करके मोक्ष में पधारे थे। हाँ, राजगृह के मेघ गाथापति की दीक्षा-पर्याय अनेक वर्षों की थी।

अब हम अपने सर्वाधिक दुलारे, प्यारे, लाडले एवन्ता कुमार की ओर दृष्टि घुमाते हैं। यों तो इनका नाम अतिमुक्त है, परंतु हमारे पूर्वज संत-मुनिराज इन्हें एवन्ता के नाम से ही पुकारते आए हैं। इनका जीवन चित्रित करते हुए पन्द्रहवें अध्ययन में लिखा है कि पोलासपुर के राजा विजयसेन और रानी श्रीदेवी का इकलौता पुत्र एवन्ता था। वह बचपन से ही माता-पिता एवं सारी जनता की आंखों का सितारा था। श्री अरविंद जी ने क्या सुंदर काव्य लिखा हैः—

अंतगड दशांग जी आगम का, करते है भाव सहित वर्णन।
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
पोलासपुरी नामक नगरी, नृप विजयसेन जी रहते हैं।
रानी श्रीदेवी है उनकी, बेटे को एवन्ता कहते हैं
उस बालमति महायोगी के, जीवन का चित्र मनोरम है
हो नभ में इन्द्रधनुष जल में, शतदल का छाया आलम है
महावीर पधारे नगरी में, तो महक उठा हर इक आंगन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

राजघराने में जन्म लेने के बावजूद उसके माता-पिता ने अपने बच्चे में किसी प्रकार का दोष नहीं पनपने दिया था। उस बालक में कुछ अपने मौलिक विचार भी थे, तो कुछ परिवार के दिए हुए संस्कार भी थे। बालक के जीवन-निर्माण में अभिभावकों के व्यवहार, आचरण एवं

प्रशिक्षण का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक अनुभवी व्यक्ति ने संतुलन की शिक्षा देते हुए लिखा है।

इतना दुलराओ बालक को, कि हो अनुशासनहीन नहीं,
और इतना प्यार करो जिससे, हो निष्क्रिय कर्म विहीन नहीं।
इतना सुख दो बालक को, कर सके बुद्धि का वह विस्तार,
हो न कभी अति मंद आलसी, उपजे शुद्ध विवेक विचार।
इतना तो मुक्त करो, जिससे, स्वतंत्रता का अनुभव हो,
इतनी दो न मुक्ति, जिससे, उच्छृंखलता का उद्‌भव हो।
इतना प्रेम दिखाओ जिससे, जागृत स्वाभिमान रहे,
इतनी करो ताड़ना जिससे, उसमें हठ न गुमान रहे।
वे डालो संस्कार कि जिससे, पुण्यात्मा सद्‌ज्ञानी हो,
वर्चस्वी वाग्मी व विवेकी, धीर वीर बलिदानी हो ॥
मात-पिता का आज्ञाकारी, गुरुचरणों का भक्त रहे,
धर्म स्वजाति राष्ट्र सेवा में, जीवन भर अनुरक्त रहे।
ऐसी दो प्रेरणा जिससे कि, आगे बढ़ने का उपक्रम हो,
ऐसा दो विश्वास कि प्राणों, में दृढ़ता हो संयम हो।
जिधर मोड़ लो कोमल निर्मल, सलिल धार सा बालक मन,
जनक और जननी पर निर्भर, बालक का उत्थान पतन ॥

एक बार श्रमण भगवान् महावीर पोलासपुर नगर में पधारे। साथ ही उनका शिष्य-वर्ग भी था। उनके ज्येष्ठ शिष्य इंद्रभूति गौतम भी साथ थे। उनकी संयम-साधना, ज्ञान-आराधना निर्बाध रूप से चल रही थी। उनके कण-2 से तप का सौंदर्य छिटक रहा था। वे जीवन-पर्यंत बेले-2 तप में जुटे हुए थे। जब प्रभु पोलासपुर के श्रीवन में पधारे हुए थे, तब भी इन्द्रभूति गौतम का साधना-क्रम अप्रमाद-भाव से चल रहा था। एक दिन अपने बेले तप के पारणे के लिए वे नगरी में चले। उस समय बालक एवन्ता अपने छोटे-2 साथियों के साथ खेलने के लिए खेल के मैदान में आया हुआ था। बच्चे थे तो क्रीड़ा कर रहे थे।

खेलते-2 एवन्ता की नज़र इंद्रभूति गौतम की ओर गई। उसने अपना खेल छोड़ दिया और तुरंत उनके पास आया। संस्कार भी अच्छे थे, आध्यात्मिक विचार भी बहुत सुंदर थे। सो उनके पास जाकर वंदना की और उनका परिचय पूछना शुरु कर दिया– आप कौन हैं तथा किस कार्य के लिए घूम रहे हैं?

उस छोटे से बालक की जिज्ञासा की उपेक्षा करने की बजाय श्री गौतम स्वामी ने बड़े प्यार से कहा– बच्चा, हम जैन मुनि हैं, हम पैदल चलते हैं, नंगे पैर रहते हैं, हम अपने पास पैसा नहीं रखते तथा गृहस्थों के घरों से आहार-पानी लेकर अपना जीवन-यापन करते हैं। इस समय भी हम भोजन लेने के लिए घरों में जा रहे हैं। इस बात को सुनते ही एवन्ता गौतम स्वामी को कहने लगा– हे भगवन्! फिर तो आप मेरे साथ मेरे घर पर चलो। मैं आपको आहार दिलवाऊंगा। उसने तो श्री गौतम स्वामी जी के उत्तर की प्रतीक्षा ही नहीं की, उनकी अंगुली पकड़ ली और अपने घर की ओर ले चला।

एक बच्चा चिंटू तीसरी क्लास में पढ़ता था। एक दिन अपने पिता जी के साथ शहर में घूमकर आया। उसके दोस्त पिंटू ने पूछा कि तूने शहर में क्या देखा। चिंटू ने जवाब दिया– यार, बस एक चीज़ के अलावा मुझे कुछ नहीं दिखाई दिया। वहां जाकर ये पता चल गया कि मेरे पापा बहुत डरपोक हैं। दोस्त हैरान होकर पूछने लगा– ये कैसे? चिंटू का उत्तर सुनिए, बोला– पापा मुझे बार-2 कह रहे थे कि अगुंली छोड़कर मत जाना, इसे जोर से पकड़ ले। उन्हें गुम होने का डर लग रहा था इसलिए मैंने देखा कि पापा बहुत डरपोक हैं। बच्चा पिता के बारे में शंकित है और पिता पुत्र के बारे में। पर यहाँ ऐसा कुछ नहीं था। यहाँ पूर्ण सहजता थी।

निश्छलता-सरलता की दो जीवन्त प्रतिमाएं साथ-2 चल रही थीं। एवन्ता तो अपनी बाल्य-अवस्था के कारण निश्छल और सरल थे। गौतम स्वामी जी अपनी साधना के परिणाम-स्वरूप इस उच्च धरातल पर पहुंचे थे। इसी सहजता और सरलता की वजह से एवन्ता जी ने

उस महामुनि की अगुंलि पकड़ ली और उसी सहजता-सरलता के कारण उन्होंने अंगुलि पकड़वा दी। एवन्ता को अंगुल पकड़ कर अभिमान नहीं हुआ। गौतम जी को अंगुल पकड़वाकर छोटापन नहीं लगा। बड़ी सौम्यता के साथ दोनों श्रीदेवी के महलों में पहुंचे तो श्रीदेवी भाव-विभोर हो गई। गौतम स्वामी जैसी अनोखी हस्ती श्रीदेवी के घर पहुंची— ये उसके लिए विश्व का सर्वोत्तम उपहार था। चौदह हजार साधुओं में सबसे बड़े साधु, ग्यारह गणधरों में पहले गणधर, भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य, मनःपर्यय ज्ञान सहित चार ज्ञान के धारक, चौदह पूर्वों के ज्ञाता और निर्माता, अनेक लब्धियों के धारक महान् संत आए और मेरा बेटा इन्हें अंगुली पकड़ कर ले आया- ये बात श्रीदेवी के लिए सुखद सपने जैसी प्रतीत हो रही थी। हर्ष और खुशी के साथ श्रीदेवी गौतम स्वामी के स्वागत के लिए और सात-आठ कदम आगे लेने गई। श्रद्धापूर्वक तीन बार वंदना की और रसोई में ले जाकर जो निर्दोष भोजन तैयार था, वह स्वयं बहराया तथा अपने पुत्र एवन्ता के हाथों से बहरवाया ताकि बच्चे में दान के संस्कार उत्पन्न हों। आहार बहराकर पुनः वंदना की और महल के द्वार तक विदा करने गई। इस सारे प्रसंग को काव्य पूर्ण शब्दों में सुनिएः—

गौतम का प्यारा प्यार उसे, कुछ खींच रहा था अपनी ओर
वह खेल छोड़ दौड़ा आया, परिचय पूछा हो भाव विभोर
मैं महावीर का चेला हूँ, और भिक्षा हेतु आया हूँ
बेले का पारणा करना है, संग झोली पात्रे लाया हूँ
बालक ने झट अंगुलि पकड़ी, मेरे घर भिक्षा करो ग्रहण
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
दोनों को आते देखा तो, रानी की आंखें हो गई नम
श्री गौतम की अंगुली थामे, एवन्ता लगता सुन्दरतम
है वदंन करती मुनिवर को, और फूली नहीं समाती है
आनंदित पुलकित श्रीदेवी, आहार उन्हें बहराती है

माँ, इनके संग मैं जाता हूँ, करने महावीर प्रभु दर्शन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

श्री गौतम जी चलने लगे तो एवन्ता ने फिर प्रश्न पूछ लिया— 'प्रभो, आप कहाँ रहते हैं और अब कहाँ जाओगे?' गौतम स्वामी जी ने फरमाया— 'मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पोलासपुर के बाहर श्रीवन उद्यान में विराजमान हैं, मैं भी उनके सान्निध्य में रहता हूँ और अब वहीं जा रहा हूँ।' एवन्ता ने सोचा— ये अच्छा मौका है, मैं इनके साथ इनके गुरुओं के पास चला जाऊं। जब ये इतने प्यारे हैं तो इनके गुरु कितने प्यारे लगेंगे। अपनी माँ से साथ जाने की अनुमति ली और श्री गौतम स्वामी से बोला— भगवन्, मैं आप के साथ प्रभु महावीर को वंदना करने जाना चाहता हूँ। श्री गौतम प्रभु की ओर से निषेध का प्रश्न ही नहीं उठता था। अतः वह बालक उस युग के सर्वोच्च ज्ञानवान् मुनि के साथ प्रभु की सेवा में उपस्थित हो गया। भावपूर्वक भगवान् को वंदना करके उनकी सेवा में बैठ गया। गौतम स्वामी जी प्रभु को लाए हुए आहार को दिखाकर उसे भुगताने में लीन हो गए, पर एवन्ता तो तीर्थंकर प्रभु की धर्म-देशना सुनने में ही मस्त हो गया। भगवान् की वाणी अनुभवों का अक्षय स्रोत थी। उनकी वाणी केवल विद्वानों, प्रौढ़जनों तथा अनुभवी लोगों के लिए ही उपयोगी नहीं थी, अनपढ़, अशिक्षित, महिलाओं तथा बालकों को भी उनकी वाणी से दिशा बोध मिलता था। उनके समवसरण में देवता तथा मनुष्य तो मार्गदर्शन लेने आते ही थे, पशु-पक्षी भी अपने जीवनोद्धार की सामग्री प्राप्त करने पहुंचते थे। आ. मानतुंग ने भक्तामर स्तोत्र में लिखा है—

"स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः, सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः,
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व, भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥"

"आपकी दिव्य ध्वनि है धर्मतत्त्व-प्रसारिणी,
सर्व-भाषा-भाषियों में सुगम भ्रांति-निवारिणी"।

तीर्थंकरों की वाणी का ये अतिशय होता है कि किसी भी देश का, किसी भी गति, जाति का, किसी भी उम्र का, किसी भी योग्यता का श्रोता हो, उसे भगवान् के भाव समझ में आ जाते हैं। एवन्ता कुमार ने ये जान लिया कि भगवान् के चरणों में ही मेरे जीवन का उत्थान संभव है। ये मेरी अंतिम शरण है। अपनी भावना को वह छिपा नहीं सका। कहने लगा– 'प्रभो, अपने माता-पिता की अनुमति लेने मैं घर जा रहा हूँ। बाद में आपके पास आकर दीक्षा ग्रहण करुंगा।' जीवन में नई सोच, नई दिशा, नया लक्ष्य लेकर वह अपने घर पहुंचा। माता-पिता उसके चेहरे की आभा देखकर चकित रह गए। फिर भी अपने पुत्र के मुख की ओर निहारने लगे कि देखो– ये क्या बोलता है। उसने सविनय निवेदन किया कि– 'मैं प्रभु महावीर स्वामी के चरणों में दीक्षा लेना चाहता हूँ।' अपने दूध-मुँहे बेटे के मुंह से दीक्षा की बात सुनते ही माता-पिता भौंचक्के रह गए। ये अबोध बालक दीक्षा लेने की कह रहा है। इसे तो धर्म की बारह-खड़ी[1] भी नहीं आती होगी? और ये तो चांद पकड़ने की सोच रहा है। आखिर बच्चा ही तो है। बस संतों को, गुरुओं को देखा और इसे लगाव हो गया। बचपन का तकाजा है। नई चीज़ की ओर लपकना बच्चों की आदत होती है– श्रीदेवी और विजयसेन सोचने लगे। वस्तुतः ये विचार श्रीदेवी विजयसेन के ही नहीं, लगभग सारी जनता के हो सकते हैं। बचपन और वैराग्य– ये एक शाश्वत प्रश्न रहा है। बचपन में राग की तीव्रतम, गहनतम जड़ें होती हैं। हाँ, बाद में जीवन के उत्थान-पतनों से, संबंधों की अस्थिरता से, संसार की कुटिलताओं से, अभावों की चोटों से खिन्न होकर कुछ लोगों में तो द्वेष, पर कुछ लोगों में वैराग्य भी पैदा हो सकता है। पर बच्चों में तो वैराग्य की संभावना ही नहीं होती तथा बिना वैराग्य के दीक्षा निरर्थक होती है। इसलिए हर प्रबुद्ध व्यक्ति बच्चों को दीक्षा के अयोग्य मानता है।

जैन धर्म में भी बिना वैराग्य और ज्ञान के दीक्षा की अनुमति नहीं दी। हाँ, इतना ज़रूर है कि जैनागमों में ये उल्लेख है कि लाखों इंसानों

---

1 वर्णमाला (Alphabet)

में कोई एकाध बालक इतना विलक्षण और अद्भुत हो सकता है, जो छोटी आयु में भी ज्ञानवान् और वैराग्यवान् बन जाए। उस बालक के लिए दीक्षा की अनुमति भगवन्तों ने दी है। जैन-आगमों के अलावा हिन्दू-ग्रंथों में भी छोटी उम्र के संन्यासियों का उल्लेख मिलता है। भक्त प्रह्लाद ने छोटी आयु में भक्ति का चमत्कार दिखाया। स्वामी शंकराचार्य बचपन में ही संन्यासी बन गए थे। सिक्ख संप्रदाय में बाबा बूढ़ा का ज़िक्र है कि बचपन में ही बुज़ुर्गों जैसी बातें करता था और उसे तभी से बूढ़ा सिंह कहा जाने लगा था।

भक्त ध्रुव का प्रसंग तो बाल-संन्यासियों की शृंखला में सर्वाधिक चर्चित रहा है। पुराणों में लिखा है कि मनु के दो पुत्र थे- प्रियव्रत तथा उत्तानपाद। उनमें उत्तानपाद को राज्य का अधिकार मिला। उसकी दो पत्नियों में सुनीति धर्मशील, भक्ति-परायण महिला थी तथा सुरुचि रूप-सौंदर्य-संपन्न होते हुए भी अहंकार से ग्रस्त थी। दोनों के एक-2 पुत्र था। सुनीति का पुत्र ध्रुव था तथा सुरुचि का पुत्र उत्तम था। जब ध्रुव पांच वर्ष का था तो एक दिन राज्यसभा में अपने पिता की गोद में बैठने के लिए मचल उठा। जैसे ही वह पिता की ओर बढ़ा, तुरंत उसकी सौतेली माँ सुरुचि ने उसे रोक दिया। साथ ही एक व्यंग्य और कस दिया— 'यदि तू मेरी कोख से जन्म लेता तो ये अधिकार तुझे मिल जाता।' रानी की इस हरकत पर राजा भी चुप रहा क्योंकि सुरुचि उसके सिर चढ़ी हुई थी, वह कुछ कह नहीं सकता था। मासूम ध्रुव निराश हो माँ की तरफ देखने लगा। माँ बोली— बेटा, पिता से भी बड़ी गोद भगवान् की गोद है। तू उस गोद में बैठ, तेरे पितामह मनु ने जो ऊंचा पद पाया, उसी पद को तू प्राप्त कर। प्रभु-भक्ति से ये सब संभव होगा। ध्रुव के मन में ये लगन लग गई कि मुझे प्रभु के दर्शन करने हैं। यद्यपि उसे यह स्पष्ट नहीं था कि भक्ति क्या है तथा कैसे की जाती है। फिर भी वह माँ की आज्ञा ले घर से निकल पड़ा। मार्ग में उसे नारद मिले। उन्होंने ध्रुव को मधुवन नामक स्थान पर साधना करने भेज दिया। भागवत पुराण के चौथे स्कंध में ध्रुव की

तपस्या का वर्णन रोंगटे खड़े करने वाला है। वहां लिखा है कि उसने पहले महीने तीन-तीन दिन की तपस्या की और पारणे में एक बार बेर और कैथ का फल लिया। दूसरे महीने 6-6 दिन की तपस्या की तथा पारणे में सूखे तृण और पेड़ के गिरे हुए पत्तों का सेवन किया। तीसरे महीने 9-9 दिन की तपस्या, पारणे में जल लिया। चौथे महीने तो उसने आहार त्याग दिया तथा केवल एक बार सांस लिया। पांचवे महीने वह भी बंद कर दिया। उसके सामने अनुकूल-प्रतिकूल सभी तरह के परीषह आए, पर वह निश्चल और निष्पंद रहा। देवताओं ने नारायण से प्रार्थना की कि इसको तपस्या से रोको। नारायण आए और उसे दर्शन दिए। उसने प्रभु की स्तुति की तथा उसे आकाश में स्थायी स्थान प्रदान कर दिया। उस ध्रुव को पिता की गोद भी मिली, परमपिता परमात्मा की गोद भी मिली। इस प्रकार वैष्णव-परंपरा में बालक को भी संन्यास तथा तपस्या का अधिकार दिया है।

बालक एवंता भी ऐसा ही विलक्षण और निराला बालक था, जिसने जीवन के गहन रहस्यों का बोध पा लिया था। इसीलिए वह अपने माता-पिता से दीक्षा की अनुमति मांगने लगा। माता-पिता आश्चर्य-चकित हो उसका चेहरा निहारने लगे और पूछने लगे— बेटा, तुझे धर्म के संबंध में क्या ज्ञान है? एवन्ता बोला— मैं धर्म की एक अवधारणा के संबंध में कुछ जानता हूँ पर कुछ नहीं भी जानता तथा धर्म की दूसरी अवधारणा के संबंध में कुछ भी नहीं जानते हुए कुछ-2 जानता भी हूँ। अपने पुत्र की अटपटी बातों से पहले ही उलझे हुए माता-पिता और अधिक उलझ गए। जानते हुए भी नहीं जानना और न जानते हुए भी जानने का चक्कर उन्हें समझ नहीं आया। उन्होंने सोचा कि हम गुत्थी को खुद सुलझाने की कोशिश करेंगे तो और उलझ जाएंगे, इसलिए इसी से इस पहेली का अर्थ पूछ लेते हैं। उसे कहा— 'बेटा, ये कैसे कहा कि तू जिसे जानता है, उसी को नहीं जानता तथा जिसे नहीं जानता, उसे जानता भी है।' एवन्ता कुमार ने संशय निवारण करते हुए कहा— सुनो, त्यागधर्म का आदि बिंदु है— मृत्युबोध तथा

द्वितीय बिन्दु है– पुण्य-पाप कार्यों की सही जानकारी। पहले बिंदु पर मैं स्पष्ट हूँ कि सृष्टि का अटल सत्य मृत्यु है। प्रत्येक पैदा होने वाला प्राणी मरता है। वह प्रतिपल भी मर रहा है, रह-2 कर भी मर रहा है तथा पूर्णरूप से भी मरने वाला है। ज़िंदगी के साथ मृत्यु का अटूट नाता है। मृत्यु के प्रहार से बचने का किसी के पास भी उपाय नहीं है।

"उदित अस्त हो, फूले सो कुम्हलाय,
बने सो बिगड़े, जन्मे सो मर जाय ॥"

जैसे सिंह मृगों की डार[1] में से किसी भी मृग को अपना निशाना बना कर पकड़ कर ले जाता है, ऐसे ही मृत्यु किसी भी प्राणी को अपने जबाड़े में जकड़ लेती है।

"झूठे सुख को सुख कहत मानत है मन मोद,
जगत चबेना काल का कुछ मुंह में कुछ गोद ॥"

ये मत समझ लेना कि 90-100 साल की उम्र के बुजुर्ग ही मौत को प्यारे लगते हैं। वह ढलती उम्र के प्रौढ़ व्यक्तियों को भी अपने गले लगा लेती है, चढ़ती जवानी के हसीन भी उसकी बलिवेदी पर कुर्बान होते हैं। छोटी-2 कच्ची कलियों जैसे मासूम, मुझ जैसे बच्चों को भी मौत उठा कर ले जाती है। और तो और, माँ की कोख में निश्चिंतता से सोए भ्रूणों को भी मौत निगल जाती है। **"डहरा वुड्ढा य पासहा, गब्भत्था वि चयंति माणवा ॥"**

एक सेठ के घर रात को चोर घुस गया। सेठ की आंख खुल गई। उसने चोर को ललकारा तो चोर भाग लिया। सेठ और उसके बच्चे उसके पीछे-2 दौड़ पड़े। चोर चालाक था। एक गली से दूसरी गली में ऐसे घूम गया कि पकड़ने वाले थक गए। अब सेठ ने उसका पीछा करने की बजाय शहर के बाहर भागना शुरु कर दिया। वहां श्मशान-घाट पर आकर बैठ गया। उसके लड़के, पड़ौसी, पुलिस कर्मचारी

---

1 कतार

उसके पास आए। पूछने लगे– तू चोर के पीछे भागने की बजाय यहाँ क्यों आ गया। सेठ कहने लगा– वो चोर कहीं भी चला जाए, आखिर श्मशान-घाट में तो आएगा ही। यहाँ से बचकर कोई नहीं रहा, वह भी नहीं रहेगा। तब उसे पकड़ लूंगा। कितनी गहरी सच्चाई सेठ ने बताई है।

तर्जः–

पल-2 जलता है श्मशान ॥

1. हंस-2 जलती रोज़ चिताएं, हरा भरा संसार जलाएं।
मिटती कितनों की आशाएं, मन होता सुनसान ॥

2. राजा और भिखारी मिलकर, राख हुए दोनों जल-2 कर।
मोहक हड्डियां कहती हँसकर, हैं सब एक समान ॥

3. इन अंगारों की शय्या पर, सोया कोई पांव फैलाकर।
क्या पूछेगा इसे जगाकर, है यह नींद महान् ॥

4. हाय बाप बेटे को लाया, माँ ने अपना लाल गंवाया।
दुल्हन ने वर जलता पाया, दो दिन का मेहमान ॥

5. टूट गई श्वासों की माला, बुझ गई कितनी जीवन ज्वाला।
फिर भी लेकर खाली प्याला, मौत मांगती दान ॥

6. यह सुंदरबाला जो आई, जीवन का सुख देख न पाई।
प्रीतम से हो गई जुदाई, मौत बड़ी बलवान ॥

7. देखो कैसी सूरत भोली, जली ये किसकी जीवन होली।
रो-रोकर बुढ़िया यों बोली, रूठ गए भगवान् ॥

8. बच्चों किसे ढूंढने आए, क्यों तुम सबके मुंह कुम्हलाए।
रोते थे कुछ कह नहीं पाए, वे भोले नादान ॥

मुझे नहीं मालूम कि किसी और को ये सच्चाई प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है या नहीं, पर मुझे इसके अलावा कुछ नहीं दिख रहा। मृत्यु के हस्ताक्षर मेरी हर सांस पर लिखे जा चुके हैं, ये चैक कभी भी भुनवाया जा सकता है। मेरी माँ, मेरे पिता श्री, क्या आपको मृत्यु का अस्तित्व महसूस हो रहा है? माता और पिता दोनों ही उस बाल-ऋषि के वक्तव्यों का पूरा अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। उन्हें लग रहा था मानो ये हमारा पुत्र नहीं, हमारा जनक है। The child is the father of man. संतान कभी-कभी संतान नहीं, स्रष्टा बन जाती है। यही स्थिति राजा-रानी की हो रही थी। उन्हें कुछ-2 प्रतीत होने लगा था कि हमारा पुत्र मृत्यु की अनिवार्यता का जानकार हो गया है और इसीलिए इसके चित्त में वैराग्य का तूफान उठा हुआ है, क्योंकि जो मनुष्य मृत्यु को जान जाता है, उसे पापों से नफरत हो जाती है। **"आयंकदंसी न करेइ पावं"** अपनी मृत्यु के दर्शन से पाप-क्रिया बंद हो जाती है। प्रथम चक्रवर्ती भरत ने एक संदेहशील व्यक्ति के हाथ पर तेल से लबालब भरा कटोरा रखकर उसे पूरे शहर में घुमवाया था। वहीं, ये भी चेतावनी दे दी थी कि एक बूंद भी तेल छलक गया तो गर्दन काट दी जाएगी। दिन भर शहर की सैर करके जब वह व्यक्ति राज-दरबार में पहुंचा तो चक्रवर्ती ने पूछा— आज आप पूरे शहर का दौरा करके आए हो, शहर में क्या-2 रंगीन नज़ारे देखे, कौन-2 से लुभावने गाने सुने। उसने उत्तर दिया— राजन्, मैंने पूरे, पूरे शहर में केवल तेल से लबालब भरा कटोरा देखा था। भरत महाराज ने अपनी मनः स्थिति समझाते हुए उसके ही हवाले से कहा— भाई, छह खंड के साम्राज्य के बीच मुझे भी हर पल मृत्यु-दिखाई देती है। इसीलिए मुझे संसार के शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श लुभाते नहीं है। माता-पिता सोच रहे थे— हमारे लाडले को भी मृत्यु दर्शन ने वैराग्य की ओर धकेल दिया है। परंतु ये तो कह रहा था कि मैं इस विषय में जानकर भी अनजान हूँ। हम तो अनजान हो सकते हैं, पर ये अनजान कैसे है? माता-पिता की भावनाओं को भाँपते हुए ही मानो

एवन्ता बोल उठा— मैं नहीं जानता, मेरी मृत्यु कब होगी। आज भी हो सकती है, अभी भी हो सकती है। कल परसों भी हो सकती है, वर्षों बाद भी हो सकती है, पर मुझे नहीं मालूम। मैं वर्षों की इंतजार नहीं कर सकता। मृत्यु का समय अनिश्चित है। स्थान भी अनिश्चित और अज्ञात है, मरने की विधि भी अनिश्चित है। जीवन-वीणा के स्वर किसी महल की सेज पर बंद होंगे या किसी निर्जन वन के पथरीले मार्ग पर— ये मैं नहीं जानता। किसी भीषण रोग की चपेट में आकर ये शरीर का यंत्र बंद होगा या किसी दुर्घटना का शिकार होकर एक झटके से यह तंत्र चूर-2 होगा— ये भी मैं नहीं जानता। मैं नहीं जानता कि सूरज की पहली किरण मेरे प्राण-हरण करेगी या ढलता सूरज मुझे अपने साथ ले डूबेगा। इन सब बातों से अनभिज्ञ हूँ मैं। मैं केवल मृत्यु के होने को जानता हूँ, बाकी मृत्यु के इर्द-गिर्द मंडराने वाले प्रश्नों का उत्तर मैं नहीं जानता। हाँ, ये भी बता दूं, मुझे इन्हें जानने की न आवश्यकता है, न रूचि है। मेरे लिए पहला ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण है दूसरा ज्ञान महत्त्वहीन है। राजा विजयसेन, रानी श्रीदेवी अपने पुत्र को देख रहे थे और चकित-विस्मित हो रहे थे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि ये हमारा पुत्र है या हमारा गुरु?

अपनी पुरानी पहेली के उत्तरार्ध को खोलते हुए एवन्ता और खुल गया कि त्याग का दूसरा बिन्दु है— शुभ और अशुभ कार्य। मुझे इनका कोई ज्ञान नहीं है कि पुण्य क्या है, पाप क्या है। नरक की ओर ले जाने वाले काम कौन से हैं तथा स्वर्ग को ओर ले जाने वाले कर्म कौन से हैं? निपट अज्ञानी हूँ मैं इन बारीक मुद्दों के बारे में। हाँ, अपने अज्ञान को बींधकर भी मैंने ये जान लिया है— मेरे अपने कर्म अर्थात् आचरण ही नरक के कारण हैं। मेरे अपने आचरण ही स्वर्ग के या मोक्ष के कारण हैं। और आगे भी होंगे। कोई और मुझे न शांति दे सकता, न बेचैनी दे सकता, न मेरा कल्याण कर सकता, न मेरा नुक्सान कर सकता। मैं खुद ही अपने भाग्य का विधाता हूँ।

"मैं हूँ खुद नूरे-खुदा[1] महरे मुनव्वर[2] हूँ मैं
गो[3] खाक का पुतला ही बजाहिर[4] हूँ मैं ॥"

मेरे आध्यात्मिक निर्माण के कर्त्ता न आप हैं, न संसार है, न कोई ईश्वर-परमात्मा है, वहां मैं खुद ही जिम्मेवार हूँ। इतना मैं जान चुका हूँ। मेरा भविष्य मेरे हाथों में है। हज़ार अज्ञानों के बीच ज्ञान की ये छोटी सी उपलब्धि मेरे लिए पर्याप्त है। अब मैं बाहर के सभी सहारों से मुक्त हो चुका हूँ। मैं अपने निकट पहुंच चुका हूँ।

"अब खुद को झकझोर हृदय, लौट आ अपनी ओर हृदय ॥"

आप मेरी बात का भाव समझे या नहीं, मैं समझा पाया हूँ या नहीं, ये भी मेरी समझ से बाहर है। पर मेरा निश्चय अडिग है कि मैं दीक्षा के पथ से डिगूंगा नहीं, पीछे हटूंगा नहीं। आपको दीक्षा की आज्ञा देनी ही चाहिए क्योंकि आप अपने पुत्र के जीवन को सुखमय देखना चाहते हो।

भजनः–

तर्जः– गुजरा हुआ जमाना आता नहीं दोबारा

दीक्षा की आज्ञा देकर उपकार मुझ पे कर दो।
मेरे पूज्य देवगण हो आज्ञा का एक वर दो ॥

1. मृत्यु के तीखे पंजे, मुझे नोचने लगे हैं,
मुझको बचा दें इनसे, दिखते न वो सगे हैं।
बच सकता हूँ मैं इनसे, तुम स्वीकृति अगर दो ॥

2. किस वक्त किस जगह पर, किस ढंग से मरण हो,
नहीं ज्ञात बंद कब ये, सांसों का संचरण हो।
किश्ती की पाल में तुम, कुछ ऐसी वायु भर दो ॥

---

1 ईश्वरीय प्रकाश 2 प्रकाशमान सूर्य 3 यद्यपि 4 दिखने में

3. अनजान सा शिशु हूँ, नहीं पुण्य पाप जानूं,
उन्मार्ग मार्ग क्या है, नहीं इतना भी पिछानूं।
भटका हुआ पथिक है, पहुंचा उसी के घर दो ॥

4. मेरे अधीन मेरा, निर्माण है ये निश्चित,
निज शक्तियां उभारूं, होऊं नहीं पराश्रित।
मेरे क्रांति के स्वरों में, अपना भी एक स्वर दो ॥

जब एवन्ता अपने भावोद्‌गार व्यक्त कर रहा था, तब नहीं लग रहा था कि ये कोई छोटी सी बाली-उम्र का बालक होगा। उन्हें तो ऐसा लगा मानों कोई युगों-2 का तपा हुआ योगी अपने दीर्घ मौन को तोड़ असीम-अनंत रहस्य से पर्दा उठा रहा है। उसके वक्तव्य के सामने वे स्वयं को बिल्कुल अनभिज्ञ शिशु महसूस कर रहे थे। उसकी एक बात का भी जवाब दे सकें, ऐसा उनका सामर्थ्य नहीं रहा था। वे उसके प्रवाह में खुद बहे जा रहे थे। उन्होंने उसकी बात को स्वीकार कर लिया, पर एक लघु निवेदन किया कि तू कम से कम एक दिन राज्य-श्री का अधिनायक बन जा। उसने मौन रह उनकी विनती मान ली। यों परिवार और एवन्ता के बीच Mutual under-standing हो गई। बालक एवन्ता जब राज्य सिंहासन पर शासक के रूप में आरुढ़ हुआ तो स्वयं माता-पिता ने पूछा– बताइए, आपका क्या आदेश है? एवन्ता ने फरमाया– मेरे निष्क्रमण के लिए उपयोगी ओघे और पात्रों को मंगवाओ और मुझे प्रभु-चरणों में अर्पित कर दो। आज्ञा का सविनय पालन हुआ। पूरी सज-धज के साथ विजयसेन महाराज ने पुत्र के लिए दीक्षा महोत्सव मनाया। माँ श्रीदेवी का दिल कुछ का कुछ हो रहा था। उसे अभी तक ये विश्वास नहीं हो रहा था कि ये हमें छोड़कर किसी और की गोद में समाविष्ट होने जा रहा है। हर काम अपने हाथों से कर रही थी, अपने नैनों से निहार रही थी, पर दिल कुछ और ही सोच रहा था। पर जब हकीकत का सामना करती तो पुकार उठती थी।

भजनः–

तर्जः– रहा गर्दिशों में हरदम

चमकेगा अब गगन में, मेरी आंख का सितारा।
बन जाएगा प्रभु का, जो था अभी हमारा ॥

1. गंगा का शुद्ध पानी, सागर में जा रहा है।
नहीं रोकता उसे है, कभी कोई सा किनारा ॥

2. ममता ये कह रही है, रस्ते में रोक डालूं।
कर्त्तव्य कह रहा है, ये हक नहीं तुम्हारा ॥

3. इस घर का दीप है ये, सूरज है इस गगन का।
है फूल बाग का ये, जीवन का ये सहारा ॥

4. माँ-बाप का फर्ज़ है, सन्मार्ग पर चलाना।
संतान भी वहीं है, जिसने है ऋण उतारा ॥

5. आराम देखती हूँ, भर-2 के दिल है आता।
हंसती हूँ देख इसका, हंसता सा चेहरा प्यारा ॥

6. भगवान् को ही अर्पण, भगवान् की ये माया।
मेरा नहीं है बालक, उनसे लिया उधारा ॥

निष्क्रमण यात्रा चलते-2 श्रीवन उद्यान में पहुंची। बालक एवन्ता शिविका से उतरा। आगे-2 पुत्र, पीछे-2 माता-पिता। प्रभु की प्रदक्षिणा करके माता-पिता ने निवेदन किया– भगवन्, यह हमारा लाडला पुत्र आपके संघ में सम्मिलित होने जा रहा है। इसको आप स्वीकार करने की कृपा करें। उत्तर-पूर्व दिशा में जाकर एवन्ता ने अपने वस्त्राभूषण उतारे, जिन्हें माँ ने संभाल लिया। प्रसन्न नेत्रों से पुत्र को सौंप कर वापस घर आ गए। एवन्ता कुमार ने भगवान् से निवेदन किया कि हे प्रभो! इस आग से धधकते संसार से मुझे निकालो और महाव्रतों का दान दो। प्रभु ने उसे सामायिक चारित्र प्रदान किया तथा उस बाल-मुनि

के सर्वांगीण विकास के लिए स्थविरों को दायित्व सौंप दिया। सामायिक चारित्र का काल Training Period होता है, इसलिए कई प्रकार की रियायतें और छूटें उस दौरान साधक को मिली होती हैं। सामायिक चारित्र का काल व्यक्ति के अनुसार छोटा या बड़ा हो जाता है। कहीं यह केवल सात दिन तक रखा जाता है। कहीं सात दिन से बढ़ते-2 चार महीने तक भी खींच दिया जाता है तथा कभी-कभी व्यक्ति और स्थिति को देखकर 6 महीने तक भी मान्य हो सकता है। इस सामायिक चारित्र के समय में मूलभूत नियमों का तो पूर्णतः पालन किया जाता है पर छोटे-2 उपनियमों का शत-प्रतिशत पालन न हो सकता हो तो भी क्षम्य रहता है। लेकिन छेदोपस्थापनीय चारित्र ग्रहण करने के बाद उपनियमों का भी मौलिक नियमों की तरह पालन अनिवार्य होता है। सामायिक चारित्र में मुनि-मर्यादाओं का भाव रूप से (In spirit) पालन तो होता है पर शब्द रूप में (In words) उपेक्षा भी हो सकती है, जबकि छेदोपस्थापनीय चारित्र में मुनि-मर्यादाएं In words and spirit पालनीय होती हैं। जैन शासन में एक बड़ी गजब की व्यवस्था है कि यदि आपने किसी महाव्रत को अल्प या अधिक रूप में खंडित कर दिया है तो आपकी दीक्षा काट दी जाती है। इसे छेद प्रायश्चित्त कहा जाता है। इस प्रायश्चित्त का प्रथम प्रयोग नवदीक्षित मुनियों पर ही कर दिया जाता है। दीक्षा के सात दिन, 4 महीने या छः महीने, जितना भी समय उस मुनि ने सामायिक चारित्र में बिताया हो, उस दौरान स्वल्प दोष लगे हों या न लगे हों, उस काल को छिन्न कर दिया जाता है और नए सिरे से दीक्षा दी जाती है– उस दीक्षा का नाम छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। इसी कारण सामायिक चारित्र के दरम्यान कोई दण्ड प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता। जब सारा दीक्षा काल ही समाप्त करना है तो छोटे-2 दोषों के छोटे-2 प्रायश्चित्तों की ज़रूरत नहीं रहती। ऐसी ही घटना एवन्ता मुनि के प्रारंभिक काल में घटित हुई। उस घटना का उल्लेख अंतगड़ सूत्र में तो नहीं है पर भगवती सूत्र में उपलब्ध होता है। पर्यूषण पर्वों में उसका वर्णन आवश्यक माना जाता है। वही आपके

सामने प्रस्तुत है। पहले काव्य के शब्द, फिर गद्यः—

इक रोज़ चले वो बाल मुनि सभी मुनियों संग बाहर दिशा,
रस्ते में इक गड्ढा देखा, वर्षा के जल से भरा हुआ,
एवन्ता देख उस पानी को, नहीं रोक स्वयं को पाते हैं,
कागज की नाव तिराते थे, बीते दिन लौट के आते हैं
उस जल में पात्री को छोड़ा, तिरते देखा हुआ पुलकित मन,
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

एक बार तेज बारिश का मौसम था। अतिमुक्त मुनि अपने बगल में रजोहरण तथा पात्र लेकर आवश्यक कार्य के लिए बाहर गए। बाहर उसे एक जल प्रवाह बहता नज़र आया। उसके मन में बाल-सुलभ क्रीड़ा की भावना उभर आई। एक समय वो भी था, जब गौतम स्वामी को देखा था तो क्रीड़ा बीच में छोड़ दी थी और आज अचानक मन क्रीड़ा के लिए उत्सुक हो उठा। बालक को प्राकृतिक दृश्य लुभाते ही हैं। वह अतिशीघ्र प्रकृति का अंग बन जाता है। इसी कारण वह हर स्थिति में प्रसन्न रहता है। अधिकतर लोग बड़ी उम्र में भी अपने बचपन को याद करते रहते हैं। तथा चाहते हैं— काश वे दिन पुनः लौट आएं। जगजीत चित्रा जैसे महान् गायकों ने बचपन की स्मृतियों का क्या सुंदर खाका खींचा हैः—

ये दौलत भी ले लो, ये शोहरत भी ले लो
भले छीन लो मुझसे मेरी जवानी।
मगर मुझको लौटा दो बचपन का सावन,
वो कागज की किश्ती वो बारिश का पानी ॥
मोहल्ले की सबसे पुरानी निशानी,
वो बुढ़िया जिसे बच्चे कहते थे नानी,
वो नानी की बातों में परियों का डेरा,
वो चेहरे की झुर्रियों में सदियों का फेरा,
भुलाए नहीं भूल सकता है कोई,

वो छोटी सी रातें वो लंबी कहानी ॥
कड़ी धूप में अपने घर से निकलना,
वो चिड़िया वो बुलबुल, वो तितली पकड़ना,
वो गुड़िया की शादी में लड़ना-झगड़ना,
वो झूलों से गिरना वो गिर के संभलना,
वो पीपल के पत्तों के प्यारे से झोंके,
वो टूटी हुई चूड़ियों की निशानी ॥

जब उम्र-दराज़ आदमी भी बचपन के खेलों को दोहराना चाहते हैं, फिर एवन्ता मुनि तो थे ही कच्ची उम्र के। टीकाकार तो कहीं-2 उनकी उम्र 6 वर्ष की लिखते हैं, पर आगमिक पाठों के मुताबिक उनकी उम्र 8 वर्ष होनी चाहिए। हाँ, आठ वर्ष भी खेलकूद की उम्र होती है। उम्र का तकाज़ा था कि उसने बहते पानी को मिट्टी की पाल बनाकर रोक दिया, फिर अपने पात्र को नौका मानकर उसमें डाल दिया और जैसे ही पानी में पड़ा पात्र हिलने लगा, दाएं-बाएं होने लगा, एवंता मुनि जी झूम उठे, गुनगुनाने लगे– 'मेरी नाव तैर रही है, मेरी नाव तैर रही है।'

इस विषय पर एक पुराना गीत चलता है। पहले उसकी एक-दो पंक्ति गुनगुना लें, फिर एक नए गीत को पकड़ेंगेः–

एवन्ता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में ॥
वर्षा काल बरसियाँ पीछे मुनिवर स्थंडिल जावे,
पाल बांध पानी में पातरी नावा जाण तिरावे ॥
नाव तिरे म्हारी नाव तिरे, यूं मुख से बचन उच्चारे,
साधां के मन शंका उपजी किरिया लागी थारे ॥

नया भजनः–

तर्जः– मेरे अंगने में तुम्हारा

नाव तर रही है मेरी नाव तर रही है,
जल की लहर मन में लहर भर रही है ॥

1. आसमां से बरसा है झूम-2 पानी,
धरती पे हो रही है जिसकी रवानी।
वृक्षों की पत्तियों से बूंदे झर रही हैं ॥

2. ऊपर से ढल के जल आया मैदान में,
आज जान आई खेत क्यारियों की जान में।
खुशी हुई जिंदा उदासी मर रही है ॥

3. नाव ही क्यों ज़िंदगी भी मेरी हुई पार है,
कुदरत की गोद में मन ये सवार है।
आगे-2 चल यहाँ क्या कर रही है ॥

4. महावीर स्वामी ही मेरे कर्णधार (खेवनहार) हैं,
सहजता सरलता का वो लेते उपहार हैं।
वक्रता है जिसमें आत्मा वो डर रही है।

एवन्ता मुनि काफी देर तक गाता रहा, खेलता रहा। साथ आए हुए मुनियों ने दूर से उसकी चंचलता और असंयमी हरकत देखी तो उसे वहीं छोड़ भगवान् के पास पहुंच गए। उन्हें लग रहा था कि इस साधु का कल्याण होने में न जाने कितने जन्म लग जाएंगे। इससे साधु के छोटे-2 नियम भी नहीं निभते तो बड़े-2 नियमों को कैसे निभाएगा और कैसे इसके कर्म कटेंगे, कैसे इसकी मुक्ति होगी?

इसी सोच विचार को ले वे भगवान् से आकर पूछने लगे— प्रभो, एवन्ता मुनि को मोक्ष जाने में कितने जन्म लग जाएंगे?

भगवंत भाखे सब साधा ने भक्ति करो सदीव
हीलना निन्दना मत कोई करज्यो चरमशरीरी जीव
एवन्ता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में ॥

भगवान् ने फरमाया— हे आर्यो, मुनिप्रवरो, तुम स्थविर हो, अनुभवी हो, एवन्ता मुनि बालक है मगर उसकी प्रकृति बड़ी सरल है, विनयपूर्ण है। उसके जीवन में कोई बनावट नहीं है, दंभ नहीं है, दिखावा नहीं

राजकुमार अतिमुक्त खेल छोड़ कर श्री गौतम गणधर से बाल-सुलभ जिज्ञासावश प्रश्न करते हुए

अतिमुक्त श्री गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ कर अपने महलों में भिक्षा के लिए लाते हुए

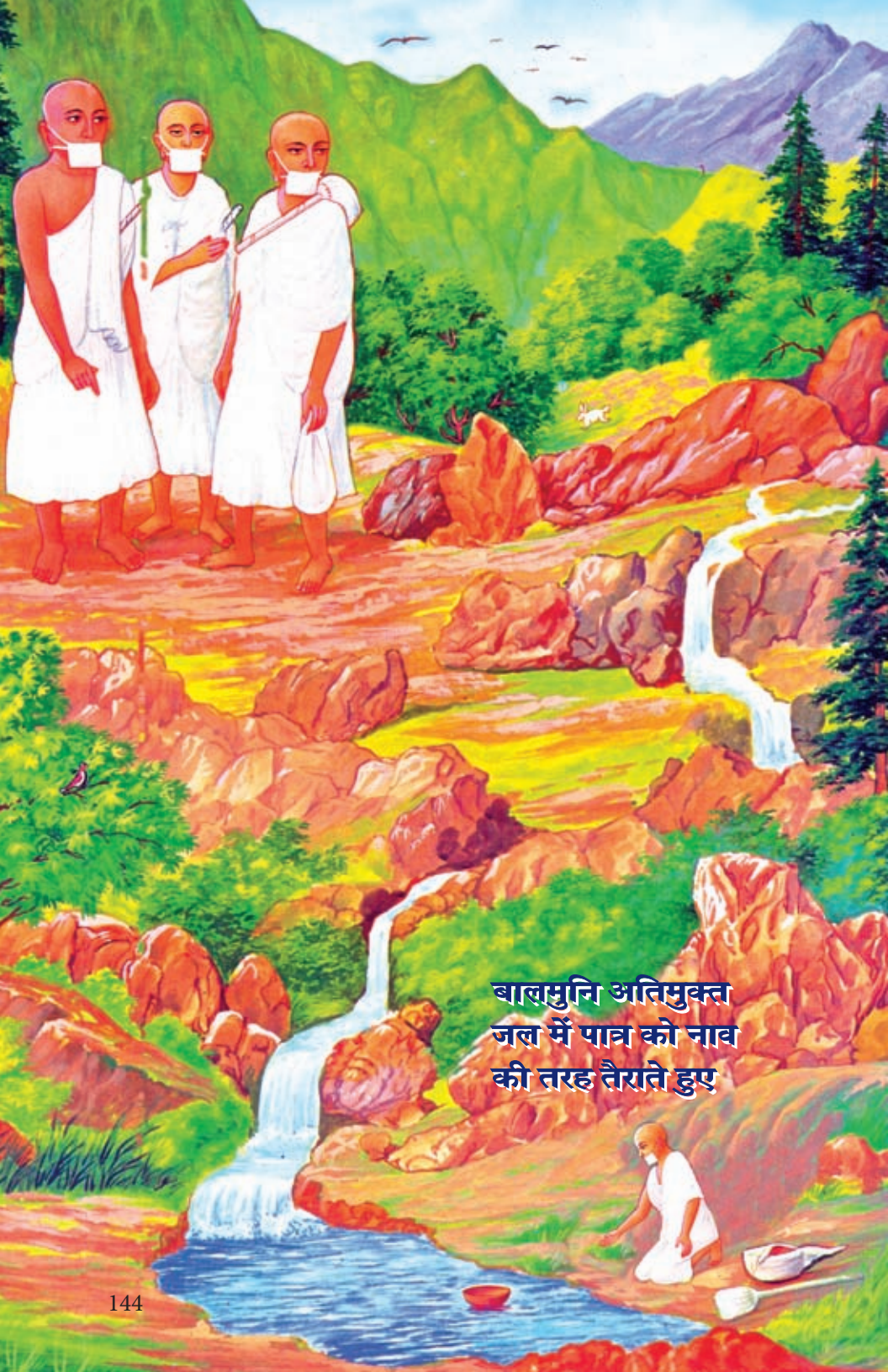

बालमुनि अतिमुक्त
जल में पात्र को नाव
की तरह तैराते हुए

है। वह एक सहज साधक है। वह इसी भव में मोक्ष पहुंच जाएगा, इसलिए तुम उस सच्चे संत का मजाक मत उड़ाओ, उसका अपमान–उपेक्षा मत करो। बल्कि उस छोटे संत को संभालो। खुशी-2 उसे तैयार करो, Trained करो। उसकी आवश्यकताओं को देखते हुए आहार-पानी का प्रबंध करो। वह तो चरम शरीरी मुनिराज है। तुम्हें जल के अदृश्य जीवों की सुरक्षा का तो ख्याल आ गया, मगर एक बालक को अकेले छोड़ने पर उस पर क्या बीतती है, उसका ख्याल नहीं रहा। एकेन्द्रिय जीवों की तुलना में तुम्हें पंचेन्द्रिय की देखभाल करनी चाहिए थी।

वीतराग प्रभु का संदेश सुनते ही मुनियों को अपनी त्रुटि का अहसास हुआ। वे एवन्ता मुनि को लेकर आए और उसके बाद उसकी निगरानी में तत्पर हो गए। बड़ी प्रसन्नता से उस मुनि की हर ज़रूरत को पूरा करते। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे बड़े-2 मुनियों की सेवा महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही छोटे-2 नवदीक्षित मुनियों की सेवा भी महत्त्वपूर्ण है। ये छोटे मुनिराज ही कल आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी बनने वाले हैं। ये कुल-गण और संघ के कर्णधार बनेंगे। जब ये ख्याति प्राप्त और उच्च पदासीन हो जाएंगे, तब इनकी सेवा करना आसान हो जाएगा। मगर वास्तविक सेवा तो इस उम्र के मुनियों की है, जिन्हें हर दिशा से संरक्षण की ज़रूरत होती है।

भगवान् ने नवदीक्षितों की सेवा को कर्म-निर्जरा का बहुत बड़ा साधन माना है। बड़े तो खुद ही संभले होते हैं। बड़े गलती करने से बचते हैं पर छोटे तो गलती भी करेंगे, उनकी छोटी-2 गल्तियों की उपेक्षा भी करनी है तो उन गल्तियों का परिष्कार भी करना है, साथ ही उन्हें किसी तरह के अभाव का अनुभव नहीं होने देना।

समय आने पर एवन्ता मुनि को छेदोपस्थानीय चारित्र दिया गया और धीरे-2 तो एवन्ता मुनि इतने परिपक्व हो गए कि ग्यारह अंगों के ज्ञाता बने, लंबी-2 तपस्या की। गुणरत्न संवत्सर नामक तप की आराधना की और अनेक सालों तक विशुद्ध संयम का पालन किया। जैसे कि भगवान् ने फरमाया था, उसी ढंग से उन्होंने विपुलाचल पर्वत

पर संथारा किया, केवल-ज्ञान पाया और मोक्ष में पधारे। इस प्रकार पंद्रहवें अध्ययन का विषय पूर्ण हुआ और सोलहवें अध्ययन में वर्णन है कि बनारस नगर के राजा अलक्ष ने भगवान् महावीर के चरणों में दीक्षा ली तथा अनेक साल की संयम साधना से केवल-ज्ञान पा मोक्ष प्राप्त किया।

इस तरह आज छठे दिन छठा वर्ग पूर्ण हुआ।

अब हमारी संवत्सरी अति निकट है। कल-2 का दिन शेष है। अब हमें दोनों दिन अधिक से अधिक भाव और चाव से धर्म-आराधना करनी है। हम और आप धन्य हैं, जो पर्यूषण पर्व का भरपूर लाभ ले रहे हैं। आप परिवार सहित लाभ लें, यही निवेदन हैं

जय जिनेन्द्र!

सातवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– तूने पायल है छनकाई

आओ जीवन भेंट चढ़ाएं, सुनकर आगम की शिक्षाएं,
किया मुनियों ने जो बलिदान, उन्हीं पर हम भी हों कुर्बान ॥

1. राज्य सुख वैभव छोड़ा, त्याग से नाता जोड़ा,
साधना पथ पर आए,
औ मुनिवर जी, अंत में सिद्धगति को पाएं, सुनकर...॥

2. मुनि गजसुकुमाल हमारे, पड़े सिर पर अंगारे,
क्षमा का भाव न भूले,
वो मुनिवर जी, कैसे वह चारित्र भुलाएं, सुनकर...॥

3. मुनि बने अर्जुनमाली, सही चोटें और गाली,
कर्म की क्षपणा मानी,
ओ मुनिवर जी, किसी पर क्रोध न मन में लाएं, सुनकर...॥

4. मुनि एवन्ता प्यारे, लगाई नाव किनारे,
वीर भगवन् जी बोले,
वो मुनिवर जी, इसी भव मुक्ति पुरी में जाएं, सुनकर...॥

5. रानियां श्रेणिक नृप की, साधना पथ पर लपकी,
हार थे तप के पहने,
ओ सतियां जी, पावन जिन शासन चमकाएं, सुनकर....॥

6. पर्व पर्यूषण आया, प्रेम संदेश है लाया,
गले से मिल लो सारे,
ओ श्रावक जी, सच्चा पावन पर्व मनाएं, सुनकर....॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के सातवें वर्ग व आठवें वर्ग के पाँच अध्ययनों के मूल पाठ की वाचना करनी है।)

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना, पूज्य गुरु भगवंतों को वंदना एवं भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र।

जैन समाज पुण्यशाली समाज है, जिसे प्राचीनतम संस्कृति, नवीनतम चिंतन तथा सदाकालीन साधना की विरासत हासिल हुई है। पर्यूषण उन्हीं बहुमूल्य उपलब्धियों का प्रमाण-पत्र है। इसको मनाने का मतलब है— हमने इतिहास का सम्मान किया है, अपने भविष्य का निर्माण किया है तथा अपने वर्तमान को प्राणवान् किया है। पर्यूषणों को मनाने की विधि कषाय-विजय, तन-मन की तन्मयता, त्याग-तपस्या, सामायिक-पौषध, आगम-वाचन और श्रवण है। इसे मनाने के लिए न हमें दीए जलाने होते, न लड़ियां लगानी होती, न रोली सजानी होती, न पटाखे बजाने होते और न गुलाल तथा रंग लगाने होते। पर्यूषण मनाने का तरीका है— आडम्बर घटाना तथा संवर बढ़ाना। जैन समाज हज़ारों सालों से अपने इस पवित्र पर्व को सादगी से मनाता आया है। इस परम्परा की हमें सुरक्षा करनी है। जैसे कि कल सवंत्सरी है। कल सबके व्यापारिक प्रतिष्ठान बंद रहें, बच्चों को स्कूल-कॉलेजों से अवकाश लेना है, ऑफिस जाने वालों को छुट्टी लेने की कोशिश करनी है। सारे कस्बे को पता लगे कि आज जैनों का सर्वोत्कृष्ट त्यौहार है, इसीलिए ये पूर्णतः छुट्टी पर हैं। किसी घर खाना न बने, चूल्हा न जले। बच्चा-2 पौषध लेकर

बैठे और ये जाने कि भगवान् महावीर कौन थे तथा उनकी कृपा से कितने-2 भव्य प्राणी पार हुए थे।

जिस प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि और श्री कृष्ण जी की गाथाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, उसी प्रकार भगवान् महावीर तथा राजा श्रेणिक की ज़िंदगी भी परस्पर गुंथी हुई है। यद्यपि जन्म की दृष्टि से ये एक वंश में पैदा होने वाले नहीं थे, पर भावों की दृष्टि से ये एक-दूसरे के काफी करीब थे। भगवान् महावीर तो वैशाली गणतंत्र के अंतर्गत क्षत्रिय-कुंडग्राम के अधिपति सिद्धार्थ के दूसरे सुपुत्र थे जबकि श्रेणिक मगध साम्राज्य के बाहीक-वंशी प्रसेनजित के ज्येष्ठ पुत्र थे। श्रेणिक को बचपन में तो पिता का पूर्ण संरक्षण और समर्थन मिला, मगर बाद में उसकी सौतेली माँ चिलाती के दबाब में प्रसेनजित ने श्रेणिक की उपेक्षा करनी शुरु कर दी। इसे सत्ता से दूर रखने के मंसूबे से कई ऊल-जलूल परीक्षाएं भी ली, जिनमें श्रेणिक खरा उतरा। लेकिन जब उसने भांप लिया कि अब तेरे चारों ओर साजिशों के जाल बिछाए जाने वाले हैं और कभी भी तेरा खात्मा हो सकता है, तो वह चुपचाप घर से बाहर निकल भागा। युवावस्था थी, जज़्बा था, भविष्य का vision था, चलता-2 धक्के खाता रहा, एक जगह settle भी हुआ। एक वणिक्-कन्या नन्दा से विवाह भी हुआ। उसी से उसको 'अभय' कुमार जैसे मेधावी पुत्र की प्राप्ति हुई। इधर प्रसेनजित ने शासन की बागड़ोर चिलाती पुत्र को सौंप दी, पर उसकी आतंकपूर्ण प्रवृत्तियों ने प्रजा के नाक में दम कर दिया, महलों का माहौल दहशत से भर गया। प्रसेनजित स्वयं विवश और लाचार हो गया। जीवन-दीप बुझने के करीब था। तब उसे अपने आचरणों पर पछतावा हुआ। जैसे-तैसे खोजबीन करवा कर श्रेणिक को वापस बुलवाया। मरने से पूर्व अपने हाथों से तिलक कर राज्य अधिकार सौंप दिया। पिता के बाद श्रेणिक ने शीघ्र ही राज्य व्यवस्था को दुरुस्त किया। नंदा और पुत्र अभय को बुला लिया। राजगृही राजधानी की प्रतिष्ठा बहाल की। उसका एक सपना था कि मगध और वैशाली दोनों परस्पर निकट आएं तो सारा पूर्वी-भारत उन्नति

कर सकता है, एक शक्ति-केन्द्र के रूप में उभर सकता है। लेकिन वैशाली गणतंत्र सहित देश के अधिकतर राज्यवंश उनके खानदान को बाहीक अर्थात् छोटा मानते हैं। यदि उनकी रिश्तेदारी वैशाली गणतंत्र से जुड़ जाए जो उनकी स्थिति सम्मान-जनक हो जाए। वर्ना ये उन्हें कभी बराबरी का दर्जा नहीं देंगे। इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए श्रेणिक ने गुप्त रूप से वैशाली की दो राजकुमारियों को अपनी ओर आकर्षित किया। उनमें से छोटी चेलना के साथ विवाह कर लिया। चेलना के आने के बाद दो-तरफा लाभ हुआ। पहला— समग्र भारत में श्रेणिक का रुतबा ऊंचा हो गया, दूसरा— चेलना के जरिए श्रेणिक भगवान् महावीर तथा जैन संस्कारों से जुड़ गया। आज और कल दो दिन हम श्रेणिक के परिवार की अंदरूनी समस्याओं तथा आध्यात्मिक छलांगों से रु-ब-रु होंगे। आज सातवें वर्ग में वर्णित तेरह रानियों के मोक्ष-गमन की चर्चा भी होगी तथा आठवें वर्ग में वर्णित दस रानियों में से 4-5 की तपस्याओं का विवरण सुनाया जाएगा। सातवें वर्ग का पाठ अति संक्षिप्त है। इसलिए आठवें वर्ग का पूर्वार्ध भी आज की वाचना में सम्मिलित किया जाएगा। सातवें वर्ग की महानायिकाओं के नाम हैं— 1. नंदा 2. नंदवती 3. नन्दोत्तरा 4. नंदसेना 5. मरुता 6. सुमरुता 7. महामरुता 8. मरुदेवा 9. भद्रा 10. सुभद्रा 11. सुजाता 12. सुमना 13. भूतदत्ता।

इनकी दीक्षा की पूर्व भूमिका अर्थात् Back Ground लगभग वैसी ही है जैसी श्री कृष्ण महाराज की पद्मावती आदि पटरानियों की है। जबसे श्रेणिक भगवान् के सान्निध्य में आया था, उसे अपने अतीत की कठोर घटनाएं याद आती, जो उसे झकझोर जाती थी। एक Night-Mare बनकर उसकी नींद और चैन को छीन लेती थी पुराने वक्त की क्रूरताएं। जब शिकार, भीषण हिंसा, अत्याचार उसकी जीवन शैली के अंग रहे थे। आज तो जीवन लगभग सारा बदल चुका था। दृष्टि में अद्भुत परिवर्तन हो चुका था। पर भूत काल उसे Haunt कर जाता था। एक दिन प्रभु से उसने पूछ ही लिया— 'प्रभो, इस ज़िंदगी के

बाद मेरी आत्मा का क्या होगा।' प्रभु ने फरमाया था— राजन्! तेरी आत्मा प्रथम नरक की यात्रा करेगी। वहाँ 84 हजार वर्ष गुजार कर फिर इस भरत क्षेत्र में, उत्सर्पिणी काल के पहले तीर्थंकर बनने का गौरव तुम्हें मिलेगा। तुम धर्म के आदि-कर्ता बनोगे। भगवान् महावीर की घोषणा से राजा श्रेणिक संत्रस्त भी हुए, विश्वस्त भी। उन्होंने अपने जीवन की एक दुर्बलता का अध्ययन किया। मैं सब कुछ जानते-समझते हुए भी गृहस्थता का त्याग कर महाव्रती नहीं बन सकता।

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न हो, इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके, यही विडम्बना है जीवन की ॥"

तज्ज्ञानं ज्ञानमेव न भवति यस्मिन् विभाति रागादि गणः।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिः दिनकर-किरणाग्रतः स्थातुम् ॥

मैं उस ज्ञान को ज्ञान नहीं मान सकता जिसके रहते हुए राग-द्वेष आत्मा को जकड़े रखें। सूर्य की किरणें होंगी तो अंधकार नहीं ठहर पाएगा। सच्चा ज्ञान होगा तो संसार का राग बांध नहीं सकेगा। अधिकतर लोगों की समस्या ये है कि औरों को रास्ता दिखाते-2 खुद रास्ता भूल जाते हैं। गांव के एक बनिये के घर में बिल्ली आने लगी और मौका देखकर घर का सारा दूध पी लेती। बणिया परेशान हो गया। एक दिन उसने बिल्ली पकड़ ली और घर से दूर छोड़ आया। मगर जैसे ही वह घर पहुंचा, बिल्ली उससे पहले पहुंच चुकी थी। बणिया उसे गांव के बाहर नदी के पार एकांत स्थान में छोड़ आया। पर आश्चर्य ये कि जैसे ही बणिया घर गया, बिल्ली आगे ही खड़ी मिली। तंग आकर उसने बिल्ली पकड़ ली और दिल्ली ले गया। उसे भीड़ में कहीं छोड़ दिया। उस दिन बणिया दिल्ली में ही रूक गया। अगले दिन सेठानी से फोन पर पूछा-बिल्ली पहुंच गई क्या? सेठानी ने कहा— ये तो कल ही वापस आ गई थी। बणिए ने कहा— उस बिल्ली से कह दे कि मुझे वापस

घर ले जाए। मैं दिल्ली में रास्ता ही भूल गया हूँ। कुछ ऐसी ही स्थिति राजा श्रेणिक की हो रही थी, फिर भी उसकी भावना तो अच्छी थी। उसने सोचा-क्या ही अच्छा हो, मैं उन आत्माओं की मदद करुं, जो मज़बूरी में संसार में अटकी हुई हैं। इस भावना को साकार करने के लिए राजा श्रेणिक ने नगरी में घोषणा करवा दी कि जो नर-नारी भगवान् महावीर के चरणों में दीक्षित होना चाहता हो, मैं उसके पीछे की प्रत्येक जिम्मेदारी का वहन करुंगा। राजा की इस घोषणा का प्रजा पर तो Positive प्रभाव आया ही, राजमहल भी इस घोषणा से अछूते नहीं रहे। बल्कि वहाँ तो अध्यात्म-क्रांति का शंख बज उठा। उपर्युक्त 13 महारानियों ने उस अवसर का लाभ उठा दीक्षा ग्रहण की। इन 13 साध्वियों की संयम पर्याय 20 साल की रही। इन 13 महासाध्वियों का वर्णन करते हुए श्री अरविंद जी ने लिखा हैः—

इक नगरी राजगृही सुन्दर, राजा श्रेणिक का शासन है
महावीर प्रभु के चरणों में, राजा ने किया निवेदन है
हे भगवन्, अगला भव मेरा, कृपा करें बतलाएं आप
अगला भव नरक तुम्हारा है, पर मत करना इसका संताप
कालान्तर में तीर्थंकर बन, चमकाओगे तुम जिन शासन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
सुनकर गंभीर हुए श्रेणिक, नगरी में घोषणा करवाई
दीक्षार्थी के परिवार का अब, दायित्व हूँ लेता मैं स्थायी
सुन इसको झट तैयार हुई, नंदा आदि तेरह रानी
संसार छोड़ संयम धारा, बन गई मुक्ति की दीवानी
वैराग्य लहर से आ जाता, आत्मा में इकदम परिवर्तन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

अब हम आठवें वर्ग की ओर बढ़ते हैं। इस वर्ग में दस अध्ययन हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैंः—

1. काली, 2. सुकाली, 3. महाकाली, 4. कृष्णा, 5. सुकृष्णा, 6. महाकृष्णा, 7. वीरकृष्णा, 8. रामकृष्णा, 9. पितृसेन-कृष्णा तथा दसवीं महासेन-कृष्णा।

अंतगड़ सूत्र में इन दस महासतियों की दीक्षा के बाद दीर्घ तपस्याओं का वर्णन किया हुआ है। परंतु इन्होंने किन हालातों में, कब और क्यों दीक्षा ली, इसका वर्णन यहाँ नहीं है अपितु निरयावलिया नामक आठवें उपांग में है। वहाँ राजा श्रेणिक के जीवन का तथा मृत्यु के संगीन हालातों का चित्रण भी है, तो उसके पुत्र कोणिक की कुछ काली करतूतों का पर्दाफाश भी किया हुआ है। उस पृष्ठ-भूमि को बिना जाने हमें इन दीक्षाओं की हकीकत का सही स्वरूप समझ नहीं आएगा। इसलिए आओ, सारे घटना-चक्र का पहला सिरा पकड़ लें।

चेलना से शादी के बाद राजा श्रेणिक की एकमात्र चिंता थी कि इसकी गोद से पुत्र जन्मे और उसे मैं मगध के भविष्य का संरक्षक बनाऊं। उसे अपने पिता का पुराना कड़वा अनुभव था कि एक अकुलीन कन्या से विवाह करके उसने अपने कुलीन पुत्र की अर्थात् मेरी उपेक्षा की थी और सौतेली माँ के नालायक पुत्र को सिर चढ़ा लिया था। मैं क्षत्रिय-कन्या की संतान को राज्य दूंगा। यों तो बड़ा बेटा अभय कुमार योग्य है पर यह एक वणिक् माँ की संतान है, इसलिए इसे न तो प्रजा राजा के रूप में स्वीकारेगी, न मल्लवी-लिच्छवी गणतंत्र के राजे-महाराजे इसको सम्मान देंगे। और असली बात ये है कि यह खुद ही गद्दी का स्वामी होने से कतराता है। इन परिस्थितियों में चेलना से उत्पन्न पुत्र ही सिंहासन के लिए उपयुक्त रहेगा। और एक दिन राजा को ये शुभ सूचना मिल ही गई कि चेलना को उम्मीद बंध गई है। वह उस दिन की प्रतीक्षा में था, जब रानी की कुक्षि से उत्पन्न पुत्र को वह प्यार से चूमेगा। लेकिन इस बीच तो कुछ और ही हो गया। रानी चेलना के कोमल चित्त पर कुछ क्रूर-कठोर विचारों का कब्जा हो गया। पहले पहल तो उसे मांस के प्रति रुचि बनने लगी, फिर यह रुचि मानव-मांस की ओर बढ़ी। बढ़ते-2 अपने

पति के मांस के प्रति मुड़ गई। उसने उन विचारों को छिटकने की हजार-2 कोशिश की लेकिन हर बार वह विचार और सशक्त होकर उसके मन पर हावी हो जाता। इन विचारों से जद्दोजहद करते हुए चेलना हार गई। उसने अपनी विचारधारा का मूल कारण ढूंढने की कोशिश की और इस कोशिश में वह एक गलत निर्णय ले बैठी। उसने सोच लिया कि ये बुरा विचार कब मेरी चेतना पर आया तो याद आया कि जबसे मेरी कुक्षि में नया जीव आया है। उस नारी को ढूढंना चाहिए था कि ये दुर्विचार मेरे मन के इस धरातल से आया है, पर उसने उस Time को महत्त्वपूर्ण मानकर अपने आपका बचाव कर लिया। उसने स्वयं को समझा लिया कि ये बुरा भाव तेरे मन की उपज नहीं है बल्कि कुक्षि में आने वाले प्राणी की देन है। इस तरह अपने को Justify कर लिया। उसने ये भी कल्पना कर ली कि यह गर्भस्थ जीव अपने पिता पर भारी रहेगा। इसलिए इसे खत्म करवा दूं। उसने गर्भपात के कुछ छोटे-मोटे गुप्त उपाय भी किए पर न तो गर्भ गिरा और न दुर्विचार खत्म हुए। विचारों का तुमुल-चक्र उसके तन-मन को झिंझोड़ने लगा। तन दुर्बल हो गया, मन उदास। एक दिन राजा श्रेणिक ने उसकी उदासी देखी तो पूछा– देवी, इन खुशियों की खबरों के बीच तू इतनी उदास क्यों है? रानी हिचकिचाई पर राजा ने इसरार[1] किया तो मन की बात उगल दी। राजा इस ख्याल को सुनकर अचंभे में आ गया कि इतनी धर्म-परायण रानी को ये क्या सूझा है। फिर भी रानी की मनोभावना पूर्ण करने के लिए अभय कुमार की सहायता से कुछ गुप्त तैयारियां की। रानी को ऐसा महसूस कराया कि राजा के जिस्म का मांस काटा जा रहा है, जबकि वहाँ सब कृत्रिम खाद्य-पदार्थ लगाकर काटे गए थे। रानी को वो पदार्थ खिला दिए और मन की व्यग्रता शांत हो गई। उसके बाद रानी यों तो संतुष्ट रही पर अपने गर्भस्थ शिशु के प्रति उसकी शंका पहले की तरह बनी रही। उसी शंका के तहत उसने निर्णय

---

1 आग्रह

कर लिया कि मेरी जो संतान होगी, उसे पैदा होते ही नगरी से बाहर फिंकवा दूंगी। वहाँ वह जीव निष्प्राण हो जाएगा। मुझे हत्या का पाप भी नहीं लगेगा। सवा नौ माह के गर्भकाल के पश्चात् चेलना ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस समय राजा श्रेणिक तो किसी शुभ समाचार की प्रतीक्षा कर रहा था। पर रानी चेलना अपनी खास दासी के साथ सांठ-गांठ कर रही थी। उसने नवजात शिशु को कपडे में लपेटा और दासी को सौंप दिया और कह दिया कि इसे गुप्त स्थान पर फैंक आ। दासी बालक को एक कुरड़ी पर फैंक कर आ रही थी कि राजा श्रेणिक उत्सुकता-जिज्ञासावश महल में आ गए। उन्होंने महलों की विश्वस्त दासी से पूछा-रानी चेलना के क्या समाचार हैं। दासी कोई सही जवाब नहीं दे पाई। राजा ने आग्रह तथा फटकार के साथ पूछा तो उसने हर घटना राजा के सामने बयान कर दी। राजा के तो होश उड़ गए। क्या ऐसे कुकृत्य भी राजमहलों में हो सकते हैं, क्या कोई माँ अपने ही कलेजे को यों फिंकवा सकती है। अधिक कुछ सोचता, उससे पहले ही वह उस दासी को लेकर उस कुरड़ी पर पहुंच गया, जहाँ उसकी आशाओं का सितारा ज़िंदगी और मौत की जंग लड़ रहा था। बच्चा रो रहा था। राजा ने उसे अपने हाथों में लिया। प्यार से चूमा। पर बालक देर तक रोता ही रहा। श्रेणिक को रोने का कारण समझ नहीं आया। उसे महलों में ले आया। रानी को बेटा सौंपा, काफी समझाया। रानी अपनी गलती स्वीकार कर लेती है। पर बालक का रोना बंद नहीं हुआ। श्रेणिक ने बच्चे के संपूर्ण शरीर को गौर से देखा तो पाया कि उसकी छोटी अंगुली पर घाव बन गया था, जिसमें मवाद पड़ गई थी। शायद किसी मुर्गे जैसे पक्षी ने चोंच मार दी हो। ममता से लबरेज श्रेणिक ने बच्चे की अंगुली अपने मुंह में ली, मवाद चूसी और एक तरफ थूक दी। बच्चा चुप हो गया। उस अंगुलि के निशान के कारण उस बालक का घरेलू नाम पड़ गया कोणिक तथा असली नाम था— अशोक चंद्र। बाद में कोणिक नाम ही लोगों में प्रचलित रहा।

आओ सारे कथा प्रसंग को गाने की शक्ल में ले आएंः—

रानी ने गर्भ किया धारण, कुछ क्रूर बने मन के परिणाम
पति के शरीर का मांस चखूं, इच्छा ने जीना किया हराम
दिन रात ही घुलती जाती है, पूछा नृप ने क्या कारण है
जो है इच्छा होगी पूरी, हर कष्ट का यहाँ निवारण है
सब बात बताई राजा को, अश्रु से भीगे है लोचन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥
श्रेणिक ने पुचकारा उसको, और समाधान करवाया है
बेटा जन्मा तो रानी ने, कुरड़ी पर ही फिंकवाया है
राजा को पता चल जाता है, तत्काल उठा कर लाते हैं
अंगुलि को जख्मी देखा तो, उसे चूस शांति पहुंचाते हैं
रानी को डांटा समझाया, और शुरु किया लालन पालन
जिनवाणी के सुनने से ही, भव-2 के कट जाते बंधन ॥

महारानी चेलना यों तो धर्मनिष्ठ महिला थी, पर समय-2 पर ऐसा व्यवहार कर जाती थी, जो धर्म के विरुद्ध होता था। कोणिक को लेकर भी उसने ऐसा ही किया। अपने पति-प्रेम में वह इतनी उलझ गई कि पुत्र-प्रेम को भुला बैठी। अपने पुत्र को दूध पिला रही होती, लोरी दे रही होती, झूला झुला रही होती, तब यदि श्रेणिक वहां आ जाता तो बच्चे को एक तरफ कर देती। यों कहिए कि एक तरफ पटक देती। कोणिक के बाल मन (Child Psychology) में अस्फुट संस्कार बनने लगे कि ये आदमी जब भी आता है, मेरा सुख छिन जाता है। यह आदमी मेरा शत्रु है। इस प्रकार की पितृद्वेष-ग्रंथि जिसे इडिपस (Oedipus Complex) कहते हैं, उसके अवचेतन मन में बचपन में ही बन गई और बाद में वह उग्रतर होने लगी। उसे अपने पिता जी का कोई भी काम अच्छा नहीं लगता। और बड़ा हुआ तो राज्य-सिंहासन की ओर ललचाई नज़रों से देखने लगा। श्रेणिक उसके स्वभाव और व्यवहार को देखता तो बड़ा दुखी होता। उसकी वर्षों से एक तमन्ना

थी कि चेलना के बड़े पुत्र को मगध का सम्राट् बनाऊं। पर यह तो उद्दण्ड और विद्रोही तेवर लिए तना रहता है। जबकि उसके सगे छोटे भाई-हल्ल और विहल्ल पिता जी की पूरी संभाल करते थे। कुछ और भी राजकुमार थे, जो कोणिक के Influence में थे। कोणिक उनका Hero था। कोणिक की एक इच्छा और थी कि वैशाली की शक्ति को क्षीण कर मगध को उससे उच्चतर, समृद्धतर बनाऊं। जबकि श्रेणिक ने अपने राज्याधिरोहण के प्रारंभ से ही वैशाली के साथ मैत्री स्थापित की, संबंध जोड़े और परस्पर मिलकर चलने का प्रयास किया। कोणिक को ये बातें कतई नहीं सुहाती थी। उसने अपने दस सौतेले भाइयों-काल, सुकाल, महाकाल आदि को पटाया, लालच दिया और एक दिन अपने पिता महाराज श्रेणिक को गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। खुद मगध का साम्राज्य कब्जे में कर लिया तथा कुछ-2 इलाके अपने दस भाइयों में बांट दिए।

श्रेणिक को सताने में उसे आनन्द आने लगा। वह उसको प्रतिदिन सौ कोड़े लगवाता था। श्रेणिक उन जुल्मों को अपनी ही अज्ञात भूलों का परिणाम मान कर सह लेता था।

चलते-2 शाम हो गई, सारी उम्र तमाम हो गई,
बेगानों से नहीं ज़िंदगी, अपनों से बदनाम हो गई।
किसकों दर्द सुनाएं अपना, शिकवा गिला करें तो किससे,
जिनको बिठलाया सिर माथे, उनसे नींद हराम हो गई ॥

कोणिक को अपने काम का पछतावा कभी नहीं हुआ, पर एक दिन ऐसा भी आया जब उसे भी अपनी हकीकत मालूम हुई और उसके विचारों की दिशा बदली। एक दिन वह अपनी माँ चेलना के पास आया, चरणों में मुकुट झुकाते हुए कहने लगा— माँ, मुझे अपना आशीर्वाद दे, तेरा पुत्र मगध का सम्राट बन चुका है। चेलना के मन में लंबे अरसे से उमड़ती-घुमड़ती वेदना लावा बनकर फूट पड़ी। उसने उसे बहुत लताड़ा। कहने लगी— मैं तेरे मुकुट पर थूकती हूँ। जिस

पिता ने तुझे असीम प्यार से पाला, उसी के प्रति तूने इतना क्रूर रवैय्या अपनाया। मैं अपनी करतूत बता नहीं सकती। पर इतना ज़रूर है कि मैंने जब-2 तुझे खत्म करना चाहा तब-2 तेरे पिता ने तुझे बचाया था। तेरा हर सांस इनके रहम का ऋणी है। उसके दिल का दर्द भजन के ज़रिए सुनें:—

तर्ज:— चांदी की दीवार ना तोड़ी

डाल पिता को कैद में बंदी, ताज को सिर पर धारा है।
धूल पड़े तेरे शासन पर, तू पापी हत्यारा है ॥

1. मैंने चाहा तू मर जाए, बहुत तरीके अपनाए,
नहीं बसाई पार मेरी अब, रोज़ कलेजे को खाए,
सच्चा था वह सपना जिसमें, मुर्दे-2 दिखलाए,
बेटा लूटे मौज-बहारें, सड़ता बाप बेचारा है ॥

2. कुरड़ी पर फैंका था मैंने, दिल उनका भर आया था,
स्वयं उठाया गोद में अपनी, और तुझे दुलराया था,
घाव चूस कर दर्द मिटाया, मुझे बहुत धमकाया था,
उस कोमल दिल पूज्य पिता को, मिली अंत में कारा है ॥

3. बचपन से यौवन तक उन से, दूर तुझे रखना चाहा
उनके निर्लोभी निर्भय मन को ये नहीं बिल्कुल भाया,
स्वयं खिलाया स्वयं पढ़ाया अपने हाथों से ब्याहा,
हाय, प्यार का कर्जा उनका, तूने खूब उतारा है ॥

4. अभय, मेघ और नंदीषेण सब, बने मुनि संयम धारी
हल्ल विहल्ल को हार मिला और, सेचानक था मनहारी
राज्य तुझे तो मिलना ही था, तब क्यों तेरी बुद्धि मारी
दस भाइयों में थोड़ा-2, किया राज्य बंटवारा है ॥

5. नहीं चैन से सो पाएगा, देती हूँ अभिशाप तुझे
खानदान घर को और फिर ये, खा जाएगा पाप तुझे

नरक मिलेगी मरकर जीते, जी घेरें संताप तुझे,
हो जा इन आंखों से ओझल, क्यों फूटा माथा मारा है ॥

जैसे ही चेलना ने हर घटना को बयान किया, कोणिक की रूह कांप गई। उसे असलियत का पता ही अब चला। कुछ लोग अज्ञान में उलझे रहते हैं।

एक पिता अपने जवान बेटे को डॉक्टर के पास लाया। कहने लगा- डॉक्टर सा०! देखो, मेरे बेटे की दोनों टांगे नीली पड़ गई। डॉक्टर ने गौर से देखा। कहने लगा— 'ये serious case है। पैर काटने पड़ेंगे।' डॉक्टर ने उसकी टांग काट नकली लकड़ी की टांग लगा दी। कुछ दिन बाद फिर पिता बेटे को लेकर आया। बोला— डॉक्टर सा०! ये तो और भी गंभीर बात हो गई। लकड़ी की टांग भी नीली पड़ने लगी। डॉक्टर ने अब गौर से देखा तो बोला— अब बीमारी समझ में आई है कि इसकी जींस का रंग कच्चा है और वो उतर जाता है। बिना कारण समझे कितने ही पैर काट दो?

कोणिक अपने पाप का परिमार्जन करने के लिए अकेला ही चल पड़ा। सींखचों को काटने के लिए, हाथ में फरसा लिए जैसे ही वह जेल के निकट पहुंचा, श्रेणिक को आशंका हो गई कि कहीं ये जालिम तेरे शरीर के टुकड़े-2 न कर दे। अपने पुत्र को 'पितृ-घातक' Tag से बचाने के लिए श्रेणिक ने अपने पास छिपाकर रखे ताल-पुट विष को जीभ पर रख लिया और जीवन लीला समाप्त कर ली। कोणिक के लिए ये हादसा सचमुच अप्रत्याशित था। पर निर्जीव को सजीव करने की विद्या उसके पास नहीं थी। काफी देर तक कोणिक रोता रहा। पिता के आकस्मिक निधन का दुःख तो था ही, अपने काले कारनामे भी उसके दिल को नासूर बनकर तड़पा रहे थे। पिता के अंत्येष्टि-संस्कार के बाद उसने राज्य-प्रशासन के सूत्र को संभालने का प्रयास किया, पर राजगृह-वासियों को वह अपना नहीं बना सका। अंत में हार कर उसे अपनी राजधानी ही बदलनी पड़ी और चंपा को शासन का केंद्र

बना लिया। समग्र राज-परिवार भी चंपा में shift हो गया। उसके काल-कुमार आदि दस भाइयों की माताएं भी अपने पुत्रों-पुत्रवधुओं सहित चंपा में आ गई। उसके दो छोटे भाई हल्ल और विहल्ल भी चंपा में रहकर अपना गैर-राजनीतिक जीवन बिताने लगे। उनके पास एक दिव्य हार और चमत्कारी हाथी— जिसका नाम सेचानक था— पिता जी की अमानत के रूप में थे। बड़े शांत-भाव से उनकी जीवन यात्रा चल रही थी, पर राजमहलों को उनकी शांति भी नहीं सुहाई। महारानी पद्मावती ने कहा— मुझे हार और हाथी चाहिए। कोणिक ने अपने भाइयों को दोनों चीज़ें देने को कहा। उन्होंने आनाकानी की तो धमकियों पर उतर आया। हल्ल और विहल्ल के सामने कोई उपाय नहीं रहा तो चुपचाप परिवार और संपत्ति-सहित अपने नाना चेटक के पास वैशाली में चले गए। अपने ऊपर आई मुसीबत बयां की। चेटक ने अपने गणतंत्र के सभी सहयोगियों की मीटिंग बुलाई। सबने निर्णय किया कि हल्ल-विहल्ल दोनों की सुरक्षा की जाए तथा अनावश्यक रूप से ज्यादती पर उतरे कोणिक का मुकाबला किया जाए। शुरु में उन्होंने कोणिक को शांतिपूर्ण तरीके से समझाने का प्रयास किया पर उसकी जिद्द बढ़ती गई। उसका तो बचपन का सपना था कि मैं वैशाली गणतंत्र का नामोनिशान मिटा दूं। आज यह मौका उसे अचानक मिल गया था तो वह क्यों चूकता? उसके पास सैन्य बल था, दस भाइयों का साथ था, चढ़ती जवानी का जोश था, रणनीति का कौशल था, नए शस्त्रास्त्रों का विशाल भंडार था, फिर वह किस बात से डरता? उसने अपनी सारी ताकत युद्ध में झौंक दी। वैशाली के बाहर युद्ध के मैदान में चेटक राजा 9 मल्लवी, 9 लिच्छवी राजाओं को सेना सहित लेकर आ डटा तथा कोणिक भी दलबल सहित युद्ध के लिए आ पहुंचा। यहाँ युद्ध की तैयारी चल रही थी, उधर चंपा नगरी में हर परिवार आशंकाओं, चिंताओं की आग में धधक रहा था। राजभवनों से लेकर झोंपड़ियों तक में अनिष्ट कल्पनाओं की काली छाया पसरी हुई थी। तभी नगर-निवासियों को पता चला कि श्रमण भगवान् महावीर नगरी के

पूर्णभद्र बाग में पधार गए हैं। सबको गहरा आश्वासन मिला। काली, सुकाली आदि दसों रानियां अपने पुत्रों का कुशल-क्षेम पूछने भगवान् की सेवा में पहुंची। उन्हें आशा थी कि शायद भगवान् ये फरमा दें कि तुम्हारे पुत्र सकुशल हैं। परंतु यथार्थ कुछ और ही घटित हो चुका था। पिछले दस दिनों में सेनापति बनकर मैदान में उतरे दसों भाई एक-2 करके चेटक के अमोघ बाणों के शिकार होकर संसार से विदा हो चुके थे, इसलिए भगवान् ने सत्य का उद्घाटन करते हुए फरमा दिया– 'हे देवियों! तुम्हारे पुत्र काल-कवलित हो चुके हैं।' इस भीषण समाचार को सुनकर रानियों के होश उड़ गए। मूर्च्छित होकर ज़मीन पर लुढ़क गई। थोड़ी देर बाद होश आया। एक ही विचार दिलो-दिमाग पर छा गया–

"अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः,
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः"

'हर शरीर मिट रहा है, ये वैभव धोखा देने वाला है,
मौत बिल्कुल बगल में खड़ी है, अब तो धर्म बटोरना है'।

सभी रानियों ने एक निर्णय कर लिया कि हमारे लिए संसार में क्या अनुकूलता बची है, क्या आकर्षण रह गया है। अब तो हमें आत्म-कल्याण की सोचनी चाहिए। आनन-फानन में उन्होंने फैसला ले लिया कि हमें दीक्षा लेनी है और जीवन को सार्थक बनाना है। उनके भावों को भजन में पिरोया है। उन्हें भी गुनगुना लें:–

तर्ज:– ज़िंदगी की न टूटे

कितनी भीषण है आई घड़ी, मौत मुंह बाए सम्मुख खड़ी।
हर तरफ है रुदन की ध्वनि, महल को देखो या झोंपड़ी ॥

1. कितने बलवान रण शूर थे, रूप विद्या से संपन्न थे,
वो पिलाते थे पानी हमें, वो खिलाते हमें अन्न थे,
सोचते-2 रो पड़ी ॥

2. अपना पीहर तजा आ गई, राजा श्रेणिक के रणवास में,
वे भी बेमौत थे मर गए, क्या कमी रह गई नाश में?
बेटों ने जोड़ी टूटी कड़ी ॥

3. आज वो भी नदारद हुए, बेसहारा हुई ज़िंदगी,
दीप सांसों के हैं बुझ गए, आंखों की गुम हुई रोशनी,
सारी राहें हुई संकड़ी ॥

4. है निराशा के अंधकार में, अब तो भगवान् की ही शरण,
अपना वार्धक्य सार्थक करें, करके सयंम औ तप का वरण,
हुई तैयार छोटी बड़ी ॥

अंतगड़ सूत्र में उन्हीं परम वीरांगनाओं के त्याग-तप की तस्वीर खींची हुई है। वे भगवान् से कहने लगी– 'हे प्रभो, आप हमें अपने धर्म संघ में प्रवेश दे दो, हमें महाव्रतों की सौगात बक्श दो, हमें निर्वाण के मार्ग पर चला दो।' भगवान् ने उनकी विशुद्ध भावना, दृढ़ संकल्प एवं निर्विकार चित्त को जाना तो उन्हें चारित्र का संबल प्रदान कर दिया। फिर उन्हें आर्या चंदना के हाथों में समर्पित कर उनकी शारीरिक, मानसिक समाधि तथा संयम-तप के प्रत्येक विधि-विधान की पूर्णता का दायित्व भी सौंप दिया।

काली नामक पहली महासाध्वी ने गुरुणी जी की निश्राय में ग्यारह अंगों का अध्ययन भी किया। महाव्रतों का अप्रमत्त भाव से पालन किया और करते-2 एक दिन ख्याल बना कि मैं राजमहलों में 'रत्नावली' नामक रत्नों का हार पहना करती थी। इस Necklace की एक side में सोलह मोती होते थे तथा दूसरी side में भी 16 मोती। पहले मोती से दूसरा मोती बड़ा, दूसरे से तीसरा मोती बड़ा। इस तरह करते-2 पंद्रहवें मोती से 16वां मोती सबसे बड़ा था। उल्टी side में नीचे सोलहवें से 15वां मोती कुछ छोटा, पन्द्रहवें से चौदहवाँ कुछ छोटा, यों अंत में दूसरे से पहले नंबर का मोती सबसे छोटा होता है। उस नैकलेस के Locket के स्थान पर दो नंबर की मोटाई के 34 मोतियों

का गुच्छा बना होता था। इसके अलावा भी कुछ और विशेषताएं इस हार में होती थी। उस हार के आकार को आधार बनाकर उस साध्वी ने तपस्या करने का मन बना लिया।

साधना पक्ष को समुन्नत एवं उज्ज्वल बनाने वाले दो तत्त्वों को जैनागमों में समय-2 पर चर्चित किया है। एक है संयम, दूसरा है तप। संयम सहज मार्ग है, तप कठिन मार्ग है। संयम हर साधु-साध्वी के लिए आवश्यक है, तप जिससे संभव है, उसके लिए है। संयम सर्वकालिक है, तप यथासमय किया जाने वाला अनुष्ठान है। संयम को उपमा से समझना हो तो कहा जा सकता है कि मनुष्य के शरीर पर पहने हुए वस्त्र हैं संयम तथा तप उन वस्त्रों की गरिमा के अनुरूप पहने हुए आभूषण (जेवर) हैं। वस्त्र पहनना सभ्यता है, आभूषण पहनना समृद्धि है। इसलिए आगम युग में साधु-साध्वी ही अधिकतर तप करते थे, श्रावक कम। साधु-साध्वी तप के द्वारा शरीर की क्षमता को विकसित कर लेते थे। आहार के अभाव में विकारों पर भी शीघ्र विजय मिल जाती थी। एषणा समिति के दोषों का बचाव हो जाता था। स्वाध्याय तथा ध्यान के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था तथा निद्रा-आलस्य आदि से बचाव हो जाता था। आत्मा और शरीर की भिन्नता का साक्षात् दर्शन भी हो जाता था तथा जीवन के अंतिम समय में संथारा पचखने की पूरी तैयारी हो जाती थी। कभी-2 तपस्या से लब्धियों की उत्पत्ति भी हो जाती थी, जो किसी के लिए आकर्षण और किसी के लिए भटकाव का कारण भी बन जाती थी। गीता में तीन प्रकार के तपों का वर्णन मिलता है— 1. मनोविकारों को जीतने के लिए किया गया तप— सात्त्विक तप 2. मान-प्रतिष्ठा, इच्छापूर्ति के लिए किया गया तप— राजसिक तप 3. किसी का अहित, बुरा करने के लिए किया गया तप— तामसिक तप, जैसे राक्षस करते थे, रावण ने किया था। दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट रूप में लिखा है— 1. इस संसार के सुखों की प्राप्ति के लिए तप नहीं करना 2. परलोक के सुखों के लिए तप नहीं करना 3. कीर्ति-वर्ण, शब्द-श्लोक, प्रशंसा-स्तुति के लिए तप नहीं करना 4. केवल कर्म निर्जरा

अर्थात् आत्म दोष निवारण के लिए ही तप करना है। इतना इंतज़ाम होने के कारण जैन साधु और साध्वियों की तपस्या का स्वरूप हज़ारों सालों से अविकृत रूप से सुरक्षित चला आया है।

"पाना है प्रकाश अगर तपो ज्योति जलानी है।
लेना अविचल सहारा है स्तुति जिनवर की गानी है ॥"

काली नामक महासाध्वी ने पहले अपने मन में विचार किया, फिर अपनी गुरुणी चंदनबाला के चरणों में आकर विनती करने लगी- यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं रत्नावली तप कर लूं? गुरुणी-वर्या ने उसे आज्ञा दे दी। तभी से उस महासाध्वी ने रत्नावली तप शुरु कर दिया। इस तप के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें जान लेनी ज़रूरी है— 1. इस तप का पूरा काल एक वर्ष, तीन माह तथा बीस दिन होता है। 2. उन्होंने यह रत्नावली तप चार बार किया। 3. चारों बार की तपस्या तो ज्यों की त्यों रही, पर पारणे के Items में अंतर आता गया। जैसे कि पहली बार के पारणे में दूध-दही, दाल-भात आदि चारों प्रकार का आहार लिया। दूसरी बार की तपस्या के पारणे में दूध-दही-घी आदि विगय नहीं लिए। विगय को आज की भाषा में Animal Product कह सकते हैं। तीसरी बार की तपस्या के पारणे में उन्होंने पात्र, हाथ, कड़छी आदि को लिप्त करने वाली, गीला करने वाली चीज़ें भी छोड़ दी। इन्हें आजकल समझें तो सूखे भुने चने, मुरमुरे, चिड़वा, खाखरे आदि कहा जा सकता है। चौथी बार की तपस्या के पारणे में उन्होंने केवल उबला हुआ अन्न लिया अर्थात् आयंबिल किया। एक तरह से उनकी तपस्या तो तपस्या थी ही, पारणा भी तपस्या बन गया। 4. वे तपस्या के साथ ध्यान का भी पूरा अभ्यास करती थी, मौन रहती थी। अब आइए, उनकी तपस्या का नज़ारा लें। शुरु-2 में उन्होंने व्रत, बेला और तेला किया, फिर आठ बेले किए। इसके बाद एक से लेकर सोलह तक क्रमवार तपस्या की। सोलह करने पर उनका आधा भाग पूरा हो गया। उस पूर्ति पर 34 बेले किए। फिर 16 से 15 यों

वैशाली के बाहर चेटक व कोणिक का घमासान युद्ध जिसमें काली आदि 10
रानियों के 10 पुत्रों सहित एक करोड़ अस्सी लाख सैनिकों की मृत्यु हुई

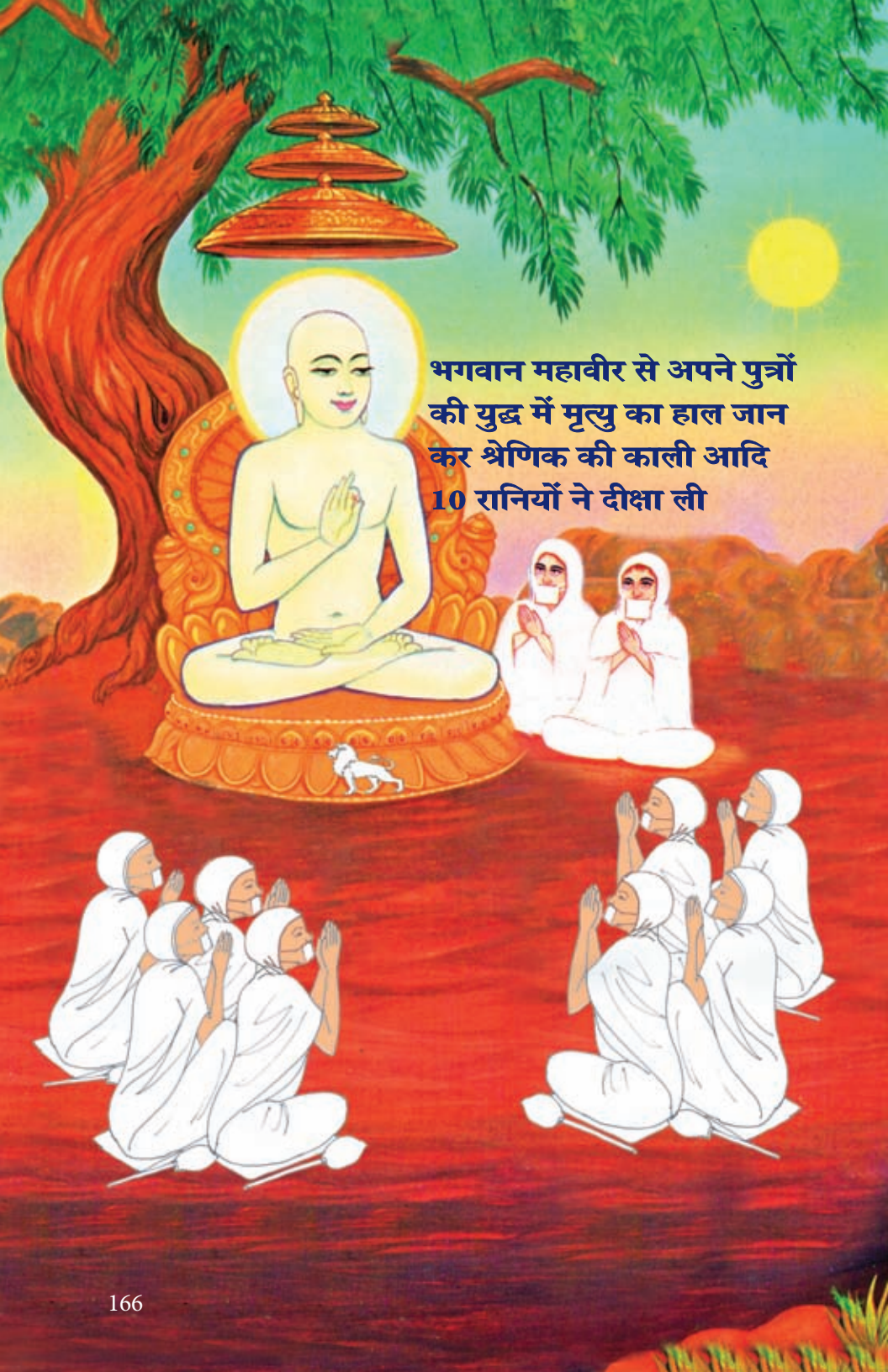

भगवान महावीर से अपने पुत्रों की युद्ध में मृत्यु का हाल जान कर श्रेणिक की काली आदि 10 रानियों ने दीक्षा ली

उतरते-2 एक दिन तक की तपस्या की। फिर आठ बेले करके last में तेला, बेला और व्रत कर ये तप पूर्ण किया। यों कुल मिलाकर चारों प्रकार की रत्नावली तपस्या में पांच साल, दो महीने और अठाईस दिन लगे। तपस्या की पूर्ति पर फिर अपनी गुरुणी आर्या चंदना को सूचना दे दी कि आपकी कृपा से यह तप संपूर्ण हो गया। जैन-शासन की ये व्यवस्था है कि छोटा या बड़ा कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करना हो तो गुरुदेव की आज्ञा ली जाए और पूरा हो जाए तो उनको सूचित किया जाए। इस विनय-प्रतिपत्ति के साथ ही तपस्या निर्जरा का, दोष-निवृत्ति का कारण बनती है। अन्यथा यह अज्ञान कष्ट भी बन सकती है।

अपने संयम पर्याय के आठ वर्षों में काली साध्वी ने रत्नावली तप के अलावा भी अनेक प्रकार की तपस्या की।

तपस्या के कारण लगता था कि उनका शरीर बिल्कुल दुर्बल हो गया, मगर उनका आध्यात्मिक तेज अधिकाधिक जगमगा उठा।

शरीर की आवश्यकता है भोजन तथा आत्मा की आवश्यकता है समता। भोजन नहीं मिला तो शरीर लड़खड़ाने लगा। इसलिए एक बार धर्म, जागरण के महान् क्षणों में उन्होंने निर्णय कर लिया कि अभी मुझ में उठने-बैठने का दम है, मानसिक दृढ़ता और सजगता है। हर कार्य मेरे अधीन है, होश-हवास है। ऐसी स्थिति में संथारा ग्रहण कर लेना चाहिए। अगले दिन अपनी गुरुणी जी से इस विषय में आज्ञा ली और संलेखना-संथारा ग्रहण कर आत्मलीन हो गई। एक महीने में ही घाती कर्म नष्ट हुए, केवल-ज्ञान पा लिया तथा अघाती कर्म नष्ट हुए तो निर्वाण पा लिया। इस प्रकार एक महान् रानी, एक महान् साध्वी को जीवन-लक्ष्य प्राप्त हुआ। जैसे काली नामक साध्वी ने त्याग-तप की निर्धूम ज्वाला जलाई, उसी प्रकार दूसरी सुकाली साध्वी ने भी जलाई। पहली साध्वी के और दूसरी साध्वी के वर्णन-क्रम में बड़ा स्वल्प-सा अंतर है। एक अंतर तो ये कि उनकी तपस्या का नाम रत्नावली था तो इनकी तपस्या का नाम कनकावली था। रत्नावली से कनकावली में अधिक फर्क

वन-विहार का शौक रहा होगा। जैसे आजकल अफ्रीका के जंगलों में जाकर Tourist लोग शेरों की चहलकदमी देखते हैं। उसी प्रकार ये रानियां भी दीक्षा से पहले Wild life के Live show देखकर आनंद लेती होंगी। अब साधना के क्षेत्र में पुराने शौक तो चल नहीं सकते थे, पर उनका रूपांतरण करके उन्हें आध्यात्मिक आयाम दिया जा सकता था और उन्होंने दिया भी।

उन्होंने शेरों की चाल को आधार बनाकर तपस्याएं करने की ठानी। शेर जब मस्ती से चहल-कदमी करता है तो उसका अंदाज़ बड़ा अनूठा होता है। शेर चाहे छोटी उम्र का हो चाहे बड़ी उम्र का, उसका अंदाज़ एक जैसा ही होता है। ये बात अलग है कि छोटा शेर थोड़ी दूरी तय करता है और बड़ा शेर अधिक दूरी तय करता है। शेर की चाल की खास बात ये है कि वह जहां पहली छलांग लगाकर रुकता है, वहीं से अगली छलांग की शुरुआत नहीं करता अपितु वह पहले कुछ पीछे हटता है फिर छलांग भरकर आगे ठहरता है। उस दूसरी छलांग के बाद पुनः पीछे हटकर तीसरी छलांग में लंबी दूरी नापता है। ये style शेर की चाल को रौनकी बना देता है। इन दोनों महासाध्वियों ने अपनी-2 तपस्या का यही अंदाज़ बनाया। महाकाली ने एक दिन की तपस्या से लेकर नौ दिन तक की अधिकतम तपस्या की तो कृष्णा ने एक से बढ़ते-2 सोलह दिन तक तप किया। जैसे एक से नौ किए, ऐसे ही नौ से उतरते-2 एक तक पहुंची, दूसरी एक से सोलह तथा सोलह से एक तक पहुंची। विशेष बात पर ध्यान दें– हर तपस्या इन्होंने Double की। वो इस तरह कि व्रत के बाद बेला, बेले के बाद व्रत और तेला, तेले के बाद बेला और चौला, चौले के बाद तेला और पचौला, ये मजेदार तप संपन्न करने में महाकाली को छह महीने और सात दिन लगे और चार बार पूरा करने में दो साल 28 दिन लगे।

इसी तरह कृष्णा साध्वी को एक बार की तपस्या में एक वर्ष छह महीने 18 दिन लगे और चार बार की तपस्या में छह वर्ष दो महीने बारह दिन लगे।

यहाँ ये भी ध्यान देने की बात है कि जैन धर्म में तपस्या के संदर्भ में जब-2 महीने और साल का उल्लेख होता है, तब-2 एक महीना 30 दिन का और साल 360 दिन का होता है। तपस्या की इस गणना में तिथियों की क्षय-वृद्धि मान्य नहीं रखी गई।

इन महासाध्वियों ने अनेक प्रकार की भिन्न-2 तपस्याएं भी खूब की। जब इनकी दीक्षा क्रमशः दस और ग्यारह वर्ष की हो गई तो अपनी गुरुणी आर्या चंदना से आज्ञा ले इन्होंने संथारा भी कर लिया और अपने आठों कर्मों को नष्ट कर केवल-ज्ञान-पूर्वक मोक्ष में भी गई। आज हम पांचवी महासाध्वी सुकृष्णा जी के तप का जिक्र और कर लें। इनकी तपस्या चार प्रतिमाओं द्वारा संपन्न हुई। इन प्रतिमाओं की खासियत ये है कि इनमें पूर्ण अनशन (आहार त्याग) नहीं होता अपितु गिनती के अनुसार भोजन और पानी का ग्रहण होता था। इसलिए हम इसे ऊनोदरी तप कहना चाहेंगे। पहली प्रतिमा का नाम सप्त-सप्तमिका, दूसरी का नाम अष्ट-अष्टमिका, तीसरी का नव-नवमिका तथा चौथी का है दस-दसमिका है। इन शब्दों से ही पता लग जाता है कि 7x7=49 दिन की पहली प्रतिमा थी। दूसरी 8x8=64 दिन की, तीसरी 9x9=81 तथा चौथी 10x10=100 दिन की थी। इन प्रतिमाओं का विधान होता है कि पहले सप्ताह दिन में एक बार एक दाती भोजन की तथा एक दाती पानी की लेनी है। अगले सप्ताह दिन में एक बार दो दाती भोजन की तथा दो दाती पानी की। यों बढ़ते-2 सातवें सप्ताह में सात दाती आहार, सात दाती पानी की लेनी है। अष्ट-अष्टमिका प्रतिमा में ये क्रम सात की बजाय 8-8 दिन तक चलाया जाता है। आठवें अष्टाह में 8 दाती ग्रहण करनी होती हैं। तीसरी प्रतिमा में 9-9 दिन की बंदिश रखी जाती है तथा नौवें नवाह में 9 दातियां ली जाती हैं। दसवें दशाह में दस दातियां लेने का विधान है। यों ये चारों प्रतिमाएं नौ महीने 24 दिन में पूरी हुई। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त मासखमण, अर्धमास-खमण आदि अन्यान्य तपस्या भी सुकृष्णा साध्वी ने संपूर्ण

की और 12 साल का उज्ज्वल संयम पालकर अंत में कैवल्य पा सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हो गई।

तपस्याओं के लंबे-2 वर्णन सुनकर हमारे तथा आपके मनों में भी तप करने का भाव जागृत हो रहा है। कुछ भाई-बहन कर भी रहे हैं। वे सब साधुवाद के पात्र हैं। हाँ, कल संवत्सरी पर्व है। पर्यूषण के इन आठों दिनों का निचोड़ है। कल कोई भी भाई-बहन, बालक-बालिका वाचना तथा तपस्या से वंचित न रहें। ये सोचना है कि कल हमारी दीवाली है। यदि दीवाली पर दीप न जलें तो घर की बदहाली, बदनसीबी का सूचक होता है, ऐसे ही कल हर घर में पौषध, उपवास, आयंबिल, एकाशना, चौविहार, प्रतिक्रमण आदि के दीपक नहीं जले तो माना जाएगा कि हमने अपने घरों में संवत्सरी नहीं मनाई। कल सूर्योदय के साथ ही आप स्थानक में आ जाएं। सुबह की पहली किरण आपका स्थानक में स्वागत करे। हम आपको पौषध या अन्यान्य तपस्याओं का प्रत्याख्यान करवाएं, आप प्रत्याख्यान करें तो कितना आनंद आएगा? इसी धार्मिक आनंद के मंगल आगमन पर आपको भावपूर्ण आमत्रंण देते हुए जय जिनेन्द्र कहते हैं। अच्छा कल ज़रूर-2 आना और सब को लाना।

जय जिनेन्द्र!

आठवें पर्यूषण दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

भजनः–

तर्जः– धीरे-2 बोल कोई सुन न ले

संवत्सरी पर्व आया है, संदेश ये अपना लाया है।
सब वैर विरोध मिटाइए, आध्यात्मिक शांति पाइए ॥

1. मात्र अहिंसा से है जग का त्राण,
हिंसा से तो है सबका नुक्सान।
महावीर की, अतिवीर की, सबको आवाज़ सुनाइए ॥

2. मन वाणी और काया का जब योग,
जप में लगता, कटते सब ही रोग।
होकर मगन, सच्ची लगन, से माला खूब फिराइए ॥

3. इच्छाओं पर कैसे मिले विजय,
तप करने का ये ही है आशय।
तप साधना, आराधना, में सारी शक्ति लगाइए ॥

4. तप उत्तम है किंतु क्षमा के भाव,
से मिटते हैं आपस के टकराव।
शुभ ध्यान हो, कल्याण हो, मिल जुलकर प्रेम बढ़ाइए ॥

5. बढ़ा-2 कर सत्य शील संतोष,
बनते जाओ सभी तरह निर्दोष।
हो कर्म क्षय, हो आत्म जय, ये पावन पर्व मनाइए॥

(इसके अनन्तर अन्तकृद्दशांग के आठवें वर्ग के छठे अध्ययन से लेकर अन्त तक मूल पाठ की वाचना करनी है। आगम पूरा होने पर अन्त की 7-8 पंक्तियाँ चौकी या पट्टे से नीचे उतर कर, खड़े हो कर पढ़नी हैं तथा श्रोता भी खड़े हो जाएं। इसके बाद ज्ञान के अतिचारों वाला 'आगमे तिविहे' का पाठ बोलें तथा पाठ के अन्त में सभी श्रोताओं को 'मिच्छामि दुक्कड़ं' बोलने को कहें।)

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तथा पूज्य गुरुदेवों को वंदना-नमस्कार करते हुए समागत सभी भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र!

तैयारी और पूर्ति का अपना स्वरूप होता है। तैयारी के दौरान एक प्रतीक्षा होती है, उत्सुकता होती है, एक प्रकार का उफान होता है तथा पूर्ति पर एक संतुष्टि होती है, तृप्ति और आनन्द होता है। हमारे पिछले सात दिन तैयारी के थे। आज का दिन पूर्ति का है, इसलिए आज विशेष खुशी है। जब सात दिन इतनी भव्यता के साथ बीत गए तो आज का दिन और अधिक भव्यता के साथ बीतेगा। इसलिए हम अपनी ओर से, समस्त स्वाध्यायी-बंधुओं की ओर से, पूज्य गुरुदेवों की ओर से तथा जिन-शासन की ओर से आप सबको बधाई देते हैं। आपका क्षेत्र, परिवार, निजी-जीवन सर्वदा, सर्वथा आनंदित-प्रमुदित रहे— यही भावना भाते हैं।

संवत्सरी की व्यापक चर्चा चालू करने से पूर्व अंतगड़ सूत्र के बचे हुए पांच अध्ययनों का विषय प्रस्तुत कर लें।

छठी, सातवीं तथा आठवीं रानियों ने भी अपने-2 पुत्रों की मृत्यु के पश्चात् दीक्षा ली और चित्र-विचित्र प्रकार की तपस्याएं की। इनकी दीक्षा-पर्याय क्रमशः 13, 14 तथा पन्द्रह वर्ष की रही। महाकृष्णा साध्वी ने लघु-सर्वतोभद्र तप किया। वीरकृष्णा ने महा-सर्वतोभद्र तथा रामकृष्णा

ने भद्रोत्तर नामक तप किया। इन तपों को प्रतिमा भी कहा जाता है। इन तीनों प्रकार के तपों का समान Feature ये है कि इनमें 'भद्र' शब्द का प्रयोग हुआ है। भद्र का अर्थ है भला अर्थात् कल्याणकारी। इन तपों को अलग-2 यंत्र के रूप में बनाया जा सकता है, इनका जाप भी हो सकता है। लघु-सर्वतोभद्र में एक-दो-तीन-चार तथा पांच की संख्याओं को इस प्रकार लिखना कि हर पंक्ति को Horizontal या vertical गिनने पर Total 15 बनेगा। यदि इन्हें तिरछे cross करके भी पढ़ें तो जोड़ पंद्रह ही बनेगा। इसी तरह महासर्वतो-भद्र में एक से सात तक की संख्या का यंत्र बनाने पर अंतिम जोड़ 28 बनता है। भद्रोत्तर प्रतिमा या यंत्र में 5-6-7-8-9 तक की संख्याओं का जोड़ 35 आता है। ये यंत्र जैन धर्म के अलावा समग्र भारतीय समाज में प्रचलित थे। इनके संबंध में ये मान्यता थी कि इन यंत्रों को घर के बाहर gate पर लिख दिया जाए तो घर हर प्रकार की बाहरी आपदाओं से मुक्त रहता है। कागज पर लिखकर ताबीज़ में लपेट कर बच्चे के गले में बांध दिया जाए तो बच्चा रोग आदि प्रकोपों से बचा रहता है। राजा की भुजा पर बांध दिया जाए तो उसे युद्ध में विजय मिलती है। घर-परिवार की हर समस्या के निवारण के लिए इन यंत्रों का सहारा लिया जाता था। जैन धर्म में इन यंत्रों का प्रवेश हुआ। कुछ आचार्यों ने इन यंत्रों के लेखन पर, तो कुछ ने इनके जाप पर जोर दिया। परंतु आगम काल में इन यंत्रों का प्रयोग लौकिक समस्या के समाधान के रूप में नहीं करके आध्यात्मिक उत्थान के लिए किया। इन यंत्रों को माध्यम बनाकर तपस्याएं की गई। महाकृष्णा ने लघु-सर्वतो-भद्र में एक व्रत से पचौले तक की तपस्याएं पांच बार की, कृष्णा ने व्रत से लेकर सात दिन की तपस्या 7 बार की। रामकृष्णा ने पचौले से 9 दिन तक की तपस्या 5 बार की। इन तपस्याओं का फिर सबने चार-2 ढंग से पारणा करके उन तपों को चार गुणा कर डाला। पहला तप एक साल, एक महीना तथा दस दिन चला, दूसरा तप दो वर्ष, आठ महीने, बीस दिन चला तथा तीसरा तप दो वर्ष, दो महीने, बीस दिन चला। इन

तीनों महासाध्वियों ने अपनी-2 प्रतिमाओं के अलावा भी नानाविध तप किए और एक-2 महीने की संलेखना धारण कर के केवल-ज्ञान पा मोक्ष-लक्ष्मी का वरण किया।

नौंवी महासाध्वी पितृसेन-कृष्णा ने जिस ढंग से तपस्या की, वह रत्नावली, मुक्तावली की तरह ही थी। उसका नाम 'कनकावली' था। इस तप में रत्नावली के समान एक दिन से 16 दिन की, 16 दिन से वापस एक दिन की तपस्या की जाती है। परंतु प्रारंभिक और अंतिम व्रत-बेले-तेले तथा 8-8 बेले तथा मध्यवर्ती 34 बेलों का प्रावधान इस तप में नहीं था। बल्कि इसमें एक नवीनता थी कि हर तपस्या के बाद एक-2 व्रत भी किया जाता था। बेले के बाद व्रत, तेले के बाद व्रत, चौले के बाद व्रत यों 16 के बाद फिर व्रत; यों हर बड़ी तपस्या के Interval में व्रत का प्रक्षेप था। एक बार के अनुष्ठान में 11½ महीने लगे तो चार बार के अनुष्ठान में तीन साल और दस महीने लगे। अंतिम लक्ष्य मोक्ष इन्हें भी एक माह के संथारे के बाद मिला।

अंतगड़दशांग के अंतिम वर्ग के अंतिम अध्ययन में वर्णित महासेन-कृष्णा साध्वी की तपस्या सचमुच हैरत पैदा करने वाली है। इस तपस्या का नाम आयंबिल-वर्धमान है। 'आयंबिल' अपने आप में विलक्षण तप है, रस विजय का सर्वोच्च प्रतीक है। नमक, मीठा, घी आदि किसी भी बाहरी संयोग या संस्कार के बिना केवल उबला हुआ या भुना हुआ एक अन्न दिन में एक बार लेना आयंबिल तप कहलाता है। इस महासाध्वी ने एक-दो-तीन-चार-पांच-छः यों बढ़ते-2 सौ आयंबिलों की लड़ी बनाई। इससे बड़ा कमाल ये कि हर आयंबिल तप के पारणे वाले दिन उन्होंने उपवास किया। आम तौर पर पारणे का अर्थ तो यही है कि आप कुछ शरीर-पोषक वस्तु खाएंगे, पर इन्होंने तो पानी तक नहीं पीया। इस आयंबिल-वर्धमान तप में चौदह साल तीन महीने और बीस दिन लगे, जिनमें 100 व्रत हुए और बाकी सारा काल आयंबिल में बीता। सत्रह साल की दीक्षा में सवा चौदह साल इस तप में बिता कर भी इन्होंने विराम नहीं लिया। अन्यान्य तप भी खूब किए। इस

तप-अराधना से उनका आभ्यंतर तेज और जगमगा उठा। अंत में, अपनी गुरुणी जी की आज्ञा ले एक माह का संथारा भी किया, केवल-ज्ञान-दर्शन पा सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हुई। कर्मों का अंत करने वाली इस महान् आत्मा सहित 90 अंतकृत् आत्माओं को भावपूर्ण नमन करने के पश्चात् अब हम संवत्सरी महापर्व के इतिहास और परम्परा की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे। इतिहास का सारा Matter हमें कल्प सूत्र से मिलता है तथा परम्परा का Matter जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति से मिलता है। इतिहास भगवान् महावीर के जीवन से संबद्ध है तथा परम्परा काल-चक्र के पहले पड़ावों पर वर्षा के पचासवें दिन की गरिमा से संबद्ध है। पहले इतिहास को समझकर फिर उसे परंपरा से भी जोड़ेंगे तो अधिक आनन्द दायक रहेगा।

भगवान् महावीर ने कहा– मेरा प्रत्येक साधक हर रोज़ प्रातः और सांय प्रतिक्रमण करे। फिर पंद्रह दिन में विशिष्ट पाक्षिक-प्रतिक्रमण करे, 8 पक्खियों के बाद अर्थात् हर चार महीने बाद विशिष्टतर प्रतिक्रमण करे तथा तीन चातुर्मासियों के बाद विशिष्टतम वार्षिक प्रतिक्रमण करे। वही वार्षिक प्रतिक्रमण सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कहलाता है। प्राचीन जैन गणना के अनुसार वर्ष का अंतिम दिन, अंतिम पक्खी तथा अंतिम चौमासी आषाढ़-सुदी पूर्णमासी के दिन आती है तथा नए वर्ष का प्रथम दिन श्रावण-बदी एकम के दिन start होता है। इस शाश्वत नियम के अनुसार सभी साधकों को आषाढ़ सुदी पूनम को आत्माराधना का समग्र अनुष्ठान करना होता है। इसे पर्यूषण कल्प भी कहते हैं। जब भगवान् महावीर ने अपनी साधना प्रारंभ की, तो उन्हें अनुकूल स्थान की उपलब्धि नहीं हुई। वे कल्पातीत थे। अतः उन्होंने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए अपनी पर्यूषण आराधना आषाढ़ सुदी पूनम को न करके एक सप्ताह के लिए Postpone कर दी। फिर अगले सप्ताह भी अनुकूलता नहीं बनी तो अगले सप्ताह तक टाल दी। यों टालते-2 सात सप्ताह टल गए और अंततः उन्हें अनुकूल स्थान मिल

गया और उन्होंने पचासवें दिन पर्यूषणा की। ऐसी घटना साधना काल में कई बार हुई तो भगवान् ने पचासवें दिन को पर्यूषण के लिए Final ही कर लिया, इस शर्त के साथ कि 50वें दिन का उल्लंघन नहीं करना। उनके शिष्यों-गणधरों के लिए वर्षा ऋतु का पचासवां दिन इसलिए पावन बन गया क्योंकि भगवान् महावीर ने उस दिन को आराधना के लिए स्वीकार किया था। फिर उत्तरकालीन शिष्यों तथा प्रशिष्यों ने एवं समग्र जैन शासन ने पचासवें दिन को पर्यूषण मनाने की अंतिम date के रूप में स्वीकार कर लिया। इस तिथि को cross करने की कोशिश किसी ने नहीं की। हाँ, इस तिथि से पहले भी पर्यूषण मनाने का क्रम बिल्कुल बंद हो गया। इसका एक अपवाद भगवान् महावीर के निर्वाण के 471 वर्ष बाद हुआ। एक प्रभावशाली आचार्य कालक प्रतिष्ठानपुर में थे, वहां के राजा सात-वाहन की विनती पर वे वहां आए थे। आचार्य ने घोषणा की कि भादवा सुदी पंचमी के दिन संवत्सरी पर्व मनाया जाएगा। तब राजा ने विनती की- गुरुदेव, पंचमी के रोज़ हमारे नगर में प्राचीन काल से इन्द्र महोत्सव मनाया जाता है। आप अपना पर्व अगले दिन मना लें। आचार्य ने कहा— हम पचासवें दिन का उल्लंघन नहीं कर सकते, तब राजा ने कहा— आप चतुर्थी के दिन, एक रोज़ पहले, संवत्सरी मना लें। तब अपरिहार्य स्थिति को देखते हुए उन्होंने चौथ की संवत्सरी मनाई थी। इससे इतना तो स्पष्ट हो गया कि हमें भी चातुर्मास प्रारंभ होने के पचासवें दिन संवत्सरी मना लेनी चाहिए। (यदि दो सावन आएं तो हमें भादों महीने का आग्रह नहीं करना चाहिए और दो भादों आ जाएं तो दूसरे भादवे के चक्कर में पड़कर अस्सीवें दिन की Wait नहीं करनी।) इसी तरह उदय तिथि— अस्त तिथि का चक्कर भी छोड़ना होगा। चातुर्मास के 70 दिन शेष रहें, ये विचार भी दरकिनार करके हम पचासवें दिन पर कायम रहेंगे तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की पुनीत परम्परा का संरक्षण कर पाएंगे और जैनों की एकता को सुदृढ़ बना सकेंगे। कुल मिला

कर भाव ये है कि आग्रह छोड़ सहमति बना लेनी चाहिये। अब आओ, हम इस ऐतिहासिक पहल को शाश्वत परम्परा के साथ भी जोड़ दें।

जब भादों सुदी पंचमी या पचासवें दिन की संवत्सरी की ओर गहरी छानबीन की जाने लगी तो हमारे पूर्वजों के हाथ वह कड़ी भी आ गई जिसने पचासवें दिन की पवित्रता पर शाश्वतता, अनादि-कालीनता की मोहर लगा दी। जैन काल-सिद्धांत के अनुसार जब समय विकास की ओर (Evolutionary Phase) चढ़ता है, उत्सर्पिणी Mode में आता है, तब दूसरे आरे की शुरुआत सावन महीने के पहले दिन से होती है और तब लगातार सात दिन तक संपूर्ण भरत क्षेत्र में पुष्कर-मेघ बरसता है और धरती की गर्मी शांत होती है। अगले सात दिन आकाश खुला रहता है। तीसरे सप्ताह में क्षीर-मेघ की वर्षा से भूमि की दुर्गंध दूर होती है। चौथे सप्ताह घृत-मेघ से जमीन में स्निग्धता (चिकनाई) आती है। पांचवे सप्ताह अमृत-मेघ बरसने से 24 प्रकार के धान्य और वनस्पति का जन्म होता है। छठे सप्ताह आकाश साफ रहता है। सातवें सप्ताह में रस-मेघ की बारिश होती है और धरती रसीली बनती है। वनस्पति, धान्य एवं फलों में रस आ जाता है। पचासवें दिन– भादों सुदी पंचमी के दिन लोग वैताढ्य पर्वत की गुफाओं से बाहर निकलते हैं, जीवन-निर्माण के लिए नए संकल्प करते हैं। मांसाहार का त्याग कर शाकाहार को अपनाते हैं। प्राणी-मात्र को अभय दान देते हैं। शुद्ध अन्न, शुद्ध मन, शुद्ध जीवन का मांगलिक पचासवां दिन होने से हमारे इतिहासकारों ने कहा कि भगवान् महावीर ने जिस पचासवें दिन को महिमान्वित किया, वह सृष्टि में अनादि काल से प्रतिष्ठित भी रहा है। इसी तरह ज्ञाता-धर्म-कथांग सूत्र में उल्लेख है कि शहर के गंदे नाले का सड़ा हुआ पानी 49 दिन में अत्यंत निर्मल होकर पीने लायक बन जाता है और पचासवें दिन वह राजा के भोजन की थाली के साथ परोसा जाता है। इस तरह आज के दिन को कई पहलुओं से उच्चता प्रदान की गई है।

आज संवत्सरी के रोज़ हर धार्मिक आदमी को कुछ ज़रूरी कार्य करने होते हैं। 1. उपवास या पौषध 2. प्रतिक्रमण 3. क्षमा-याचना 4. नवकार मंत्र का जाप 5. आहार-शुद्धि का संकल्प 6. दान-पुण्य का भाव एवं सामायिक, संवर, त्याग, प्रत्याख्यान की व्यवस्था का निर्माण।

यह संवत्सरी पर्व केवल साधु-साध्वियों के लिए ही नहीं है, यह श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी उतना ही उपयोगी है। भले ही इसे जैन धर्म में ही मनाया जाता है, मगर इसका संदेश संसार के प्रत्येक मानव के लिए है। कल हमने ज़िक्र किया था कि श्रेणिक की मृत्यु के बाद कोणिक ने चंपा में आकर अपनी राजधानी बनाई। कुछ दिन भगवान् महावीर प्रभु की भक्ति भी की। उनके विचरण एवं प्रवचनों की दैनिक जानकारी के लिए एक स्वतंत्र Department भी बनाया। मगर यह सब बाहरी दिखावा था। अंदर से वह पहले की तरह ही महत्त्वाकांक्षी, उद्दण्ड, अहंकारी एवं अत्याचारी था। इसी आंतरिक प्रवृत्ति के कारण उसके दोनों भाइयों को चंपा छोड़कर वैशाली में आना पड़ा था। उनसे हार और हाथी छीनने के लिए उसने युद्ध किया, जिसमें उसके दस सौतेले भाई तथा बहुत सारी सेना खत्म हो गई। जब उसे लगा कि मैं सामान्य ढंग के युद्ध से अपने नाना चेटक को नहीं हरा सकूंगा तो उसने तेला तप करके अपने पूर्वभव के मित्र चमरेन्द्र और शक्रेन्द्र को याद किया। उन्होंने आकर स्पष्ट किया कि हम चेटक का अपने हाथों संहार नहीं कर सकते क्योंकि वह श्रमणोपासक है। हाँ, युद्ध में तेरी मदद कर सकते हैं। उन्होंने उसे एक अभेद्य कवच दिया तथा दो विशेष संहारक शस्त्र दिए। एक था महाशिलाकण्टक, दूसरा था रथ-मूसल। इन दोनों शस्त्रों के कारण तथा विशेष प्रकार की व्यूह रचना की वजह से दो दिन भीषण नरसंहार हुआ। पहले दिन चौरासी लाख तथा दूसरे दिन 96 लाख आदमी मारे गए। चेटक और उसके साथी राजा टूट गए। कुछ छल से, कुछ बल से कोणिक ने वैशाली का गढ़ तोड़ दिया। परंतु जब उसने देवप्रदत्त हार तथा सेचानक हाथी पर कब्जा करने की नीयत से ढूंढ मचाई, तब तक दोनों विलुप्त हो चुके थे। हाथी की मृत्यु हो

गई थी, हार को देवों ने अपने अधीन कर लिया था। इतना सारा पाप और संताप उसने अपनी पत्नी के कहने पर कर दिया। पुरुष कितना ही बलवान हो, पर घर पर उसकी एक नहीं चलती।

एक बादशाह ने ऐलान करवाया कि तमाम शादीशुदा मर्द दो लाइनों में खड़े हो जाएं। पहली लाईन में तो वो खड़े हो जाएं, जो अपनी बीवी से डरते हैं। दूसरी लाईन में वो खड़े हो जाएं, जो अपनी बीवी से नहीं डरते। सारे मर्द, एक को छोड़कर, पहली Line में खड़े हो गए। बादशाह उस अकेले आदमी से प्रभावित हो गया कि यह अपनी बीवी से नहीं डरता है। बादशाह ने उससे पूछा– 'आप बताएं कि आप अपनी बीवी से किस तरह नहीं डरते?' वह बोला– 'जी मुझे नहीं मालूम, मुझे तो मेरी बीवी कहकर गई है– इस लाईन में खड़े रहना, इधर-उधर मत हो जाना।' कोणिक की सारी वीरता एक तरफ थी, पत्नी की गुलामी एक तरफ।

युद्ध के इस भयंकर दुष्परिणाम पर एक बार तो कोणिक को भी पछताना पड़ा था। उसके संताप को दर्शाता एक भजनः–

तर्जः– दिल के अरमाँ...

टेकः– खून का दरिया बहाया क्या मिला,
हार खोया प्यारा हाथी ना मिला ॥

1. दुनिया की हर चीज़ सस्ती मिल गई,
भाइयों का प्यार पर महंगा मिला ॥

2. कैद में बापू मुझे मुर्दा मिले,
जंग में आ सामने नाना मिला ॥

3. धर्म की पत्नी कहूँ या पाप की,
स्वार्थ उसका खून में डूबा मिला ॥

4. भाइयों की माएं बीवी रो रही,
बालकों को भी कहाँ साया मिला ॥

5. आदमी की दूध रोटी छिन गई,
गिद्ध कुत्तों को मगर खाना मिला ॥

6. फूल तो खिलने दिए नहीं बाग में,
अब चमन कांटों में ही उलझा मिला ॥

7. कौन कहता युद्ध मीठा शहद है,
आंसुओं के पानी सा खारा मिला ॥

युद्ध के इस उन्माद में तीन आदमियों के अलावा हर व्यक्ति ने अपना लोक-परलोक बिगाड़ लिया। राजा चेटक, वरुण नामक नाग सेठ का पोता और उसका एक मित्र, इन तीन में से दो ने अंतिम समय में संथारा कर लिया, तीसरे ने अपने मित्र का बाह्य अनुसरण करते हुए द्रव्य प्रत्याख्यान कर लिया। इनकी तो सद्‌गति हुई। बाकी सब नरक-तिर्यंच गति के मेहमान बने। इस युद्ध की भीषण परिणति को देखकर काली-सुकाली आदि दस रानियों ने दीक्षा लेकर मोक्ष गति प्राप्त की। उन्हें तो स्पष्ट ज्ञान हो ही गया था कि युद्ध किसी भी समस्या का हल नहीं है, ये तो पागलपन है। कोई जानबूझ कर युद्ध शुरु करता है, तो कोई मजबूरी में युद्ध में उतरता है। कोई न्याय की रक्षा के लिए युद्ध के लिए विवश होता है तो कोई अन्याय, जुल्म और सितम बरपाने के लिए युद्ध ठानता है। युद्ध के मुद्‌दे को लेकर साहिर लुधियानवी ने बड़ा सटीक चित्रण किया हैः—

खून अपना हो या पराया, नस्ले आदम का खून है आखिर
जंग मशरिक[1] में हो या मगरिब[2] में अमन आलम का खून है आखिर
बम घरों पर गिरें या सरहद पर रूह ताउम्र ज़ख्म खाती है
खेत अपने जलें या गैरों के जीस्त[3] फाकों से तिलमिलाती है
जंग तो खुद एक मसला है जंग क्या मसलों का हल देगी
आग और खून आज बख्शेगी भूख और एतियाज[4] कल देगी
इसलिए ऐ शरीफ इंसानो जंग टलती रहे तो बेहतर है
आप और हम सभी के आंगन में शमां जलती रहे तो बेहतर है ॥

1 पूर्व 2 पश्चिम 3 ज़िन्दगी 4 आवश्यकता

संवत्सरी के पावन वातावरण में हम भी भावना भाते हैं कि संसार से युद्ध का उन्माद उतर जाए। मानव-मानव के निकट आए। प्रत्येक राष्ट्र अपनी आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति करे।

आज तपस्या का दिन भी है। बहुत सारे श्रद्धालु भाई-बहनों ने यथा-शक्ति पौषध-उपवास आदि तप किए हैं। उनसे या जिन्होंने किसी कारण तपस्या नहीं भी की है, उनसे कहना चाहेंगे कि एक साल तक तपस्या की प्लानिंग करें। साल भर में 12 पौषध या उपवास करने का निर्णय करें। जिन्हें आहार छोड़ने में शारीरिक दिक्कत हो, वे अपने मन में 12 आयंबिल या एकाशन करने की ठानें। इस छोटे से तप से आपको धार्मिक लाभ तो होगा ही, आपकी सेहत भी सुधरेगी। कुछ दवाइयां भी कम होंगी। यदि आप एक साल के लिए रात का खाना भी छोडेंगे तो आपको चामत्कारिक लाभ होगा। साल में 24 प्रहर-पौरुषी भी करेंगे तो विशेष आनंद आएगा।

आज शाम को हम सब मिलकर प्रतिक्रमण करेंगे। हमने पूरे वर्ष जो-2 भूलें की हैं, अपने नियमों का उल्लंघन किया है, मन, वाणी तथा काया से 18 पापों में प्रवृत्ति की है, उनकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण किया जाएगा। यद्यपि पाठ पढ़ने या सुनने मात्र से पाप दूर नहीं होते, परंतु पढ़ते और सुनते समय जो भाव पैदा होंगे, वो भाव पापों के डंक को कम कर देंगे। प्रतिक्रमण में हमें पता चलेगा कि एक श्रावक के जीवन में क्या-2 मर्यादा होनी चाहिए तथा उन मर्यादाओं से फिसलन कब-2 होती है तथा उन फिसलनों से बचने का क्या तरीका है, इस प्रकार की जानकारी होने के बाद हम भविष्य में पाप-क्रियाओं से, अशुभ-विचारों से काफी बच सकेंगे।

मैंने जब अपने ही अंदर चंद कमियां ढूंढ ली,
मुझको कुछ ऐसा लगा जैसे कि खुशियां ढूंढ ली।
हर तरफ कांटे बिछे थे ज़िंदगी की राह में,
ढूंढने वालों ने फिर भी उनमें कलियां ढूंढ ली ॥

जिन भाई-बहनों को प्रतिक्रमण याद नहीं है, वे ये निश्चय करें कि अगली संवत्सरी तक प्रतिक्रमण याद करेंगे। हमारे सामने ऐसे-2 उदाहरण हैं कि 9-10 वर्ष के बालक-बालिकाओं ने प्रतिक्रमण याद कर लिया। 70-80 वर्ष के बुजुर्गों ने प्रतिक्रमण याद कर लिया। आप ये भी कोशिश करें– हर पंद्रह दिन में एक बार प्रतिक्रमण स्वयं कर लें या किसी से सुन लें। ये भी संवत्सरी की अनमोल Gift होगी।

आज का तीसरा Target है क्षमा-याचना और क्षमा-दान। हमारे व्यवहार से कोई व्यक्ति पीड़ित, दुःखी हुआ हो तो बिना किसी शर्त के उससे क्षमा-याचना कर लें तथा किसी ने हमें कष्ट पहुंचाया हो तो अपने रंज-मलाल, दुःख-रोष को छोड़ उसे क्षमा का दान दें। क्षमापना का यह मंत्र यों सदाकाल ही ज़रूरी है पर आज तो इसको अपने जीवन में चरितार्थ कर ही लेना है। क्षमा से हमें आंतरिक शांति प्राप्त होगी तथा पूरे माहौल में प्रेम-मित्रता का मधुर संचार होगा। तनाव दूर होंगे, कषाय घटेगी, कर्म-बंध रुकेगा, पुराने कर्म ढीले पडेंगे, अगली गति सुधरेगी।

जिनसे हैं टकराएं सदा ही उनसे समझौता कर लें,
द्वार पे जाके भिक्षा मांगे आशिष से झोली भर लें ॥

आज हम बोलेंगे– **"खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे। मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं ण केणई ॥"** "मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। संसार के सब जीव भी मुझे क्षमा करें। मेरे मन में सब प्राणियों के प्रति मित्रता है तथा किसी से भी वैर नहीं है।" हाँ, हमें कोशिश करनी है कि ये क्षमा के शब्द होठों से ही नहीं, दिल से भी निकलें। तथा ये क्षमा उनसे ज़रूर मांगनी है, जिनसे हमारी अनबन है या नाराज़गी है।

आओ एक नई शुरुआत करें,
जिनसे है हमारी बातें टूटी हुई,
उनसे ही शुरु बात करें।

सन् 1990 में पूज्य गुरुदेव गणाधीश श्री प्रकाश चंद्र जी महाराज अपना जलगांव का चातुर्मास पूरा करके वहां के प्रसिद्ध व्यापारी रतन लाल बाफणा जी की निजी स्थानक– स्वाध्याय-भवन में आए। वहां लगभग सारी समाज दर्शन करने आई लेकिन एक प्रमुख श्रावक श्री बंसीलाल जी बोथरा नहीं आए। महाराज श्री जी को कारण पता चला कि उनकी श्री रतनलाल जी से काफी सालों से अनबन है, बोलचाल बंद है। हालांकि किसी ज़माने में दोनों में गहरी दोस्ती थी, पर किसी बात को लेकर ऐसी ठनी कि दोनों धर्म परायण श्रावकों की दोस्ती खत्म हो गई, रिश्तेदारी टूट गई, आना-जाना, बोलचाल बंद। पूज्य महाराज श्री ने रतन लाल जी से कहा– आप उन्हें भी स्थानक में लाओ तो हमारा आना सफल रहेगा। श्री रतनलाल जी ने गुरुदेवों का संकेत समझा और तुरंत बंसीलाल जी के घर पर चले गए। हाथ जोड़कर क्षमायाचना की। पहले तो बंसीलाल जी खूब बोले, गिले-शिकवे गिनाए पर आखिर में पिंघल गए। स्थानक में आए। फिर दोनों ने एक दूसरे के घर में जाकर साथ-2 खाना लिया। तब पूज्य महाराज श्री जी ने कहा कि तुमने आज संवत्सरी मनाई है। जिस दिन जीवन में क्षमा का अवतरण हो जाए वही दिन संवत्सरी है– ये है जैन दृष्टि। यदि आज क्षमा हो गई तो आज संवत्सरी, कल होगी तो कल संवत्सरी। यदि आज क्षमा का जागरण नहीं हुआ तो आज संवत्सरी नहीं मनी, ये समझ लेना भी ज़रूरी है।

क्षमाभाव की उच्चता को प्रदर्शित करने वाला एक प्रसंग जैन कथा-साहित्य में प्रचलित है। उसका उल्लेख करना बड़ा प्रासंगिक है।

वीतभयपत्तन के राजा उदायन बड़े धर्मनिष्ठ श्रावक थे। एक बार उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योत ने उनकी प्रिय दासी स्वर्ण-गुलिका तथा नगर देवी की प्रतिमा को रात के अंधेरे में चुरा कर उज्जैन में पहुंचा दिया। राजा उदायन ने विशाल सेना लेकर चण्डप्रद्योत पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में चण्डप्रद्योत हार गया और उसे बंदी बनाकर पिंजरे में डाल दिया। उसके माथे पर 'दासीपति' शब्द Tattoo कर दिया।

चण्डप्रद्योत को बंदी बनाकर विजेता उदायन जब अपने देश की ओर लौट रहा था, तो मार्ग में ही पर्यूषण-पर्व प्रारंभ हो गए। ये घटना मंदसौर के आसपास की है। राजा ने वहीं पड़ाव डलवा दिया। संवत्सरी के दिन राजा ने पौषध कर लिया। राजा के रसोइए ने जब चण्डप्रद्योत से भोजन के बारे में पूछा तो उसने भी मना कर दिया और पिंजरे में पड़े-2 पौषध कर लिया। शाम को प्रतिक्रमण के बाद उदायन ने चौरासी लाख योनि के जीवों से क्षमा मांगी। साथ ही अपने साथियों से, मंत्री, सेनापति आदि से, नौकर चाकरों से भी क्षमा मांगी। फिर याद आया कि मेरे साथ चण्डप्रद्योत भी Prisoner of war की तरह साथ-2 चल रहा है, उससे भी क्षमा मांग लूं। उससे क्षमा मांगने के लिए जैसे ही उदायन ने हाथ आगे बढ़ाया, चण्डप्रद्योत हँसकर कहने लगा– वाह भाई, उदायन, ये क्षमा मांगने का क्या ढंग है। क्या 'क्षमा करो' इन दो शब्दों से काम बन जाएगा। मुझे तुम कैद में भी बंदी रखो, मुझे 'दासीपति' करार करके ज़िंदगी-भर कलंकित भी रखो, फिर भी समझो कि तुमने क्षमा मांग ली और संवत्सरी मना ली है। ये तुम्हारा झूठा आश्वासन है। यदि क्षमा मांगनी है और मुझ से लेनी है तो पहले मुझे मुक्त करना होगा, मेरा कलंक भी मिटाना होगा। तभी तुम्हारा क्षमा मांगना सार्थक होगा वर्ना तो सब ढौंग है। प्रद्योत कह तो गया पर अंदर ही अंदर कांप भी गया कि कहीं मुझे जान से न मरवा दे। पर उदायन ने तो तीर्थंकर भगवंतों का धर्म समझा था और सवंत्सरी की सच्ची आराधना करने की सोची थी, इसलिए उसे तुरंत पिंजरे से बाहर निकलवा दिया और माथे पर गुदवाए 'दासीपति' शब्द को ढकने के लिए एक सोने की पाटी उस जगह बंधवा दी। उदायन और चण्डप्रद्योत के वार्तालाप को एक भजन में पिरोया गया है।

तर्जः– ***होठों से छू लो तुम...***

हम तुमको माफ करें, तुम हमको माफ करो।
हम भी दिल साफ करें, तुम भी दिल साफ करो ॥

उदायन— ये पर्व संवत्सरी है, पौषध व्रत है धारा,
अब प्रतिक्रमण करके, करें मन में उजियारा,
अब भाई मुझे समझो, मत पश्चात्ताप करो ॥

प्रद्योत— क्यों ढोंग रचाते हो, पिंजरे में खड़ा हूँ मैं
आजाद फिरो तुम तो, बंधन में पड़ा हूँ मैं
महावीर की शिक्षा का, मत यों अपलाप करो ॥

उदायन— अच्छा-अच्छा भाई, ये भूल बताई है,
घनघोर घटाओं में, बिजली चमकाई है,
फिर से एक बार कहो, नहीं बिल्कुल आप डरो ॥

प्रद्योत— माथे पे लिखा है ये, दाग न धुल सकता,
मन से तो उदायन का, बंधन नहीं खुल सकता,
नहीं मीठी जुबां काफी, मत मन में पाप धरो ॥

उदायन— अब से आज़ाद रहो, लो राज्य करो अपना,
माथे पे स्वर्ण पटी, रख दोष ढको अपना,
मैं झूठा या सच्चा हूँ, खुद ही इंसाफ करो ॥

प्रद्योत— तुम योद्धा भी पक्के हो, और धर्मवीर सच्चे,
तुम राजनीति ज्ञाता, हो सरल चित्त बच्चे,
आओ अब गले मिलो, नवकार का जाप करो ॥

एक विजेता राजा हारे हुए और अपराधी राजा को क्षमा कर दे, ये बहुत कठिन काम है। पर कठिन काम करने पर ही धर्म का सच्चा आनंद मिलता है। आपकी और हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में माफी मांगना और देना एक दुर्लभ घटना हो गई है। अहंकार कम करने पर क्षमा मांगी जा सकती है, क्रोध कम करने पर क्षमा दी जा सकती है और ये दो काम ही नहीं हो पा रहे— न अंहकार घट रहा और न ही क्रोध। क्षमापना एक बहुत महंगा सौदा हो गया

नहीं है। उन्होंने शुरु में 8 बेले, मध्य में 34 बेले, तथा अंत में 8 बेले किए थे तो इन्होंने इन तीन प्रसंगों पर तेले तप का अनुष्ठान किया अर्थात् इनकी 50 दिन की तपस्या अधिक हो गई। चार बार करने में 200 दिन बढ़ गए। दूसरा अंतर दोनों में ये रहा कि उनकी दीक्षा-पर्याय 8 वर्ष की रही, तो इनकी दीक्षा-पर्याय 9 वर्ष रही। शेष सब कुछ समान था।

इन साध्वियों तथा अगली साध्वियों को वंदना करने के भाव से एक भजन गा लें। फिर आगे...

तर्जः– अफसाना लिख रही हूँ

टेकः– काली आदि रानी जीवन उद्धार कर गई।
तप के गहने पहने सच्चा शृंगार कर गई।

1. अपने पुत्रों की मृत्यु के दुःख से दुःखी होकर,
प्रभु चरणों में आई हल्का, दुःखभार...

2. युवावस्था में धर्म बेशक कर नहीं पाई,
ढलती उम्र में प्रभु का वो, दीदार...

3. मुक्ति के सपने भव्य जन लेते सदा ही हैं,
ये रानियां इन सपनों को साकार...

4. परिवार से जो प्यार है वो मोह कहलाता,
संपूर्ण प्राणी जगत् से वो प्यार...

5. नारी होकर भी दम भुजाओं में भरा भारी,
संसार का सागर भयानक पार...

तीसरी तथा चौथी साध्वियों के नाम हैं– महाकाली तथा कृष्णा। इन दोनों की तपस्या-विधियों के नाम हैं– लघु-सिंह-निष्क्रीड़ित तथा महासिंह-निष्क्रीड़ित। यदि इनका सामान्य अनुवाद करें तो कह सकते हैं– छोटे शेर का खेल तथा बड़े शेर का खेल। इन रानियों को संभवतः

काली आर्या की संयम-तप आराधना

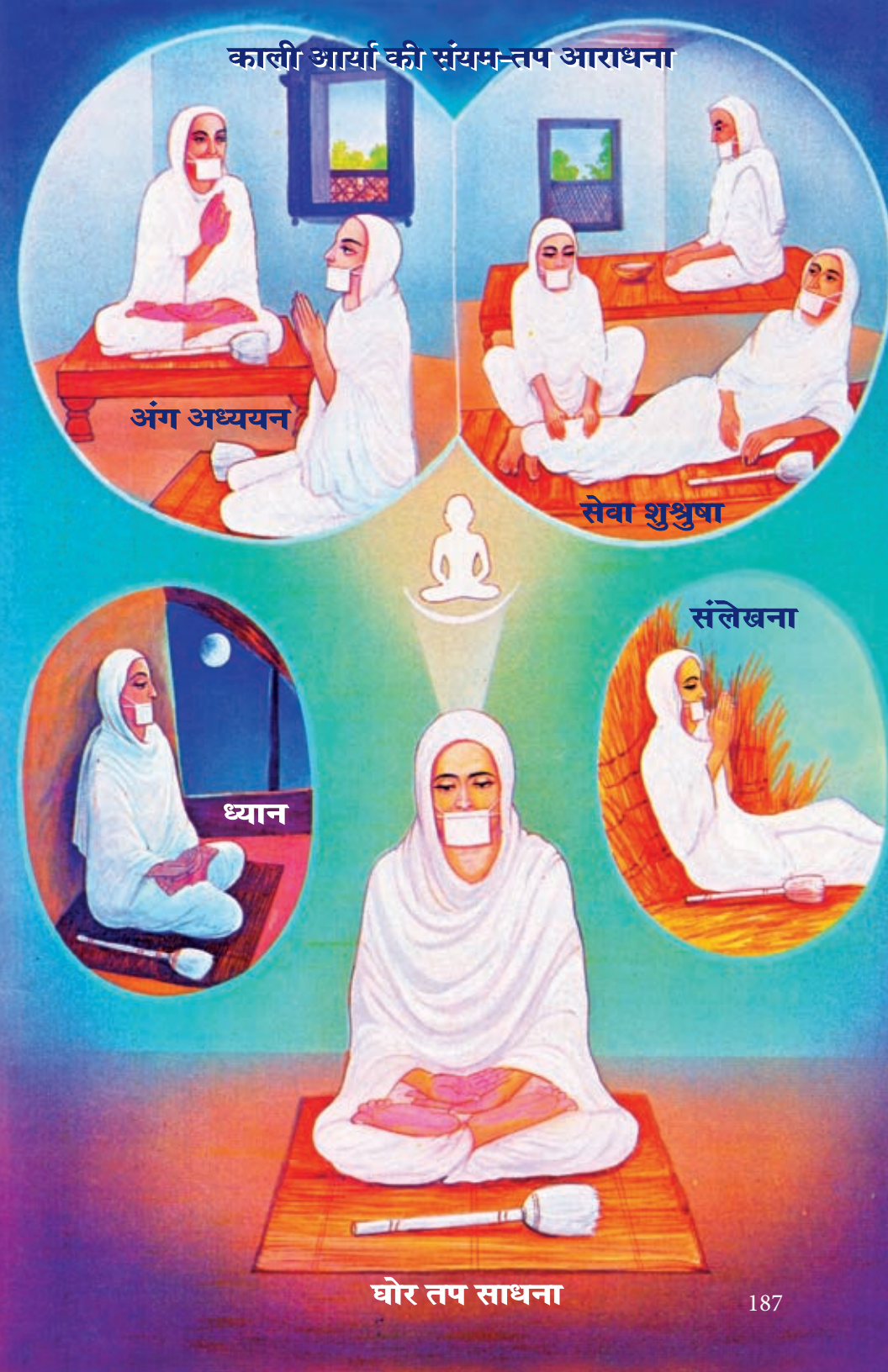

संवत्सरी की क्षमा याचना करते
हुए श्रावक श्राविकाएं

है। हाँ, सच्चाई ये भी है कि महंगा सौदा करने वाले ही जीवन का मज़ा ले पाते हैं।

वैसे महंगे-सस्ते के मायने हर आदमी के लिए अलग-2 होते हैं। तो सुनिएः— संता काफी कंजूस तबीयत का था। उससे पैसे खर्च नहीं होते थे। एक दिन अपनी ससुराल की तरफ चला। पैदल जा रहा था। रास्ते में अमरूद का बाग था। उसने चुपचाप अमरूद तोड़ लिए। मालिक ने देख लिया। उस समय उसे कुछ नहीं कहा। संता पूरा थैला अमरूदों का भरकर ससुराल पहुंचा। अपने साले से कहा— बड़े महंगे अमरुद लाया हूँ। बाद में बाग का माली घर पहुंच गया। कहने लगा— तुम्हारे दामाद ने चोरी की है। या तो पांच सौ रु. दे दो, नहीं तो कल पंचायत में बेइज्ज़ती करूंगा। ससुर को 500 रु. देने पड़े। अगले दिन संता वापस चलने लगा तो ससुर जी से बोला— महीने-दो महीने बाद फिर मिलने आऊंगा। ससुर जी ने निवेदन किया— आप मिलने तो चाहे रोज़ आ जाओ पर इतने मंहगे फल मत लाया करो।

आज का दिन अपने महामंत्र के अखंड जाप का भी है। साधु-सतियों के चातुर्मासों में कहीं-2 तो चार महीने का अखंड जाप चलता है। आठ दिन का जाप तो प्रायः सभी क्षेत्रों में होता ही है। जहां थोड़े घर हों, वहां चौबीस घंटे का जाप करके अपनी श्रद्धा पूरी कर ली जाती है। आज तो आप सबने जाप किया है और करोगे भी। पर हमारा निवेदन है कि आज संवत्सरी पर्व पर एक प्रतिज्ञा करें कि हम प्रति सप्ताह या प्रतिमाह अपने स्थानक में सामूहिक जाप करेंगे। या घरों के नम्बर बनाकर एक-2 घर पर जाप का आयोजन करेंगे। नवकार मंत्र के जाप में बच्चों को भी शामिल करें। मानकर चलें-इस मंत्र से बड़ा कोई मंत्र नहीं है। आत्म-कल्याण के लिए तो यह उपयोगी है ही, लौकिक शांति में भी यह मंत्र बहुत सहयोग करता है। एक slogan याद कर लें- "जिसके पास है नवकार, उसका क्या बिगाड़ेगा संसार।" आपको किसी तांत्रिक, ज्योतिषी, पंडित के पास समस्या का समाधान मांगने की ज़रूरत नहीं है, कोई हवन, अनुष्ठान, जगराता या

जाप करवाने की ज़रूरत नहीं है। किसी भूत-प्रेत बाधा की भ्रांति हो, उससे भी नहीं डरना, बस नवकार मंत्र का जाप करना, आप निश्चिंत हो जाओगे। जो काम संसार के दूसरे मंत्र-पाठ कर सकते हैं, नवकार महामंत्र उन सब कामों को अधिक क्षमता से, अधिक शीघ्रता से कर सकता है– ये विश्वास अपने मन में पक्का जमाना है। संवत्सरी पर्व के पांचवें ध्येय के रूप में हम पेश करना चाहेंगे– खानपान की शुद्धि। विश्व में भोजन के संबंध में सर्वाधिक विश्वसनीय कौम रही है– जैन कौम। इसका खानपान कभी भी संदेह के घेरे में नहीं आया। परंतु आज युग-प्रवाह के इन भयावह क्षणों में बहती हुई हमारी जैन कौम का कुछ हिस्सा भी अपने असूलों से कुछ पीछे हट गया है। संवत्सरी, महावीर-जयंती, निर्वाण-दिवस आदि पर्वों के आयोजन अपनी संस्कृति से पुनः जुड़ने के अवसर होते हैं। शादी हो, पार्टी हो, Hotel हो, कंपनी हो, हमारे युवक ये प्रतिज्ञा दोहराएं कि हम किसी भी हालत में शराब, Beer, शैम्पेन आदि का सेवन नहीं करेंगे। अंडे-मांस का सेवन तो दूर, स्पर्श भी नहीं होने देंगे। अपने परिवार में छोटे बच्चों को समझाएंगे कि केक, पेस्ट्री आदि में अंडा होता है अतः उसे नहीं खाएंगे। अपने घर पर जो 100 प्रतिशत शुद्ध बनेंगे, उन्हें ही लेंगे। Birthday Party मांसाहारी Hotels में Celebrate नहीं करेंगे।

अहिंसा के झंडे को फिर से उठाओ,
महावीर का मार्ग सबको दिखाओ।
अंधेरे में कुछ रोशनी कर दिखाओ,
महावीर का मार्ग सबको दिखाओ ॥
अहिंसा की तालीम ही रुक गई है,
सभी दुनिया पापों में ही झुक गई है,
कहो धर्म की रोशनी कैसे आए
कि जब ज्ञान की तार ही फुंक गई है,
वो फिर तार जोड़ो वो ज्योति जलाओ,
महावीर का मार्ग सबको दिखाओ ॥

ये Hotel ये Poultry, ये कस्साबखाने,[1]
क्या भारत के ये ही है नक्शे पुराने,
जिसे आर्य कह देते थे हम फक्र से,
क्या उसी के बने ढंग हैं वहशियाने,[2]
वो संस्कार आर्यत्व के फिर से लाओ,
महावीर का मार्ग सबको दिखाओ ॥
नशेबाजियां ये सभी दूर कर दो,
ये बोतल ये प्याले सभी चूर कर दो
खिलाफत में इनके बगावत हो पैदा
उठो राज्य शासन को मजबूर कर दो।
जगह इनकी फिर दुग्ध धारा बहाओ,
महावीर का मार्ग सबको दिखाओ ॥

आज का हमारा छठा मुद्दा है– दान-पुण्य की प्रवृत्ति। आज के दिन भारत में लगभग सभी स्थानों पर जैन भाई-बंधु यथा शक्ति दान भी देते हैं। कमाने के लिए तो हम लोग ज़िंदगी-भर व्यस्त रहते ही है। पर कभी देने का दिन भी होना चाहिए। ये हमारा Social obligation भी है, Spiritual Development भी। वैदिक ऋचाओं में तो यहाँ तक कहा है कि कमाते समय आपके दो की बजाय सौ हाथ होने चाहिएं और बांटते समय वही सौ हाथ हज़ार हाथ बन जाएं। जैन धर्म में मोक्ष के चार उपायों में पहला उपाय दान है। इसके बाद शील, तप और भावना का नंबर आता है। कबीर की उक्ति बड़ी सटीक है–

"चिड़ी चोंच भर ले गई नदी न घटियो नीर,
दान दिए धन ना घटे कह गए संत कबीर।"

रहीम ने भी दान की ओर ध्यान खींचा है–

"रहिमन ते नर मूई[3] **गया जो कोई मांगन जाय,**
उसतै पहले वो मुआ जिन मुख निकसत नाय।"

---

1 कत्लखाना 2 जंगली 3 मर गया

समाज का हर छोटा-बड़ा काम आप लोगों के सहयोग और दान से पूरा होता है, इसलिए आज के दिन अपना हृदय उदार बनाकर दान देना चाहिए। लोग अपने लिए, अपने बच्चों के लिए इतनी फिजूलखर्ची करते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं, मगर समाज को देते समय बगलें झांकने लगते हैं। समाज भी आपका विस्तृत परिवार है। इसके उत्थान के लिए कुछ देना हो तो कंजूसी– कृपणता छोड़नी पड़ेगी।

आज के दिन एक और ज़रूरी बात– वह है सामायिक-संवर का नियम। भगवान् महावीर ने कहा है कि विशुद्ध विधि से की गई सामायिक से जीवन में अपार शांति प्राप्त होती है। एक गृहस्थ के लिए सामायिक Breakfast से भी ज्यादा ज़रूरी है। जैसे मुस्लिमों के लिए नमाज, ईसाइयों के लिए प्रार्थना, हिन्दुओं के लिए आरती और संध्या, आर्य-समाजियों के लिए यज्ञ हवन ज़रूरी होता है। ऐसे ही जैनों के लिए सामायिक करना ज़रूरी है। हमारे गुरुदेवों ने हमें यही तोहफा दिया है। वे सामायिक को जैनत्व की पहचान बताते हैं। हो सके तो सामायिक सूर्योदय से पूर्व शांत समय में ही कर लेनी चाहिए। यदि किसी कारण से उस समय न हो सकती हो तो 24 घंटों में जो Time आपको suit करता हो, उसी Time कर लेनी चाहिए। 'चाहे जो मजूबरी हो, सामायिक ज़रूरी हो।' आप इस पावन अवसर पर मन में प्रतिज्ञा करें कि साल भर में 365 सामायिक करेंगे। ऐसा न होता हो तो 200 सामायिकों का आश्वासन दिलाएं। ये आप पर निर्भर है कि आप कितनी सामायिकें करना चाहते हैं। साल में 100 सामायिकें तो कर ही लेनी चाहिए। आप एक बार सामायिक का रूटीन बनाकर देखो, आपको इतना मज़ा आएगा कि खुद दंग रह जाओगे। जिस दिन सामायिक नहीं होगी, आपको लगेगा कि मेरी बहुमूल्य चीज़ Miss हो गई। हाँ, इतना और कहना आवश्यक है– सामायिक करने वाले भाई-बहनों को सामायिक के नौ पाठ अर्थ सहित याद करने चाहिए। उसके पश्चात् सामायिक की विशुद्धि के लिए 32 दोष भी कंठस्थ करें ताकि भटकते हुए मन, वचन, काया को रोका जा सके। सामायिक के

दौरान माला फेरने के साथ-2 कुछ स्वाध्याय भी करें। हिन्दी भाषा के सरल भजनों को धीमी-2 आवाज में गुनगुनाओ। अपने पिछले 24 घंटों पर सरसरी नज़र दौड़ाकर प्रत्येक घटना को पुनः जीने का प्रयास करो, तब आपको ध्यान आएगा कि कितने कार्य हमने विवेकपूर्वक किए, कितने आवेश पूर्वक? सामायिक का कुछ समय हमें ध्यान में व्यतीत करना चाहिए। ध्यान से Body Relax होती है, Mind Relax होता है, चिंता-टेंशन कम होते हैं, कषाय भाव भी मंद हो जाता है। इसलिए ज़रूरी है कि सामायिक के दौरान कुछ ध्यान भी करें। सामायिक के विषय में एक भजन गाएं।

तर्जः– यदि भला किसी का कर न सको...

यदि समय सफल करना हो तो सामायिक कीजिए।
जीवन को विमल करना हो तो सामायिक कीजिए ॥

1. दुनिया के धंधों से विचलित,
मन कैसे हो शांत समाहित,
ये मसला हल करना हो तो....॥

2. क्रोध मान के ज्वर चढ़ते हैं,
माया लोभ के बल बढ़ते हैं,
इनको निर्मल करना हो तो....।

3. नहीं ठहरती मन की लहरें,
कितना तीर्थ स्थान में ठहरें,
चंचल को अचल करना हो तो....॥

4. सूख गया है आत्म जलाशय,
बना अशुचि कर्दम का संचय,
समता से सजल करना हो तो....॥

5. जीवन में प्रकटा दुःखानल,
नंदन वन में जला दवानल,
ये शांत अनल करना हो तो....॥

6. तज सावद्य अशुभ पापास्रव,
तन मन वचन योग से नव नव,
शुभ मंगल करना हो तो सामायिक कीजिए ॥

इस प्रकार हमने महापर्व संवत्सरी से संबंधित कुछ मुद्दों पर आपके सामने चर्चा की है। वस्तुतः ये दिन ही ऐसा है, जब हमें अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं व्यापारिक ढांचे पर पुनर्विचार करना होता है।

हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ मिलकर के समस्याएं विचारेंगे सभी ॥

जब कभी हम अपने इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें एक सात्त्विक गर्व की अनुभूति होती है। एक समय था जब किसी जैन पर इतना भरोसा होता था कि कोर्ट में उसकी गवाही के आधार पर फैसला हो जाता था। राजाओं के दीवान अक्सर जैन होते थे। क्योंकि उनसे किसी प्रकार के घपले-घोटाले की संभावना नहीं होती थी। रनिवासों में जैनों को इसलिए तैनात किया जाता था क्योंकि उनका Character Pure होता था। जैनों की प्रामाणिकता पर कोई सवालिया निशान नहीं लग सकता था। जहां Quality में हम अव्वल थे, Quantity की दृष्टि से भी हमारा Graph काफी ऊंचा था। भले ही जैन धर्म का फैलाव भारतवर्ष की सीमाओं से बाहर नहीं हो पाया पर भारत के बहुत भाग में जैनों का बोलबाला रहा था। South India में, खासतौर पर तमिलनाडु और कर्नाटक में, जैन धर्म जन-2 का धर्म था। गुजरात, मालवा, मारवाड़, मेवाड, गोवा, महाराष्ट्र, उड़ीसा, बंगाल और बिहार के हर गांव में, हर शहर में, हर कौम में, हर जाति में जैन धर्म के अनुयायी थे। क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण, शूद्र– चारों वर्ण जैन धर्म को मानते थे। धीरे-2 पहले तो जैनों की Quantity घटी और अब Quality भी घटती जा रही है। अब हमारी संख्या भारत वर्ष की Total Population की तुलना में ½ प्रतिशत भी नहीं है।

इसके बढ़ने के आसार भी नहीं है, पर Quality को हम बचा सकते हैं। इसके लिए कुछ बातें हमें नई सीखनी होंगी, कुछ पुरानी बचानी होंगी। पहली बात, हम दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी इन विभाजनों को अधिक बढ़ावा न दें। अपनी-2 परम्परा की सुरक्षा अवश्य करें, पर दूसरी परम्पराओं का विरोध न करें। उन्हें मिथ्यात्वी कहकर न ठुकराएं। दूसरी बात, अपने-2 धर्मस्थानों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति चालू करें। स्वाध्याय ऐसी करें, जिससे कट्टरता तो घटे पर दृढ़ता बढ़े। महिलाओं के लिए, बच्चों के लिए प्रशिक्षण-शिविर लगें, जिनमें वे अपनी मौलिक मान्यताओं की जानकारी कर सकें। छोटे बालकों में अनुशासन का अभ्यास डालें। जैसे R.S.S. की शाखाओं में, राधा-स्वामी व्यास डेरा की संगतों में अनुशासन देखा जाता है, वैसा ही अनुशासन जैन बालक-बालिकाओं में विकसित हो जाए तो हमारी छवि बहुत सुधर जाए। जैन समाज व्यापारी-बहुल समाज है। आज बेहद आवश्यकता इस बात की है कि जैन व्यापारी लेन-देन में, भाव-ताव में प्रामाणिकता का परिचय दें। प्रामाणिकता तथा पारदर्शिता के साथ किए गए कारोबार में तरक्की ज्यादा होती है। अभी तक हमारा समाज सच्चाई, ईमानदारी के महत्त्व को जान और मान नहीं पाया है। उसे लगता है कि झूठ और बेईमानी के बिना काम धंधा नहीं चलता, ये अविश्वास ही उसको तरक्की से रोक रहा है। यदि आज भी जैन समाज सच्चाई और ईमानदारी के साथ काम करे तो एक तरफ उसकी तरक्की कई गुणा हो जाएगी, दूसरी तरफ समाज का गौरव बढ़ेगा। जैन समाज को अपनी Quality बढ़ाने के लिए मानव-सेवा के क्षेत्र में भी उतरना होगा। मानव-सेवा के तहत वह सहधर्मी सेवा का कार्य भी आसानी से कर लेगा। आज के शिक्षित युवा की एक Positive सोच है कि हम भी Christians की सेवा का Model अपनाएं। वे अपनी ऊर्जा, अपना समय, पैसा रोगी, अनाथ, अपंगों की सेवा में लगाकर सुकून हासिल करते हैं। सेवा के इन कार्यों से जैन समाज का धरातल ऊंचा होगा, ये हमारी सोच है।

आओ एक लोकप्रिय गीत गाकर अपना मन और वचन पावन करें:—

तर्ज:— उठ जाग मुसाफिर भोर भई...

हम जैन धर्म अनुयायी हैं, सर्वत्र शांति फैलाएंगे।
प्रभु महावीर के सेवक हैं, बन महावीर दिखलाएंगे ॥

1. हिंसा से दूर रहेंगे हम, शत्रु को मित्र कहेंगे हम,
सारे ही कष्ट सहेंगे हम, जग गुलशन को महकाएंगे ॥

2. है सत्य शील हम को प्यारा, संयम जीवन अपना नारा,
हम बहा त्याग तप की धारा, जीवन आदर्श बनाएंगे।

3. आहार शुद्ध हम रखेंगे, आचार शुद्ध हम रखेंगे,
व्यवहार शुद्ध हम रखेंगे, और आत्मशुद्धि कर पाएंगे ॥

4. असहाय हैं और जो निर्धन हैं, जिनके भूखे नंगे तन हैं,
जो दुःखी और पीड़ित जन हैं, हम उनको गले लगाएंगे ॥

5. सम्यग्-दर्शी हैं श्रावक हैं, आस्तिक हैं श्रमणोपासक हैं,
हम मुक्ति मार्ग आराधक हैं, नहीं पीछे कदम हटाएंगे ॥

बंधुओ, आज हमने अपना stock लिया है, Debit-Credit का Balance देखा है तथा आगे आने वाले दिनों के लिए कुछ रूपरेखा भी तैयार की है। संवत्सरी पर्व के साथ पर्यूषण की मंगलमय पूर्णता होने जा रही है। हम 8-9 दिन से आपके क्षेत्र में आए हुए हैं। हमने आपकी सेवाएं ली हैं, आपका प्यार पाया है। आपने आगम की वाचना का, व्याख्या का लाभ लिया है। आपके माध्यम से हमें स्वाध्याय का मौका मिला, आत्म-चिंतन का अवसर प्राप्त हुआ। कर्म निर्जरा में आपकी भी सहयोगी भूमिका रही है। गुरुदेवों के कारण हमारा और आपका धार्मिक भाई-चारा भी जुड़ गया। हम आपके प्रेम और सहयोग के लिए ऋणी रहेंगे तथा आभारी भी रहेंगे। आशा करते हैं कि ये प्रेम स्थायी ही बना रहेगा।

आप भी इतना अवश्य करना कि समय-2 पर स्थानक में आकर सामायिक, स्वाध्याय का अवलंब लेते रहना। दूसरा ज़रूरी कार्य ये कि जब आपके बच्चों के summer Vacation हों, तब जून के महीने में बच्चों का धार्मिक शिविर ज़रूर लगवाना।

हमारे प्रवास के दौरान आपको कोई असुविधा हुई हो, हमारी कोई क्रिया अनुचित लगी हो तो सबसे संवत्सरी संबंधी क्षमा-याचना करते हैं तथा जिनवाणी के विरुद्ध कोई प्ररूपणा हुई हो तो उसकी तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।

आप सब भाई-बहनों की तपस्या की साता पूछते हैं तथा कल पारणे की अनुकूलता के लिए मंगल-कामना करते हैं। पूज्य गुरुदेवों को भक्तिभाव-पूर्वक वंदना करते हुए आप सबको जय जिनेन्द्र।

नौवें पारणे के दिवस का प्रवचन

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो,
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

शासनपति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तथा पूज्य गुरुदेवों को वंदना नमस्कार करते हुए उपस्थित भाई-बहनों को जय जिनेन्द्र!

कल संवत्सरी महापर्व पूर्ण हुआ। आज पूर्ति का दिन है। तपस्याओं के पारणे का दिन है। जाप के भोग का दिन है। और हमारे जाने का भी दिन है। आठ दिनों तक आप और हम मिल-जुलकर पर्यूषणों की आराधना करते रहे। कितने ही भाई-बहनों ने आठों दिन आगम वाचना का लाभ लिया, प्रतिक्रमण किया, धर्म-चर्चा में भाग लिया, हर गतिविधि में बढ़चढ़ कर अपना योगदान दिया। कुछ भाई-बहनों ने आंशिक हिस्सेदारी की। हमें आपका क्षेत्र, आपके क्षेत्रवासियों की श्रद्धा बहुत अच्छी लगी। हम आपकी धर्म-श्रद्धा के कायल हैं। हमें आपके साथ बीते हुए ये दिन हमेशा याद रहेंगे। आपने हमें अपने सगे भाइयों जैसा प्यार दिया। यदि हम आगमिक दृष्टि से देखेंगे तो भी हम और आप सहधर्मी भाई हैं। जिन-शासन की आज्ञा को मानने वाला हर जैन आपस में भाई होता है। ये रिश्ता खून के रिश्ते से भी अधिक पवित्र और मौलिक होता है। आपने इस रिश्ते के महत्त्व को समझा है। इसीलिए हमें इतना स्नेह और वात्सल्य दिया है। अपने निकट से निकट रिश्तेदार के यहाँ भी हम एक दो दिन से ज़्यादा नहीं रुकते पर आपके यहाँ तो हम 8-9 दिन रुके, तो इस बात से अंदाज़ा लगाया जा

सकता है कि आपके साथ हमारा क्या नाता है, और कितना गहरा है।

पर्यूषण के दिनों में हमें अपने घर-वालों की याद भी नहीं आई। यद्यपि हम भी परिवार से बंधे हुए हैं, राग के बंधन हमारे भीतर भी हैं, पर इन दिनों आनंद की जो अनुभूति रही, उसने राग को उभरने नहीं दिया। इसका एक कारण तो ये रहा कि आपके प्रेम ने हमें उस प्रेम की याद नहीं आने दी। दूसरे आगमों के पारायण में ऐसी डुबकी लगी कि हम बाहर के संसार से काफी अलग हो गए। आत्म-चिंतन, त्याग-तपस्या, अन्तर-रमण के इन मधुर क्षणों का ऐसा आलम था कि दिन कब निकलता था, कब छिपता था, ये अहसास ही नहीं होता था। हर समय धर्म-ध्यान का ही चिंतन, धर्म-ध्यान की चर्चा, धर्म-ध्यान की आराधना होने से घर-बार, व्यापार, संसार की ओर मन ही नहीं जाता था। ये सौभाग्य हमें पूज्य गुरुदेवों ने दिया, जो आपके क्षेत्र में हमें भेजा। आपने भी जो विश्वास गुरुदेवों के सामने प्रकट किया था, उसे, उससे भी बढ़कर पूरा किया। इन आठ दिनों में जो धर्म-क्रियाएं हुई, जन-भावनाएं जागृत हुई, सामाजिक-सामञ्जस्य बना, यह सब पावन गुरुदेवों के कर-कमलों में समर्पित है। कुछ त्रुटियां रही, भूलें हुई, उसके लिए हम जिम्मेदार हैं तथा समस्त समाज से उसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं।

आप प्रार्थना के बाद अपने घरों में जाएंगे, लेकिन कुछ न कुछ नया विचार लेकर अवश्य जाना। विशेष रूप से क्षमा का भाव कुछ गहरा बनाने की कोशिश करना। सबसे पहले घर में किसी के प्रति वैमनस्य हो, नाराज़गी हो, उसे दूर करना, संकोच मत करना। माफी मांगने में शुरु-2 में लगेगा कि मैं माफी मांगूगा तो मैं अपराधी साबित हो जाऊंगा। नहीं, आप अपराधी नहीं, आप शांतिदूत के रूप में Recognised होओगे। एक बार परिवार में शांति-स्थापना हो जाएगी तो उसका मज़ा ही अलग होगा। यदि आपके झुकने से परिवार की एकता, प्रेम और सौहार्द बढ़ता हो तो कोई हर्ज नहीं। घर में माफीनामा जारी करके फिर अपने circle की ओर झांकना कि कहाँ हमारी Arteries का Blood Block हो गया है। उसे फिर से चालू करने के लिए क्षमा का stent

डालना होगा। हमारे रिश्ते फिर से बहाल हो जाएं, ये कोशिश अभी जारी रखनी है। ये न समझें कि संवत्सरी जा चुकी। अब क्षमापना की क्या ज़रूरत है? संवत्सरी अभी चालू है। संवत्सरी की भावधारा भी चालू रखनी है। इसी तरह अपनी रिश्तेदारियों में कहीं दरार आ गई हो तो उसे भी आज-कल में पाट लें, बड़ा अच्छा feel करोगे।

उसके अलावा हमारी एक Demand ये है कि अपने धर्मस्थान की देखभाल करते रहो। रोज़ाना आओ तो बहुत अच्छा। यदि ऐसा न हो तो हर सप्ताह सभी लोग आओ, प्रार्थना, सामायिक आदि करो। आपके लिए अगला वर्ष आनंद-मंगलमय हो, इस शुभकामना के साथ एक भजन की पंक्तियां गुनगुनाकर आपसे विदा लेना चाहेंगे।

तर्जः– क्या मिलिए ऐसे लोगों से...

चलो आज महावीर प्रभु को करे भावना से वंदन।
लेप करे मस्तक पर उनकी चरण धूल का ले चंदन ॥

1. उनके शासन के हम तुम सब सेवक हैं अनुयायी हैं,
गुरुदेवों की कृपा हुई जो बन पाए स्वाध्यायी हैं,
हम सब आपस में भाई हैं तात श्री त्रिशला नंदन ॥

2. पर्यूषण की भव्य सफलता से हर्षित सबके दिल हैं,
जब बहार आती है सारा गुलशन ही जाता खिल है,
शिथिल हुए हैं आठ दिनों में, रागद्वेष के कुछ बंधन ॥

3. हमें मिली सौगात प्रेम की मान रहे उसका आभार,
बहता रहे सभी के दिल में धर्म ध्यान सेवा सत्कार,
रुक जाएंगे सकल धरा से कष्ट क्लेश जनित क्रन्दन ॥

अथवा दूसरा भजन

तर्जः– दूर कोई गा रहा...

पर्यूषण संपन्न हैं, सबके मन प्रसन्न हैं।
छाया आनंद है, धर्म का संबंध है ॥

1. आठों दिन ठाठ से, आगम के पाठ से,
बहा ज्ञान मकरंद है ॥

2. धन्यवाद आपको, चालू रखा जाप को,
रहें सब पाबन्द हैं ॥

3. आप सबके प्यार को, स्नेह सत्कार को,
याद रखना हर चन्द है ॥

4. स्थानक में आना है, बालकों को लाना है,
नहीं रखना ये बंद है ॥

5. सामायिक स्वाध्याय हो, नहीं अंतराय हो,
दूर करना हर द्वन्द्व है ॥

पर्यूषणों के लिए उपयोगी
कुछ भजन

पहले आठ भजनों की तर्जः– दूर कोई गा रहा (कैसा रंग छाया)

1.

पर्यूषण आए, खुशियां लाए, धर्म कमाना है, लाभ उठाना है ॥

1. ज्ञान ध्यान संयम, व्रत और नियम, को अपनाना है ॥
2. अपना प्यारा पर्व है, हमको इस पर गर्व है, भाव ये बनाना है ॥
3. छोड़कर प्रमाद को, धर्म के प्रसाद को, खाना और खिलाना है ॥
4. चार तीर्थ वो कहे, जो मर्यादा में रहे, मन में बिठाना है ॥
5. श्रावकों का जागरण, है ज़रूरी इस क्षण, नींद को भगाना है ॥
6. चौबीस घंटे जाप हो, हृदय निष्पाप हो, शास्त्र में आना है ॥
7. कर्त्तव्य समझो भाइयों (बहनो), जागो-2 भाइयों (बहनो), नाम चमकाना है ॥

2.

दूसरा पर्यूषण, आया प्यारा-2 दिन,
मन में उमंगें है, उठती तरंगे है ॥

1. जिन शासन की जय-जयकार,
   मिलकर बोलो सब नर-नार, करने मन चंगे हैं ॥
2. ये तप का त्यौहार है,
   सादगी शृगांर है, लहराने पचरंगे हैं ॥

3. बालकों में जोश है,
युवकों में होश है, रंग बिरंगे हैं ॥

4. प्रभु के दरबार के,
उनके सच्चे प्यार के, हम भिखमंगे हैं ॥

5. जलती धर्म की शमा,
अपना मन इसमें रमा, हम तो पतंगे हैं ॥

6. प्रेम भावना बढ़े,
द्वेष भावना घटे, रोकने दंगे हैं ॥

7. कर्मों के पहाड़ में,
पापों के उजाड़ में, बिछानी सुरंगे हैं ॥

3.

तीजा पर्यूषण, आया मन भावन,
रौनक छाई है, सबको बधाई है ॥

1. आदिनाथ भगवान् की, उनके दिए ज्ञान की,
जय-2 बुलाई है ॥

2. अरिष्टनेमि भगवान्, यदुवंश की शान,
शिखर में चढ़ाई है ॥

3. कृष्ण कर्मवीर थे, धीर गंभीर थे,
कीर्ति कमाई है ॥

4. भाई गजसुकुमाल ने, देवकी के लाल ने,
मोक्ष लक्ष्मी पाई है ॥

5. छोड़ें भोग वासना, मन को निर्मल बना,
चढ़नी ऊंचाई है ॥

6. सहन शील शांत बन, संयमी और दान्त बन,
पानी सच्चाई है ॥

4.

चौथा दिन आया आनंद लाया,
आराधना करनी है, झोलियां भरनी हैं ॥

1. पैसा सुख देता नहीं, देखो जाकर के कहीं,
अटवी ये तरनी है ॥

2. सुबह शाम प्रभु नाम, जपो सिद्ध करो काम,
माला सुमरनी है ॥

3. उन संतों को देख लो, हुए कुर्बान जो,
राह वो पकड़नी है ॥

4. वो महलों की रानियां, उनकी सब कुर्बानियां,
हृदय में धरनी हैं ॥

5. आत्मा ये मुक्त हो, सद्गुणों से युक्त हो,
सच्ची यदि करनी है ॥

6. साफ होवे ज़िंदगी, पापों की गंदगी,
सारी ही संवरनी है ॥

7. आओ-2 साथियों, कदम बढाओ साथियों,
मोक्ष की ये सरणी है ॥

5.

आज दिन पांचवाँ, धरती और आसमां,
आनन्द मनाते हैं, संदेश लाते हैं ॥

1. क्या अपना इतिहास था, धर्म का उल्लास था,
याद दिलाते हैं ॥

2. वीर की वो साधना, जीवन की वह प्रेरणा,
भूल नहीं पाते हैं।

3. कितने राजकुमार थे, तप की मीनार थे,
रोशनी फैलाते हैं ॥

4. अर्जुनमाली की क्षमा, सुन-सुन के दिल थमा,
केवल ज्ञान पाते हैं ॥

5. उनकी पावन याद से, इनके पुण्य प्रसाद से,
फूले न समाते हैं ॥

6. कल पर कुछ छोड़ो नहीं, कर लो आज और यहीं,
सुन लो सुनाते हैं ॥

7. जो करें धर्म ध्यान, उसका ही होगा कल्याण,
साफ बताते हैं ॥

6.

पयूर्षण का दिन छठा, सबका मन है झूम उठा,
जय-2 बुलाओ जी, वीर गुण गाओ जी ॥

1. ज्ञान और चारित्र हो, श्रद्धा सुपवित्र हो,
तप में जुट जाओ जी ॥

2. दान शील तप हो, हर पल प्रभु जप हो,
भाव बढ़ाओ जी ॥

3. पुण्य पाप जानो, बंध मोक्ष मानो,
संवर अपनाओ जी ॥

4. अहिंसा को धारकर, सत्य का शृंगार कर,
ईमानदार कहाओ जी ॥

5. ब्रह्मचर्य पालन, संतोष करो धारण,
धर्म कमाओ जी ॥

6. श्रावक के कर्त्तव्य जो, उनका पालन भव्य हो,
लक्ष्य ये बनाओ जी ॥

7. धर्म टिका आप पर, मन में श्रद्धा धारकर,
कौम को उठाओ जी ॥

7.

सातवां ये रोज़ है, चालू रखनी खोज है,
आगे हम बढ़ जाएं, जीवन चमकाएं ॥

1. जीवन का है लक्ष्य क्या, भक्ष्य और अभक्ष्य क्या,
जानकारी कर पाएं ॥

2. मद्य नहीं पीना, मांस नहीं छूना,
पाप नहीं पास आएं ॥

3. बीड़ी सिग्रेट छोड़कर, पापों से मुंह मोड़कर,
वैभव और बल पाएं ॥

4. सेवा भाव भक्ति, में होवे अनुरक्ति,
मन को समझाएं ॥

5. नहीं ऐसा काम हो, धर्म बदनाम हो,
खुद को न भटकाएं ॥

6. पाप से होता पतन, धर्म से उठता है मन,
धर्म को अपनाएं ॥

7. सोचो करो धर्म को, समझो धर्म मर्म को,
दिल में बिठलाएं ॥

8.

आई है संवत्सरी, भरी मन गगरी,
प्रेम का शुभ जल है, आनंद मंगल है ॥

1. सालभर की गल्तियां, मानेंगे दिल से यहाँ,
निश्चय अविचल है ॥

2. नहीं कोई दुश्मन, सबसे अपनापन,
रखना प्रतिपल है।

3. क्षमा करें भाव से, क्षमा मांगे चाव से,
मन का ये संबल है ॥

4. प्रतिक्रमण कर लें, शुद्ध भाव भर लें,
बनना निश्छल है ॥

5. गुरु आशीर्वाद से, प्रभु के प्रसाद से,
भरना निज आंचल है ॥

6. तपोमय शरीर हो, क्षीण जंजीर हो,
धोना सकल मल है ॥

7. नियम व्रत पच्चक्खाण, कर देते कल्याण,
धर्म का शुभ फल है ॥

8. आज का पावन दिवस, करे जीवन को सरस,
श्रद्धा ये निश्चल है ॥

9.

तर्जः– इक प्यार का नगमा है....

तप की अग्नि से जीवन का, हर दोष नितरता है।
मटमैला, कुचैला ये, जीवन पट निखरता है ॥

1. ज्ञान दर्शन व संयम से, काम पूरा नहीं जब हो,
झाड़ू पोचे से *Wiper* से, साफ कूड़ा नहीं जब हो,
आग से कूड़ा कर्कट तब, अतिशीघ्र ही जलता है ॥

2. मुनियों की निशानी दो, संयम और तप मानी,
दीक्षा लेते ही मुनियों ने प्रतिमाएं कई ठानी,
जैन शासन का मुख्य स्वर, तप के जरिए उभरता है।

3. मुनियों की अनुकृतियां, श्रावक व श्राविका हैं,
इस कारण बने तप के, साधक व साधिका हैं,
सारा संसार जैनों के तप पे आश्चर्य करता है ॥

4. अनशन भी तपस्या है, आयंबिल भी तपस्या है,
लक्ष्य होता प्रशंसा नहीं, पर मिलती प्रशंसा है,
तप की स्तुतियों से स्तुतिकर्ता, अपने भंडार भरता है ॥

10.

तर्जः– वादा न तोड़...

महावीर का, प्रभु वीर का, परिवार है लगता प्यारा ॥

1. ब्राह्मण कुंडग्राम में था, ऋषभदत्त ब्राह्मण,
देवानंदा देवी उनकी गंगा जैसी पावन,
अपनी कुक्षि में सूर्य उतारा ॥

2. माता त्रिशला ने फिर तुमको बुलाया,
82 रात बाद हरिणगमेषी देव लाया,
चौदह सपनों को उसने निहारा ॥

3. चेटक मामा ने भेजी बधाई,
नंदीवर्धन ने पाया अपना छोटा भाई,
जय-जय वर्धमान कह के पुकारा ॥

4. सिद्धार्थ से ले चाचा सुपार्श्व ने खिलाया,
भाई से भतीजा प्यारा कह के सहलाया,
गाल चूमे व सिर पुचकारा ॥

5. बहन सुदर्शना ने राखी मंगाई,
सोने के धागों से कलाई सजाई,
पा के भैया को हुई पौबारा ॥

6. बचपन बीता फिर आई जवानी,
मात पिता ने उनकी शादी की ठानी,
यशोदा देवी ने उन्हें स्वीकारा ॥

7. बेटी प्रियदर्शना थी लाडों में खेली,
गुलशन में खिली ऐसे खिले ज्यों चमेली,
जिससे महकता था आंगन सारा ॥

8. जमालिकुमार यों तो सुंदर जवान था,
वीर का जंवाई बन के हुआ अभिमान था,
वो थी केसर, वो था गारा ॥

9. कोई पहुंचा स्वर्ग कोई पहुंचा अपवर्ग में,
कमी नहीं रही महावीर के संसर्ग में,
मिला शांति का दिव्य नजारा ॥

11.

तर्जः— इक दुखियारी कहे बात ये... राम तेरी गंगा मैली हो गई...

शेरः— महावीर शासन की देवी क्षमा है,
इसी के सहारे जगत ये थमा है।
क्षमा ही धर्म की जनेत्री है मां है,
क्षमा ही अंधेरों में जलती शमा है ॥

टेकः— आई संवत्सरी लेनी व देनी क्षमा है,
क्षमा की धरा पर हम बसे हैं,
क्षमा ही सिरों का आसमां है। क्षमा ले लो... क्षमा दे दो... ॥

1. सोमिल ने सिर पर अंगारे गजसुकुमाल के डाले,
क्षमा शील मुनि ने मन में भी नहीं कषाय थे पाले,
मुहूर्त्त भर में मोक्ष पाया, बची आत्मा जली काया,
श्री कृष्ण को अरिष्टनेमि प्रभु ने बताया
क्रोड़ों भवों के कर्मों का किया यों खातमा है ॥

2. अर्जुनमाली ने हिंसा से नरक बनाया जीवन,
सेठ सुदर्शन के दर्शन से हुए सत्य के दर्शन,
महावीर शरण लेकर, बने मुनि क्षमा सागर,
सही गालियां व डंडे, मारपीट और ठोकर,
कर्म वो खपाए जिनका परिणाम वर्ना तमतमा[1] है ॥

3. संगम ने महावीर को छह-छह महीने खूब सताया,
कष्ट बेचारा ये पाएगा दिल प्रभु का भर आया,
गोशाला भी बचाया, पालियों को ना डराया,
रहे कैसी भी स्थिति में क्षमा भाव ना भुलाया,
रोम-रोम में ही क्षमा भाव महावीर के रमा है ॥

---

1 सातवीं नरक

4. हम दुनिया से माफी मांगे मन को नम्र बनाएं,
क्रोध करें ठंडा औरों का अपना मान मिटाएं,
बुझे विष और विषमता, बरसे अमृत और समता,
क्षमा भाव से बढ़ाएं अपनी ज़िंदगी की क्षमता,
क्षमा की कसौटी पर ही अपने को लेना आजमा है ॥

12.

तर्जः– हम तुम चोरी से...

महावीर स्वामी को, अंतर्यामी को, वंदना है बारम्बार,
करेंगे ये ही बेड़ा पार ॥

1. त्रिशला माता के जाए, सिद्धार्थ पिता के नंदन,
जन्में तो सकल धरा पर, हुआ आनंद मंगल वर्धन,
कहने लगे, वर्धमान है-2, बालक ये होनहार ॥

2. की मात पिता की सेवा, आज्ञा मानी भाई की,
दीक्षा ले गए वनों में, राह पकड़ी कठिनाई की,
कटते गए, घाती कर्म-2, हुआ दूर अंधकार ॥

3. दे सत्य अहिंसा संयम, और अनेकांत का नारा,
लाखों के कष्ट मिटाए, लाखों को पार उतारा,
सौभाग्य था, उस जीव का-2, जिसने किया दीदार ॥

4. उनकी ही रोशनी पाकर संसार आज जिंदा है,
वर्ना पंचम आरे में, इंसान बना अंधा है,
माने जो, उस वीर को-2, उसका ही हो सुधार ॥

13.

तर्जः– इक बार तू मुख से बोल जरा...

गुरुदेव तुम्हारी यादों में, जब मेरा दिल खो जाता है।
मेरे रोम-रोम में ना जाने, बरबस कुछ-2 हो जाता है ॥

1. छंटने लगता है अंधकार, दिखने लगता है आर पार,
बहने लगती सुख की बयार, दुःख का आलम सो जाता है ॥

2. अमृत के मेघ बरस जाते, कण-2 रस से हों सरस जाते,
मेरे मन की चदरिया को तेरे, हाथों का स्पर्श धो जाता है ॥

3. इक मधुर गंध छाने लगती, जीवन वीणा गाने लगती,
मन की माटी में तेरा ध्यान, खुशियों के बीज बो जाता है ॥

4. हर आंख से मिलता स्वागत है, हर व्यक्ति मेरा अभ्यागत है,
मन बिल्कुल हल्का रहता है, पर बोझ सभी ढो जाता है ॥

14.

तर्जः– ना झटको जुल्फ से पानी...

सुबह जब आंख खुलती है, तुम्हें आगे ही पाता हूँ।
तुम्हारे ध्यान में डूबा, हुआ निद्रा में जाता हूँ ॥

1. तेरे कारण मुझे जीवन, ये जीने योग्य लगता है,
कोई विष दे कोई अमृत, वो पीने योग्य लगता है,
विषमता में तेरी समता, की यादों को बुलाता हूँ ॥

2. यों अक्सर मौन में, मन को, सकूं[1] और चैन मिलते हैं,
मगर चर्चा तेरी चालू, हो बरबस होंठ हिलते हैं,
बोलने मौन रहने का, समन्वय यों बिठाता हूँ ॥

---

1 शान्ति

3. कोई सम्मान दे मुझको, वो तेरी ही अमानत है,
जो तूने मुझको अपनाया, ये बेगर्जी इनायत है,
मेरा इसमें नहीं कुछ भी, तेरा तुझको चढ़ाता हूँ ॥

4. भला मैं और क्या मांगू, शीश पर हाथ बस चाहूँ,
नहीं जग में कोई मेरा, तेरा ही साथ बस चाहूँ,
आखिरी सांस तक गाऊं, यों तेरे गीत गाता हूँ ॥

15.

तर्जः– करुणा के सागर ऐसी कृपा कर...

गुरुवर पधारो, हृदय में विराजो, मेरी प्रार्थना है-मेरी प्रार्थना है।
अपना बना लो, गले से लगा लो, तुम्हें वंदना है-तुम्हें वंदना है ॥

1. समता के सागर, समता सिखाना,
मन की विषमताएं तुम ही मिटाना,
नहीं इच्छा पूर्ति, का आग्रह रखूं मैं, यही कामना है... ॥

2. तुम्हारे ही हाथों, में सौंपा है जीवन,
तुम्हारा ही हमने, तो पकड़ा है दामन,
पीछे चलाना, आगे बढ़ाना, तुम्हें अर्पणा है.... ॥

3. तुम्हारा है उपेदश, मन को लुभाता,
न कानों में केवल, हृदय में समाता,
जो आदेश दोगे, व संदेश दोगे, उसे पालना है.... ॥

4. मिटाते समस्याएं, तुम ही हमारी,
मिलती कृपाएं, सदा ही तुम्हारी,
हमारे किए कुछ, भी होता नहीं, है, मेरी धारणा है... ॥

5. सदा आपका साथ, मिलता रहेगा,
तो जीवन का उद्यान, खिलता रहेगा,
न हम तुमको छोड़ें, न तुम हमको छोड़ो, यही याचना है... ॥

16

तर्जः– तारों में चन्द्र समान हो...

तुम रखते हमारा ध्यान हो, हम ध्यान तुम्हारा करते हैं।
गुरुवर हो या भगवान् हो, हम ध्यान तुम्हारा करते हैं ॥

1. हमने तो तुमको जाना है, तुम को ही सब कुछ माना है,
जीवन भर ही गुण गाना है... ॥

2. बसते हो तुम मेरे मन में, और हो जीवन के कण-2 में,
सुख मिलता तेरे पूजन में... ॥

3. तेरे दर्शन पावन-2, धन्य-2 हो जाते हैं जन-जन,
देते सबको तुम अपनापन... ॥

4. तुम हो मंगल करते मंगल, हर एक समस्या का है हल,
तुमसे मिलता है हमको बल... ॥

5. तुम दूर नहीं हमसे जाना, हमको चरणों में बिठलाना,
निज रूप हमें तुम दिखलाना...॥

6. तुम लगते हो सबसे सुंदर, अपनी नज़रें केवल तुम पर,
चरणों में झुकाते हैं हम सर... ॥

7. तुमने ही हमको ज्ञान दिया, तुमने ही हमको ध्यान दिया,
अवनत हैं हम उत्थान दिया... ॥

17.

तर्जः– तुम मेरे जीवन के धन हो (दिल ही दिल में ले लिया दिल मेहरबानी आपकी)

हम तुम्हारे, तुम हमारे, अपना ये संबंध है।
मेरे गुरुवर, तुमको पाकर, मेरे मन आनंद है ॥

1. हर समय हो सामने तुम, सामने क्यों दिल में हो।
आपकी मौजूदगी में, धुलता मन का गंद है ॥

2. देखकर जीवन तुम्हारा, लेते हैं शिक्षा सदा।
आपकी उपदेश धारा, बह रही हर चंद है ॥

3. बहुत कुछ हमको दिया है, और भी देना अभी।
जन्म जन्मों का हमारा, आपसे अनुबंध है ॥

4. नाम रूपी मंत्र जपकर, कर्म विष से छूटते।
कृपा अमृत का सदा ही, हो रहा निःस्यन्द है ॥

5. प्रेम की डोरी से सबको, बांधते दृढ़ता से हो।
झूठे रिश्ते नातों का अब, कटता जाता फंद है ॥

18.

तर्जः– उड़ते पंछी नील गगन में गाएं...

कितने-2 जन्म गंवाए, कितने संकट झेले,
हम नाम प्रभु का ले लें।

1. नाम प्रभु का मंगलकारी, सब दुःख हरने वाला,
घोर भयानक जंगल में भी, मंगल करने वाला,
आए सदा अकेले जग में, जाएं सदा अकेले ॥

2. कहाँ-2 भटके हो अब तक, और कहाँ भटकोगे,
बहते-2 यहाँ आ गए अब और कहाँ अटकोगे,
झूठी चतुराई के तूने, कितने पापड़ बेले ॥

3. जिसने नाम लिया प्रभुवर का, उसने जन्म सुधारा,
इस अथाह भव सागर से, उसको ही मिला किनारा,
इस दुनिया के राग रंग में, कितने अभिनय खेले ॥

19.

तर्जः– उठ जाग मुसाफिर भोर भई...

सत्संग तो मान सरोवर है, कोई किस्मत वाला आता है।
हंसा बनकर बिन भेदभाव, मोती चुन-2 ले जाता है ॥

1. ये मनी-प्लांट का पौधा है, सत्संग नगद का सौदा है,
यह मन को झुलाने का झूला, प्रभु नाम की लोरी गाता है ॥

2. सारा संसार खिलौना है, जल का यह मात्र बिलोना है,
इन विषय विकारों के हाथों, अज्ञानी बिकता जाता है ॥

3. बिन त्याग गुरु गुणवान् नहीं, गुरु बिना जगत् में ज्ञान नहीं,
है सत्य ज्ञान बिन गति नहीं, दुर्गति में गोते खाता है ॥

4. मुख में प्रभु का संगीत रहे, दिल में प्रभुवर से प्रीत रहे।
यहाँ जीत उसी को मिल पाती, जो संयम शंख बजाता है ॥

20.

तर्जः– पूर्ववत्

चाहे कुछ और चला जाए, धीरज और धर्म न जाने दो।
आगे जो कदम बढ़ाया है, पीछे न उसे हट पाने दो ॥

1. तुम धर्म करो और लोग हंसे, हंसने दो मत परवाह करो,
मिश्री खाते यदि दांत घिसें, तो घिसने और घिसाने दो ॥

2. दुनिया को सुविधा प्यारी है, ये सुविधा बड़ी बीमारी है,
मन स्वस्थ चुस्त यदि रखना है, सुविधा को निकट मत आने दो ॥

3. कांटों में ही खिलते हैं सुमन, कष्टों में चमकेगा जीवन,
कष्टों का स्वागत करो इन्हें, आ जीवन को चमकाने दो ॥

4. संगम का संगम होता है, तो महावीर खुश होता है,
शुद्धि हो और परीक्षा हो, सोने को खूब गलाने दो ॥

5. जब हमको खाने आएं गम, तब हम मस्ती से खाएं गम,
विष से ही यदि विष मरता हो, विष का सागर लहराने दो ॥

6. चढ़ना है हिम्मत लासानी, उतरें तो बिल्कुल आसानी,
चढ़ना ही है तो श्रम जल से, जीवन को सतत नहाने दो ॥

नोट्स

मेरे आध्यामिक निर्माण के कर्ता न आप हैं,
न संसार है, न कोई ईश्वर-परमात्मा है,
वहाँ मैं खुद ही जिम्मेवार हूँ,
इतना मैं जान चुका हूँ।
मेरा भविष्य मेरे हाथों में है।
हज़ार अज्ञानों के बीच, ज्ञान की ये
छोटी सी उपलब्धि मेरे लिए पर्याप्त है।
अब मैं बाहर के सभी सहारों से
मुक्त हो चुका हूँ।
मैं अपने निकट पहुँच चुका हूँ।

– अतिमुक्त कुमार

पर्यूषण पर्व प्रवचन